

आहार : साधना और स्वास्थ्य



जैन विश्व भारती प्रकाशन

आहार : साधना और स्वास्थ्य

आचार्य महाप्रज्ञ

प्रकाशक :

जैन विश्व भारती

पो.: लाडनूं (राज.) 341306

जिला : नागौर (राजस्थान)

फोन : 01581-226080/224671

फैक्स : 01581-227280

e-mail:jainvishvabharati@yahoo.com

ISBN 978-81-7195-280-9

© जैन विश्व भारती

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

मूल्य : एक सौ चालीस रुपये मात्र

मुद्रक : सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर

शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

AAHAR : SADHNA AUR SWASTHY by Acharya Mahapragya

पुरोवाक्

जीवन आहार-सापेक्ष है। आहार का जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं में प्रमुख स्थान है। एक शरीरधारी प्राणी आहार के बिना चिर-काल तक जीवित नहीं रह सकता।

प्रत्येक मनुष्य आरोग्य चाहता है। कोई भी व्यक्ति रोगी बनना या रहना नहीं चाहता। आरोग्य का एक महत्वपूर्ण कारक तत्व है—आहार का विवेक।

एक धार्मिक व्यक्ति केवल स्वास्थ्य ही नहीं चाहता, अध्यात्म-साधनामय जीवन जीना भी चाहता है। अध्यात्म साधना का सूत्र है—अनाहार और आहार का संयम।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ अध्यात्मवेत्ता मनीषी थे। उन्होंने अध्यात्म-साधना और स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार-संयम के अनेक प्रयोग किए। प्रेक्षाध्यान शिविरो में आध्यात्मिक स्वास्थ्य और आहार-विवेक विषय का विभिन्न कोणों से विवेचन किया। आचार्यश्री के चिन्तन में नवीनता, विचारों में मौलिकता और अभिव्यक्ति में युग-बोध देने का सामर्थ्य था। उन्होंने शाश्वत सत्यों के आलोक में सामयिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए। प्रस्तुत कृति 'आहार : साधना और स्वास्थ्य' में आचार्यश्री ने आहार की आध्यात्मिक स्वास्थ्य के संदर्भ में विशद मीमांसा की है। यह महत्वपूर्ण कृति जिज्ञासु पाठक और अध्यात्म-साधना में रुचि रखने वाले व्यक्ति—दोनों के लिए उपयोगी हो सकेगी।

21 फरवरी, 2015

धर्मपरसा

गोपालगंज (बिहार)

—आचार्य महाश्रमण

सम्पादकीय

जीवन की आकांक्षा का अर्थ है—आहार की आकांक्षा और आहार की आकांक्षा का अर्थ है—जीवन की आकांक्षा। आहार और जीवन—दोनों में अविनाभावी संबंध है। आहार के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आहार है तो जीवन है। आहार के सर्वथा विच्छेद का क्षण ही मरण का क्षण होता है।

एक तर्कशास्त्रीय व्याप्ति है—**यत्र धूमस्तत्राग्निः**—जहां धुआं है, वहां अग्नि है। इसी प्रकार यह व्याप्ति भी निर्मित हो सकती है—**यावदाहारः तावज्जीवनम्**—जब तक आहार है, तब तक जीवन है। **अन्नं वै प्राणाः**—इस सूक्त में इसी तथ्य की अभिव्यक्ति हुई है। जीवन और आहार के इस संबंध से कौन अपरिचित है?

आहार का जीवन के साथ ही नहीं, स्वभाव के साथ भी गहरा संबंध है। आहार का मनुष्य के आचार, व्यवहार और विचार पर बहुत प्रभाव होता है। सदाचार, सद्व्यवहार और सद्विचार की वर्णमाला के प्रवर्तन की आधार भूमि बनता है—आहार।

आहार और स्वास्थ्य का अंतर्संबंध स्पष्ट है। संस्कृत साहित्य में भूख को एक व्याधि माना गया—**क्षुज्जठराग्निजा पीडा। नास्ति क्षुत्समा व्याधिः**—भूख के समान कोई व्याधि नहीं है। इस व्याधि की चिकित्सा है—भोजन।

आहार और स्वास्थ्य के संदर्भ में वैज्ञानिक क्षेत्र में बहुत अन्वेषण हुए हैं, हो रहे हैं। उनका निष्कर्ष है—आहार का स्वास्थ्य, दीर्घायु और मनोबल के साथ गहरा संबंध है। जहां अपोषण और कुपोषण अनेक बीमारियों का कारण बनता है, वहां सम्यक् पोषण स्वास्थ्य का कारण बनता है। जहां आहार का असंयम अकाल-मृत्यु का आमंत्रण बन सकता है वहां आहार का संयम चिरायु का अवदान बन जाता है। आहार के अविवेक से जहां वृत्तियों का उद्दीपन और मनोबल का हास होता है वहां आहार का विवेक वृत्तियों के रूपान्तरण और मानसिक शक्तियों के संवर्धन का स्रोत बन सकता है।

आहार का जीवन और स्वास्थ्य के साथ संबंध जितना स्पष्ट है उतना ही स्पष्ट साधना के साथ है किन्तु वह स्पष्ट होते हुए भी आज अस्पष्ट जैसा बना हुआ है। इसीलिए अनेक बार यह प्रश्न उभरता है—धर्म तो आत्मा की वस्तु है, सदाचार है। आहार का धर्म और अध्यात्म से क्या कोई संबंध है ?

इस प्रश्न का उत्तर भी संस्कृत-सूक्त में मार्मिक शब्दों में प्राप्त होता है—**बुभुक्षितः किं न करोति पापम्**—भूखा आदमी क्या पाप नहीं करता ? वर्तमान युग में अपराध का एक प्रमुख कारण माना जा रहा है—भूख, अभाव और गरीबी। आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा रचित गीत के एक पद में इसी तथ्य की संपुष्टि है—

हिंसा का कारण है रोटी और गरीबी उसकी चोटी।

पर भूखा हिंसा करता जब शांत नहीं आवेश॥

शांति का संदेश॥

एक ओर भूख को हिंसा, अपराध, पाप अथवा अधर्म का प्रमुख कारण माना गया, दूसरी ओर इसका संवादी पद भी बहु प्रचलित है—**भूखे भजन न होई गोपाला**—भूखे आदमी से भगवान् का भजन नहीं हो सकता। वह धर्म की साधना भी कैसे कर सकता है ?

साधना का साधन है शरीर—**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**। शरीर का साधन है आहार। यदि शरीर स्वस्थ और कार्यक्षम नहीं है तो साधना कैसे होगी ?

शरीर की स्वस्थता का हेतु है मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य। मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य की उपलब्धि आहार-विवेक के बिना संभव नहीं होती। जैसा खाए अन्न वैसा होए मन—यह एक अनुभूत सचाई है। इस सचाई में साधना और आहार के संबंध-सूत्र की स्वीकृति है।

इस संक्षिप्त विश्लेषण और विमर्श का फलितार्थ यह है—आहार जीवन की अनिवार्यता है। जो अनिवार्य है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किन्तु इसके साथ यह चिन्तन और विवेक भी अपेक्षित है कि इस अनिवार्य तत्व का उपयोग कब, कितना और किस प्रकार हो, जिससे साधना और स्वास्थ्य दोनों सर्वोत्तम बने रहें।

आहार से जुड़ा दूसरा पहलू है अनाहार, आहार का संयम। यही वह पहलू है, जिसका धर्म अथवा अध्यात्म के साथ सीधा संबंध है। जीवन-यात्रा के लिए आहार महत्वपूर्ण पाथेय है किन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है आहार का संयम, अनाहार। जो व्यक्ति आहार के साथ अनाहार

का मूल्य जानता है, आहार-संयम और अनाहार के प्रयोग करता रहता है, वह स्वस्थ और दीर्घायु ही नहीं होता, साधना के क्षेत्र में भी सफलता का वरण करता है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ युगद्रष्टा ऋषि और प्रयोगधर्मा अन्वेषक थे। उन्होंने अपने जीवन को साधना की प्रयोगशाला बनाया और अध्यात्म के अनेक शाश्वत रहस्यों की खोज की। वे जितने आध्यात्मिक थे, उतने ही वैज्ञानिक और जितने वैज्ञानिक थे, उतने ही आध्यात्मिक। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का सृजन-चिंतन अध्यात्म से अनुप्राणित वैज्ञानिक दृष्टि का जीवन्त प्रमाण है। उसका एक साक्ष्य है प्रस्तुत कृति **आहार : साधना और स्वास्थ्य**। इसमें आचार्यश्री महाप्रज्ञ के आहार-विषयक आलेख संकलित हैं। स्वस्थ एवं पवित्र जीवन जीने के आकांक्षी प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह कृति केवल पठनीय ही नहीं है, मननीय और अनुशीलनीय भी है।

प्रस्तुत ग्रंथ का पुरोवाक् परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी ने लिखा है। आचार्यश्री महाश्रमणजी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के यशस्वी उत्तराधिकारी हैं। आपश्री का अनुग्रह और मार्गदर्शन मुझे सतत संबल प्रदान करता रहता है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी ने सन् 2019-2020 को आचार्यश्री महाप्रज्ञ जन्म शताब्दी वर्ष मनाने की घोषणा की है। वह वर्ष आचार्यश्री महाप्रज्ञ के समग्र सृजन के विषयीकृत संपादन और प्रस्तुतीकरण की संकल्पना के क्रियान्वयन का स्वर्णिम अवसर है। प्रस्तुत कृति की संयोजना इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है, जिससे जीवन के अनिवार्य तत्त्व को अध्यात्म की आंख से देखने की एक नई दृष्टि मिल सकेगी।

14 जनवरी 2015
इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

मुनि धनंजयकुमार

अनुक्रम

1. हमारा भोजन	11	15. आहार और धर्म	102
2. आहार : व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण	18	16. आहार और व्यवहार	108
3. आहार का विवेक (1)	24	17. अहिंसा और आहार	113
4. आहार का विवेक (2)	29	18. भोजन और रोग	119
5. संतुलित आहार (1)	38	19. हृदयरोग : कारण और निवारण (1)	122
6. संतुलित आहार (2)	43	20. हृदयरोग : कारण और निवारण (2)	129
7. साधना, स्वास्थ्य और आहार	48	21. अण्डा शाकाहार नहीं है	136
8. आहार : साधना का प्रथम चरण	56	22. मांसाहार का निषेध क्यों ?	139
9. आहार-शुद्धि से रूपान्तरण	62	23. करुणा और शाकाहार	143
10. ध्यान और आहार	68	24. मनुष्य की प्रकृति है शाकाहार	145
11. आहार, नींद और जागरण	73	25. वैज्ञानिक चेतना से नशामुक्ति	148
12. आहार और अनाहार	81	26. नशा और ध्यान	153
13. प्रयोग अस्वाद, अनाहार और आतापना का	85	27. समस्या महानिद्रा और अनिद्रा की	159
14. आहार और स्वास्थ्य	95	28. निद्रा, अनिद्रा और अतिनिद्रा	164

1. हमारा भोजन

रोटी का प्रश्न जीवन का पहला प्रश्न है। यह पहला प्रश्न है, इसलिए सबसे बड़ा प्रश्न है। कोई भी मनुष्य खाए बिना जी नहीं सकता और जब जी नहीं सकता तब कुछ भी नहीं कर सकता। कुछ करने के लिए जीवन जरूरी है और जीवन के लिए रोटी जरूरी है। विश्व की राजनीति का पहला प्रश्न है—जनता को रोटी सुलभ कराई जाए। आवास और वस्त्र को सुलभ कराना प्रथम प्रश्न नहीं है। वह रोटी के बाद की समस्या है। जीवन होने पर ही वस्त्र और आवास की जरूरत होती है, अन्यथा नहीं होती। धार्मिक चिन्तन में भी भोजन के प्रश्न को प्राथमिकता मिली है।

‘जैसे कपड़े का कारण धागा और धागे का कारण पक्षम (रोम) है, वैसे ही मोक्ष का कारण ज्ञान, दर्शन और आचारमय जीवन है और जीवन का कारण आहार है।’

आहार के बिना जीवन नहीं हो सकता, जीवन के बिना ज्ञान, दर्शन और आचार की आराधना नहीं हो सकती और उसके बिना बन्धन-मुक्ति नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य है कि मनुष्य की पहली चिन्ता और पहली अपेक्षा है—आहार। इसलिए आहार के प्रश्न को गौण नहीं किया जा सकता। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

आहार का उद्देश्य

‘आहार हमारे जीवन की अनिवार्य अपेक्षा है’—यह आहार-शास्त्र का पहला सूत्र है। उसका दूसरा सूत्र है—आहार कैसा हो? और तीसरा सूत्र है—हम आहार क्यों करते हैं? उसका उद्देश्य क्या है? पहले हम तीसरे सूत्र पर विमर्श करेंगे। हमें भूख लगती है, इसलिए हम भोजन करते हैं। भूख सबसे बड़ी बीमारी है। वह सबसे बड़ी बीमारी है इसीलिए हम उसे सबसे छोटी बीमारी समझते हैं और इसलिए समझते हैं कि हम उससे बहुत परिचित हो गए हैं। जो बीमारी परिचित हो जाती है, जिस बीमारी के साथ हम संगी होकर जीना शुरू कर देते हैं, वह बड़ी बीमारी भी छोटी बन जाती है। भूख हमारी प्रतिदिन की बीमारी है। हम उसका उपचार करना जानते हैं, इसलिए हमने खाना खा लिया। बीमारी समाप्त हो गई। इस बीमारी का इलाज हमारे हाथ में है, इसलिए हम इस बीमारी को बीमारी नहीं समझते।

एक आचार्य ने लिखा है—भूख के समान कोई पीड़ा नहीं है। प्रश्न हुआ—क्यों खाना चाहिए? इसका उत्तर दिया—भूख की पीड़ा को शांत करने के लिए खाना चाहिए। खाने का यह स्वाभाविक उद्देश्य है। इसके सिवाय जितने उद्देश्य बतलाए गए हैं और बतलाए जाते हैं वे सब सैद्धान्तिक हैं, स्वाभाविक नहीं हैं।

आहार कैसा होना चाहिए?

हमारा आहार कैसा होना चाहिए? इस दूसरे प्रश्न पर हम कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे। इस प्रश्न पर समूचे विश्व में अनेक दृष्टिकोणों से विचार-विमर्श हुआ है। उसका वर्गीकरण यह है—

1. शारीरिक स्वास्थ्य
2. मानसिक स्वास्थ्य
3. अहिंसा
4. ब्रह्मचर्य
5. चित्त-वृत्ति का शोधन

शारीरिक स्वास्थ्य

आहार के विमर्श का पहला दृष्टिकोण है—**शारीरिक स्वास्थ्य**। इस दृष्टि से विमर्श करने वाले पोषणविदों और चिकित्साविदों ने बतलाया कि शारीरिक स्वास्थ्य का मूल आधार है—संतुलित भोजन। शारीरिक तत्त्वों से क्रिया-संचालन के लिए जो-जो पोषक तत्व अपेक्षित हैं, उन सबका हमारे भोजन में होना संतुलित भोजन है। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, स्नेह, लवण, क्षार, लोह और विटामिन्स—ये उचित मात्रा में खाए जाते हैं, वह संतुलित भोजन माना जाता है। इससे शरीर स्वस्थ और क्रिया करने में सक्षम रहता है।

मानसिक स्वास्थ्य

आहार के विमर्श का दूसरा दृष्टिकोण है—**मानसिक स्वास्थ्य**। मन स्वस्थ रहे—यह हमारे लिए बहुत मूल्यवान् है। भोजन का मन की क्रियाओं पर बहुत असर होता है। हमारा मन मस्तिष्क की रासायनिक प्रक्रिया से प्रभावित होता है और मस्तिष्क की रासायनिक प्रक्रिया भोजन से प्रभावित होती है। इस अर्थ में वह केवल शरीर को ही पोषण नहीं देता, मन को भी पोषण देता है। वह केवल शरीर की क्रियाओं का ही संचालन नहीं करता, उससे मन की क्रियाएं भी संचालित होती हैं। क्योंकि वह शरीर से जुड़ा हुआ है। रासायनिक क्रिया की दृष्टि से वह शरीर का एक हिस्सा ही है। मन या मस्तिष्क पुष्ट हो, भोजन का केवल यही दृष्टिकोण नहीं है। उसका समग्र दृष्टिकोण यह है कि मन विकृत, उत्तेजित और क्षुब्ध न हो।

भगवान् महावीर के जीवन का एक प्रसंग है। एक बार वे आदिवासी लोगों के बीच विहार कर रहे थे। उस प्रदेश के लोग बहुत क्रोधी और झगड़ालू थे। वे अकारण ही दूसरों को कष्ट देने में आनन्द का अनुभव करते थे। एक व्यक्ति ने जिज्ञासा की—उस प्रदेश के सभी लोग क्रोधी और झगड़ालू क्यों हैं? उन्हें दूसरों को सताने में रस क्यों आता है? इस जिज्ञासा का उत्तर मिला—वे रूखा खाते हैं और जो लोग सदा रूखा भोजन करते हैं, वे स्वभाव से क्रोधी और झगड़ालू हो जाते हैं।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भोजन पर पर्याप्त विमर्श हुआ है। आहारशास्त्र और चिकित्साशास्त्र में इस विषय की पर्याप्त जानकारी मिलती है। भोजन की जो मानकीकृत तालिकाएं हैं, वे शरीर और मन के स्वास्थ्य को लक्ष्य कर निर्धारित की गई हैं। उन्हीं के आधार पर आहारशास्त्री और चिकित्साशास्त्री भोजन के तत्व और मात्रा का निर्देश देते हैं।

अहिंसा की दृष्टि

आहार के विमर्श का तीसरा दृष्टिकोण है **अहिंसा**। अहिंसा की दृष्टि से हमारा भोजन कैसा होना चाहिए—इस विमर्श में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की उपेक्षा नहीं है किन्तु इस बात की सूचना है कि स्वास्थ्य हमारी अन्तिम सचाई नहीं है। उससे परे भी कुछ है और उसका सम्बन्ध समूचे प्राणी-जगत् से है। वह मनुष्य जाति की समानता का बहुत बड़ा आधार बनता है।

अनिवार्यता का सिद्धांत

अहिंसा की दृष्टि से भोजन के विमर्श का पहला सूत्र है—अनिवार्यता का सिद्धांत। हमें वह भोजन लेना चाहिए जो जीवन-धारण के लिए अनिवार्य हो। जिसकी अनिवार्यता न हो, उसे नहीं लेना चाहिए। स्वाद की दृष्टि से भोजन नहीं लेना चाहिए।

हम सर्वांगीण दृष्टि से जीवन का निरीक्षण करें और जीवन को सर्वांगीण संदर्भों में देखें। हमारा जीवन केवल शरीर और मन का ही जीवन नहीं है। वह उससे बहुत आगे और बहुत व्यापक है, इसलिए शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ही भोजन का निर्धारण न करें। उसके निर्धारण में अहिंसा (प्रेम, मैत्री या करुणा), ब्रह्मचर्य, अनासक्त भाव और अन्तर्वृत्तियों के परिष्कार का जो हिस्सा है, उसे बराबर ध्यान में रखें।

न खाने का सिद्धांत

अहिंसा की दृष्टि से भोजन का दूसरा सूत्र है—‘नहीं खाने’ का सिद्धांत। हमारे लिए खाना जितना महत्वपूर्ण है, ‘नहीं खाना’ भी उतना ही महत्वपूर्ण है। खाने का जितना मूल्य है ‘नहीं खाने’ का भी उससे कम मूल्य नहीं है। जब तक हम ‘नहीं खाने’ पर विचार नहीं करते तब तक भोजन का विषय पूर्ण दृष्टि से चर्चित नहीं होता। स्वास्थ्य के लिए यदि संतुलित भोजन जरूरी है तो उसके लिए भोजन को छोड़ना भी जरूरी है, बहुत जरूरी है।

भोजन को छोड़ने के तीन प्रकार महावीर ने बतलाए हैं—अनशन, ऊनोदरी और रस-परित्याग। ये आहार के अनिवार्य सिद्धांत हैं, इसलिए ये आहार से भिन्न नहीं हैं। अनाहार को छोड़कर आहार को देखना वास्तव में आहार के प्रति भ्रांत होना है और अपने स्वास्थ्य के प्रति भी अन्याय करना है। जो लोग केवल भोजन का ही

महत्त्व समझते हैं, उसे छोड़ने का महत्त्व नहीं समझते, वे न केवल मोटापे की बीमारी से ग्रस्त होते जा रहे हैं, किन्तु अन्य बीमारियां भी उन्हें आक्रांत कर रही हैं।

महावीर ने कहा—‘अनशन करो’, ‘मत खाओ।’ प्रश्न हुआ—कब तक न खाएं? उन्होंने कहा—‘एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, जब तक मन स्वस्थ बना रहे, तब तक न खाओ। हो सके तो छह मास तक भी मत खाओ।’ संभव है यह सबके लिए न हो सके। कोई-कोई आदमी इतने लम्बे समय तक खाये बिना जी सकता है। फिर भी खाना तो पड़ेगा। खाना पड़ेगा, तब महावीर ने कहा—‘कुछ ऐसा अभ्यास करो, जिससे यह अनुभव हो कि खाने पर भी पूरा नहीं खाया।’ ऊनोदरी का सिद्धांत कम खाने का सिद्धांत है। यही परिमित भोजन है। स्वयं द्वारा स्वयं की चिकित्सा है। एक आचार्य ने लिखा है—

हियाहारा मियाहारा, अप्पहारा य जे नरा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा॥

जो हित, मित और अल्प मात्रा में भोजन करते हैं, उनकी चिकित्सा वैद्य नहीं करते, वे स्वयं अपने चिकित्सक हैं।

बीमारियां पैदा होने का बहुत बड़ा कारण है—अहितकर और अपरिमित भोजन। जो हितकर और परिमित खाता है, उसे बीमारी क्यों सतायेगी? कम खाना, कम वस्तुएं खाना और कम बार खाना—यह अल्पाहार का स्वरूप है। कम खाने का अर्थ है—भोजन के एक घंटा बाद भी पेट में भार महसूस न हो। अपनी भोजन की मात्रा का निर्धारण व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार पर स्वयं कर सकता है।

एक साथ बहुत वस्तुएं नहीं खानी चाहिए। भोजन का पाचकरस (पित्त-स्राव) सीमित होता है। उसमें जितने भोजन को पचाने की क्षमता होती है, उससे अतिरिक्त वस्तुएं खायी जाती हैं, तब आहार स्वयं स्वास्थ्य को चुनौती देने लग जाता है।

भोजन में भी अनासक्ति का भाव रहना चाहिए। भोजन के प्रति आसक्ति उतनी तीव्र न हो जाए कि रस मनुष्य को पराजित कर दे, अभिभूत कर दे। इस दृष्टि से रस परित्याग बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आहार और अनाहार—दोनों साथ-साथ चलें। आहार का सिद्धांत अनाहार के सिद्धांत से जुड़ा रहे तभी हम आध्यात्मिक दृष्टि से भोजन का अर्थ समझ सकते हैं। आहार को हमने सर्वाधिक महत्त्व इसलिए दिया है कि वह हमारे जीवन की पहली आवश्यकता है। वह पहली आवश्यकता इसलिए है कि वह हमारी शारीरिक और मानसिक शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। जीवन का प्रारम्भ ही भोजन से होता है। भोजन शब्द बहुत स्थूल है। उसके लिए अधिक उपयुक्त शब्द है—आहार। आहार का अर्थ है लेना, बाहर से लेना।

हिंसा के अल्पीकरण का सिद्धांत

अहिंसा की दृष्टि से भोजन का तीसरा सूत्र है—हिंसा के अल्पीकरण का सिद्धांत।

अहिंसा की दृष्टि से भोजन का विमर्श करते समय हम केवल मांस को ही निषिद्ध नहीं मान सकते, किन्तु वे सब वस्तुएं निषिद्ध हैं, जिन्हें प्राप्त करने में हिंसा अधिक और आवश्यकता की पूर्ति कम होती है।

ब्रह्मचर्य की दृष्टि

भोजन के विमर्श का चौथा दृष्टिकोण है—**ब्रह्मचर्य**। ब्रह्मचारी को कैसा भोजन करना चाहिए—यह दृष्टिकोण अहिंसा से भी आगे का दृष्टिकोण है। अहिंसक के लिए जो आहार विहित है, वह भी कभी और कहीं—ब्रह्मचारी के लिए अविहित हो जाता है। उसके लिए संतुलित भोजन करने का विधान है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी संतुलित भोजन का विधान है। किन्तु इन दोनों का तात्पर्य एक नहीं है। ब्रह्मचारी को स्निग्ध और पुष्टिकारक भोजन लेना चाहिए किन्तु साथ-साथ रूखा भोजन भी लेना चाहिए। दोनों का संतुलन बनाए रखना चाहिए। यदि वह केवल रूखा भोजन लेता है तो उससे क्रोध की मात्रा बढ़ जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और बौद्धिक कार्य की क्षमता कम हो जाती है। यदि वह स्निग्ध, पोषक भोजन लेता है तो उससे वासना उत्तेजित होती है। इसलिए ब्रह्मचारी को दोनों में समझौता करके चलना चाहिए। वह स्निग्ध भोजन ले किन्तु इसके प्रति जागरूक रहे कि अतिरिक्त मात्रा में बढ़ा हुआ रक्त और मांस वासना की वृत्ति को न उभार पाए। वह रुक्ष भोजन भी ले किन्तु इसके प्रति जागरूक रहे कि वह उसकी आवेश-वृत्ति को न उभार पाए। वह दोनों का इस प्रकार संतुलन रखे, जिससे बौद्धिक क्षमता भी न घटे और वासना भी उत्तेजित न हो। वह उच्छृंखल न बने। इस संतुलन में व्यक्ति के अपने विवेक और अपनी जागरूकता का ही अधिक उपयोग हो सकता है।

चित्त वृत्ति का शोधन

भोजन के विमर्श का पांचवां दृष्टिकोण है—**चित्त वृत्ति का शोधन**। भोजन का प्रभाव केवल शरीर के बाहरी तत्त्वों तक ही सीमित नहीं है, उसका प्रभाव हमारी आंतरिक वृत्तियों पर, शरीर के सूक्ष्म तत्त्वों पर और सूक्ष्म-शरीर पर भी होता है। इसलिए भोजन के विषय में हमें बहुत सावधान होना चाहिए। मादक वस्तुओं के निषेध का यह मुख्य आधार है। कुछ लोग मानते हैं कि सीमित मात्रा में मदिरा पीना हानिकारक नहीं है। वह पाचन को ठीक रखती है, शरीर को स्फूर्ति देती है। किन्तु मदिरा का निषेध शारीरिक दृष्टि से ही नहीं किया गया। उसके निषेध के पीछे दूसरी दृष्टियां भी हैं और मुख्य दृष्टियां दूसरी ही हैं। यह ठीक है कि अतिमात्रा में कोई भी चीज खायी जाती है तो उससे नुकसान होता है। मदिरा भी अतिमात्रा में ली जाएगी तो नुकसान होगा। किन्तु उसके निषेध के लिए अतिमात्रा का प्रश्न नहीं है।

मूलभूत प्रश्न है कि हमारी चेतना सतत जागरूक रहनी चाहिए, सतत सावधान और अप्रमत्त रहनी चाहिए। मदिरा तथा सभी मादक वस्तुएं हमारी जागरूकता को खण्डित करती हैं, चेतना को मूर्च्छित करती हैं, प्रमाद पैदा करती हैं, इसीलिए मदिरा का और सभी मादक वस्तुओं का निषेध किया गया। हमें अपने ज्ञान-तंतुओं को विकृत बनाने वाली और वृत्तियों को उत्तेजित करने वाली किसी भी वस्तु का सेवन नहीं करना चाहिए। मादक वस्तु के प्रयोग से मनुष्य अपना भान भूल जाता है। जिसे अपना बोध नहीं होता, वह मनुष्य कैसा आचरण करता है, उसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती। दुनिया के जितने नियम हैं, वे सब जागृत व्यक्ति के लिए हैं, मूर्च्छित व्यक्ति के लिए कोई नियम नहीं होता। अन्तर्वृत्ति को मूर्च्छित बनाने वाली वस्तुएं हमारे लिए निषिद्ध हैं।

ओज आहार

आहार के तीन प्रकार हैं—ओज आहार, रोम आहार और प्रक्षेप आहार। जब हम पैदा होते हैं तब सबसे पहले जो आहार लेते हैं उसे कहते हैं—ओज आहार। ओज अर्थात् हमारे जीवन की मूलभूत शक्ति। जब तक यह सुरक्षित रहती है तब तक आदमी जीवित रहता है। बहुत बार हम आश्चर्य में डालने वाली घटनाएं सुनते हैं कि एक आदमी खंदक में दब गया, मलबे के नीचे दब गया, फिर भी मरा नहीं। वहां दस दिन तक जीता रहा, बीस दिन तक जीता रहा। इसका सीधा-सा समाधान है कि जब तक उसका ओज आहार बना रहता है, तब तक वह मरता नहीं। बड़ी दुर्घटना होने पर भी बच जाता है। ओज आहार के समाप्त होने पर साधारण-सी टोकर लगने पर भी आदमी मर जाता है।

रोम आहार

दूसरा है रोम आहार। हमारे शरीर का हर रोम-कूप आहार लेता है। हम मुंह से कभी-कभी आहार लेते हैं, किन्तु रोम-कूप से निरन्तर लेते रहते हैं। हमारा जीवन इन रोम-कूपों पर बहुत निर्भर है। हमारा विश्वास है कि हम खाते हैं, इसलिए जी रहे हैं। इस भ्रांति को, इस मूर्च्छा को तोड़ देना चाहिए। हम नहीं खाते हैं इसलिए जी रहे हैं। एक दिन प्रयोग करके देखिए। आप चौबीस घंटा निरन्तर खाते चले जाएं, आप कैसे जीएंगे? 'नहीं खाते हैं इसलिए जीते हैं'—इस बात को भुला देते हैं और 'खाते हैं इसलिए जीते हैं'—इस बात को पकड़े हुए हैं। हम रोम-कूपों से आहार लेते हैं। यह निरन्तर चलता रहता है। तीन घंटा यदि रोम-कूप बंद हो जाएं तो आदमी जी नहीं सकता। नाटक दिखाने वाले कुछ लोग रंग आदि लगाते हैं। उससे रोम-कूप बन्द हो जाते हैं। वे कभी-कभी उस रंग को साफ किए बिना सो जाते हैं तो बहुत बड़ी दुर्घटना हो जाती है। कभी-कभी वे मौत के मुंह में चले जाते हैं। रोम-कूपों का बन्द होना मौत को निमंत्रण देना है।

कवल-आहार

हमारा तीसरा आहार है—प्रक्षेप आहार। यह कवल-आहार है जो मुंह से खाया जाता है या अन्य किसी साधन से शरीर में पहुंचाया जाता है। इससे हम बहुत परिचित हैं। हम मुख्यतः इसी को आहार मानते हैं। प्राणवायु

(ऑक्सीजन) हमारा आहार है। सूर्य का ताप हमारा श्रेष्ठ आहार है, यह कल्पना बहुत कम लोगों को है। अधिकांश लोग अनाज आदि को ही आहार मानते हैं।

मनोभक्षी आहार

एक चौथा आहार भी है जो मनोभक्षी है। मन में आया कि भोजन करना है और भोजन हो गया। भोजन के सब तत्त्व हमारे वायुमण्डल में भरे पड़े हैं। सूक्ष्म-जगत् में वह सब कुछ है जो स्थूल जगत् में उपलब्ध होता है। जो सूक्ष्म है, वही तो स्थूल बनता है। सूक्ष्म-जगत् में जिसका स्रोत नहीं है वह स्थूल-जगत् में उपलब्ध नहीं हो सकता। शरीर की सुरक्षा के लिए जो चाहिए, वह सब हमारे आसपास मौजूद है। हमारी शक्ति इतनी विकसित नहीं है कि हम उस आहार को ले सकें।

ओज आहार स्वाभाविक है। उस पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। मनोभक्षी आहार की शक्ति विशेष साधना से उपलब्ध की जा सकती है। रोम आहार के लिए जरूरी है कि हम शुद्ध वातावरण में जीएं। प्रक्षेप आहार के विषय में हमने आहार के कुछ सिद्धांतों की चर्चा की है। उसका फलितार्थ यही है कि भोजन के विषय में हमारा विवेक जागृत होना चाहिए।

2. आहार : व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण

जीवन श्वास और आहार—दो तत्त्वों पर टिका हुआ है। जो श्वास लेता है, वह जीता है। जो खाता है, वह जीता है। जीवन के दो लक्ष्य बन गए—श्वास लेना और आहार करना। श्वास के बिना कोई रह नहीं सकता और खाए बिना कोई जी नहीं सकता।

आहार और जीवन—ये शाब्दिक दृष्टि से भिन्न प्रतीत होते हैं। किन्तु तात्पर्य की दृष्टि से ये दोनों एक हो जाते हैं। आहार का अर्थ है जीवन और जीवन का अर्थ है आहार। आहार और जीवन—दोनों जुड़े हुए हैं।

आहार के विषय में प्राचीन काल से लेकर अब तक निरन्तर चिंतन चलता रहा है, नए-नए तथ्य खोजे जाते रहे हैं। आयुर्वेद ने भारतीय जीवन को बहुत प्रभावित किया है। आहार के विषय में उसका निर्देश है—हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्—वह भोजन करो जो हितकर हो, परिमित हो, जो न्याय और प्रामाणिकता के साथ अर्जित किया गया हो। मेडिकल साइन्स ने पहले इस विषय पर बहुत ध्यान नहीं दिया, केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार किया। इन दो दशकों में मेडिकल साइन्स ने इस विषय पर बहुत अनुसंधान किए। निष्कर्ष यह आया—आहार केवल स्वास्थ्य का ही विषय नहीं है, यह हमारे समग्र जीवन को प्रभावित करता है। इस विषय में बहुत नए तथ्य सामने आए हैं। व्यवहार और आहार को तराजू के दोनों पलड़ों में रखकर तोलना होगा। हमारे मस्तिष्क में बहुत सारे रसायन बनते हैं, उनमें एक है न्यूरोट्रांसमीटर। आयुर्विज्ञान के अनुसार हमारा व्यवहार न्यूरोट्रांसमीटर से प्रभावित होता है। आहार से न्यूरोट्रांसमीटर का निर्माण होता है। जिस प्रकार का आहार होगा, उसी प्रकार का न्यूरोट्रांसमीटर बनेगा और उसी प्रकार का व्यवहार होगा। न्यूरोट्रांसमीटर और व्यवहार का यह सिद्धांत आज बहुत महत्वपूर्ण बन गया है।

आधुनिक मनोचिकित्सा के क्षेत्र में आहार का संदर्भ भी जुड़ गया है। एक व्यक्ति चिड़चिड़ा है। मनोचिकित्सक ध्यान देगा—उसका आहार कैसा है? एक व्यक्ति उदास रहता है, अवसाद ग्रस्त है। एक व्यक्ति का मूड बार-बार बिगड़ता रहता है, कहीं एकांत में जाकर बैठ जाता है, जब चाहे रूठ जाता है। ये जितनी प्रवृत्तियां या आदतें हैं, इनका कारण क्या है? मनोचिकित्सक यह देखेगा—यह व्यक्ति क्या खाता है, जिससे ऐसी प्रवृत्ति बनती है। भोजन के आधार पर वह बीमारी का निश्चय कर लेता है।

अध्यात्म की दृष्टि

आज आहार-शास्त्र केवल पोषक तत्व के साथ जुड़ा हुआ नहीं है। वह बहुत गहन विषय बन चुका है। शरीर, मन और भाव—तीनों के स्वास्थ्य का संबंध आहार से है। अध्यात्म शास्त्र का इस संदर्भ में निर्देश रहा—तपस्या करो,

आहार का संयम करो, उपवास करो, ऊनोदरी करो। आयुर्वेद में आहार का उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य है, उसमें मानसिक स्वास्थ्य का भी समावेश हो जाता है। ऋतुभुक् का निर्देश न्याय, प्रामाणिकता और नैतिकता के सिद्धांत से भावित है। आयुर्विज्ञान भी इसी दिशा में बढ़ा है किन्तु अध्यात्म में शारीरिक स्वास्थ्य का प्रश्न गौण है। अध्यात्म की दृष्टि है—वैसा आहार करो, जिससे पुराने अर्जित संस्कारों की निर्जरा हो। जो बुरे संस्कार हैं, उनका शोधन और परिष्कार हो। आयुर्वेद और आयुर्विज्ञान मुख्यतः शरीर को सामने रखकर चलते हैं। अध्यात्म-शास्त्र ने इसके आगे की बात कही—पुराने संस्कार जमे हुए हैं तो मनुष्य हित आहार भी कर नहीं पाता। यदि खाने की लोलुपता है तो हित आहार कहां से होगा? वस्तु हितकर नहीं है, स्वादिष्ट है तो हित की बात गौण बन जाएगी। मनुष्य में आकांक्षा बहुत प्रबल होती है। जब आकांक्षा जाग जाती है, मनुष्य यह नहीं देखता—इससे हित होगा या अहित। वह हितकर नहीं खाता, स्वादिष्ट खाता है और यह जरूरी नहीं है कि उसका परिणाम हितकर ही आए। बहुत बार आकांक्षा का परिणाम विपरीत ही आता है।

एक मजदूर जंगल से गुजर रहा था। गर्मी का मौसम था। चलते-चलते परेशान हो गया। प्रार्थना के स्वर में बोला—‘प्रभो! एक घोड़ी दे दो, मैं जल्दी गांव पहुंच जाऊं।’ योग ऐसा मिला—उसी समय घोड़ी पर सवार थानेदार उधर से निकला। घोड़ी के पीछे उसका नव जन्मा शिशु चल रहा था। थानेदार ने मजदूर से कहा—‘ठहरो! मेरे साथ चलो और इस घोड़ी के बच्चे को कंधे पर रख लो।’ वह पहले ही परेशान था, और अधिक परेशान हो गया। वह मन ही मन बोला— हे प्रभो! मैंने मांगा तो था नीचे के लिए और मिल गया ऊपर के लिए।

जब आकांक्षा जागती है तब पता नहीं, उसका परिणाम क्या होता है? जो आकांक्षा है, लोलुपता के संस्कार हैं, वे दुर्बल नहीं होते हैं तो हित, मित और ऋतु वाली बात धरी रह जाती है। ऐसे अनेक लोग हैं, जो विशिष्ट प्रसंगों, भोजनों में जाते हैं, केवल एक चीज का चुनाव करते हैं। एक भाई ने कहा—‘महाराज! मैं जहां भी भोजन के लिए जाता हूं वहां बादाम की चक्की ही खाता हूं। मैं एक दिन में एक साथ दो सौ बादाम की चक्की खा चुका हूं।’ संतुलित भोजन का अर्थ क्या होगा? महत्त्वपूर्ण यह है—हम आहार का संयम करना सीखें। आहार का संयम होगा तो आहार की आसक्ति दुर्बल होगी, लोलुपता का संस्कार क्षीण होगा। इस स्थिति में ही आयुर्विज्ञान और आयुर्वेद के निर्देश का अनुपालन होगा। संस्कारों को क्षीण करने की बात नहीं सोची, केवल हित, मित और ऋतु भोजन का निर्देश दिया, उसका पालन कौन करेगा? जो निर्देश का पालन करने वाला है, उसमें अच्छे संस्कार हैं तो निर्देश का सहज पालन हो जाएगा। यदि संस्कार गलत हैं और पालन कराने के लिए कोई पुलिस वाला खड़ा है तो बुराई भूगृह में चली जाएगी, समाप्त नहीं होगी।

उपवास का मूल अर्थ

धर्म के आचार्यों ने इस मूल बात को पकड़ा और कहा—आहार के विषय में जो संस्कार जमा हुआ है, उसका शोधन करो। उसके लिए आहार-संयम किया जाता है। उपवास का प्रयोग भी एक विशेष उद्देश्य के साथ होना

चाहिए। अनेक लोग अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास करते हैं। उसका भी एक प्रयोजन है। ये तिथियां हमारे मानसिक स्तर को बहुत प्रभावित करने वाली हैं। इन तिथियों में भावात्मक उद्वेलन भी होता है। आज विज्ञान भी यह मानने लगा है—चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा—इन दिनों में मानसिक उतार-चढ़ाव अधिक रहता है। आत्महत्याएं, कार, वायुयान आदि की दुर्घटनाएं इन तिथियों में ज्यादा होती हैं। इसका कारण है—हमारे मन का चन्द्रमा के साथ बहुत गहरा संबंध है। जैसे समुद्र के जल-स्तर में ज्वार-भाटा आता है, वैसे ही हमारे मानसिक विचारों में भी ज्वार-भाटा आता है। इन तिथियों में उपवास करना मानसिक और भावात्मक संवेगों से अपने आपको बचाना है, भाव जगत् को संतुलित बनाए रखना है।

उपवास करने का एक गहरा अर्थ भी है और वह है—उपवास से आहार की आसक्ति को क्षीण करना। एक व्यक्ति ने आज उपवास किया और पारणे में इतना खाया कि उपवास की सारी कसर निकाल दी। इससे उपवास का अर्थ कम हो जाता है। उपवास से पहले दिन 'धारणा' करते हैं। 'धारणा' में भी कुछ अतिरिक्त भोजन करते हैं। इससे भी उपवास का अर्थ कुछ कम हो जाता है। जब तक धारणा और पारणा में परिवर्तन नहीं होगा तब तक उपवास का पूरा अर्थ समझ में नहीं आएगा। व्यक्ति धारणा करते समय इतना खा ले कि दूसरे दिन खाने की जरूरत ही न रहे। चाहे पेट खराब हो जाए, दवा की जरूरत पड़ जाए पर खाने की जरूरत न रहे। पारणा भी व्यक्ति ऐसा करता है, एक दिन भूखा रहने की कसर निकल जाए। उपवास का मूल अर्थ है—आहार की आसक्ति कम हो, लोलुपता कम हो। उपवास आहार की लोलुपता और आसक्ति को क्षीण करने का एक प्रतीकात्मक प्रयोग है। यह बात समझ में आए तो उपवास की बहुत सार्थकता होगी।

आहार और बुढ़ापा

आहार-संयम का व्यावहारिक स्तर पर भी बहुत मूल्य है। व्यावहारिक संदर्भ में ये तीन बातें हमारे सामने प्रस्तुत होती हैं—

1. मनुष्य बूढ़ा बनना नहीं चाहता।
2. रोगी बनना नहीं चाहता।
3. बेमौत मरना नहीं चाहता।

प्रत्येक मनुष्य जवान रहना चाहता है। कोई भी व्यक्ति जल्दी बूढ़ा बनना नहीं चाहता। वृद्ध व्यक्ति वह होता है, जिसका शरीर कमजोर हो जाता है, कार्यजा शक्ति क्षीण हो जाती है, आलस्य और प्रमाद बढ़ जाता है, मनोबल क्षीण हो जाता है। आहार और बुढ़ापा—दोनों में अंतःसंबंध है। जो व्यक्ति आहार का संयम नहीं करता, संतुलित भोजन नहीं करता, वह बहुत जल्दी बूढ़ा बन जाता है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने आहार के संदर्भ में कुछ निष्कर्ष

निकाले, उनमें एक है—जो ज्यादा चीनी खाता है, वह जल्दी बूढ़ा बन जाता है। ज्यादा चीनी खाना बुढ़ापे को जल्दी बुलाना है। व्यक्ति दिन भर में कितनी चीनी खा लेता है। चाय में चीनी, मिठाई में चीनी, शर्बत में चीनी—इन सबका अतिप्रयोग बूढ़ा होने का उपाय है। जो लोग बहुत ज्यादा खाते हैं, वे अपने अंगों को जर्जर बना देते हैं। लिवर, तिल्ली, आंत—इन सबको अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है, पाचन-तंत्र बिगड़ जाता है। तीस-चालीस वर्ष का युवा भी वृद्ध लगने लग जाता है। जो सत्तर वर्ष की अवस्था में भी युवा रहना चाहता है, कार्य क्षेत्र में सक्रिय रहना चाहता है, उसे आहार का संयम करना चाहिए।

यौवन का रहस्य-सूत्र

मार्च 1991 की घटना है। मैं अनेक दिन ज्वर से आक्रांत रहा। डॉक्टर ने समग्र जांच का परामर्श दिया। जयपुर में डॉक्टर एस.आर. मेहता से जांच करवाई। डॉ. एस.आर. मेहता ने विस्मय भरे स्वर में कहा—‘महाराज! आपका हार्ट इतना शक्तिशाली है, जितना चालीस वर्ष के युवक का भी नहीं मिलता। आपकी अवस्था सत्तर के आसपास है और हार्ट कह रहा है—आपकी अवस्था चालीस वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।’

यदि आहार का संयम न हो तो यह स्थिति कभी सम्भव नहीं बनती। सूरज बाद में ढलता है, नौद पहले ढलनी शुरू हो जाती है। व्यक्ति का चेहरा अलसाया और मुरझाया रहता है। आहार का संयम बहुत बड़ा उपचार है। यदि हम बुढ़ापे को जल्दी बुलाना नहीं चाहते हैं, तो आहार पर ध्यान देना होगा। यह स्पष्ट है—अवस्था आएगी, इसे रोका नहीं जा सकता किंतु इतना अवश्य हो सकता है—अवस्था के साथ बुढ़ापा न आए। हम बुढ़ापे को अवस्था के साथ न जोड़ें, उसको कार्य-क्षमता के साथ जोड़ें। काम करने की क्षमता कितनी है? इन्द्रियां कितनी सक्षम हैं? मन कितना प्रसन्न है? भाव कितना स्वस्थ है? यदि आहार का संयम है तो इनका स्वास्थ्य दीर्घकाल तक बना रहेगा। प्रेक्षाध्यान के एक प्रशिक्षक थे श्री मोहनलालजी कठोटिया। नब्बे वर्ष की अवस्था में भी उनकी सोचने की शक्ति, कार्य की स्फूर्ति युवक जैसी थी। उन्होंने अनेक गम्भीर शारीरिक कठिनाइयों को झेला। ध्यान का प्रयोग और आहार का संयम—इन दोनों ने उनके दिमाग को युवा बनाए रखा। यदि व्यक्ति ध्यान करे और आहार का संयम न करे तो न ध्यान सधेगा, न बुढ़ापा रुकेगा। अवस्था आए पर बुढ़ापा न आए, इसका रहस्य सूत्र है आहार-संयम।

आहार और आरोग्य

आहार और रोग में गहरा संबंध है। रोग के अनेक कारण हैं। आज वातावरण में रोग के परमाणु फैले हुए हैं। इतने जर्म्स और वायरस हैं कि व्यक्ति के रोगाक्रांत होने की संभावना बनी रहती है किन्तु रोग-ग्रस्त होने का सबसे बड़ा कारण है—आहार का असंयम। अति मात्रा में खाना, बहुत वस्तुएं खाना बीमारी को आमंत्रण देना है। आंतें या पाचनतंत्र, आमाशय, पित्ताशय—सब परेशान हो जाते हैं। आचार्य भिक्षु ने बहुत सुन्दर चित्र खींचा है—एक व्यक्ति ने ज्यादा खा लिया, पेट फूल गया। वैद्य को बुलाया। वैद्य ने नाड़ी का निरीक्षण कर कहा—‘तुम्हारी नाड़ी में कोई

गड़बड़ी नहीं है। क्या तुमने ज्यादा भोजन किया है?’ रोगी ने कहा—‘मैंने ज्यादा तो नहीं खाया पर ऐसे ही पेट फूल गया, दर्द होने लगा।’ आचार्य भिक्षु ने लिखा—‘ज्यादा खाकर बीमार पड़ने वाला व्यक्ति यह नहीं बताना चाहता—मेरी बीमारी का कारण आहार का असंयम है। मैंने अपनी लोलुपता के कारण बीमारी को न्योता दिया है। वह प्रवंचना कर असली कारण छुपाना चाहता है।’

जो व्यक्ति स्वस्थ जीवन जीना चाहता है, उसके लिए आहार का विवेक अनिवार्य है।

आहार और मृत्यु

मौत के साथ भी आहार का बहुत गहरा संबंध है। हम कल्पना करें—एक व्यक्ति को सौ वर्ष जीना है। उसका आयुष्य इतना बन्धा हुआ है। यदि वह पेटू है, बहुत खाता है, खाता ही चला जाता है तो वह पचीस, तीस या चालीस वर्ष में भी मर सकता है। जो सौ वर्ष जी सकता था, वह संभव है पचास वर्ष भी नहीं जी पाए। अकाल मृत्यु का एक कारण है अति भोजन। न खाना भी अकाल मृत्यु का कारण है और बहुत खाना भी अकाल मृत्यु का कारण है।

बुढ़ापा, रोग, अकाल मृत्यु—जो इन स्थितियों से बचना चाहता है, उसे आहार और श्वास—दोनों पर ध्यान देना होगा। ध्यान का भी आहार और श्वास के साथ गहरा संबंध है। यदि इन पर ध्यान नहीं देंगे तो ध्यान भी सध नहीं पाएगा। ये सारे पहलू मनुष्य को आहार-संयम के लिए प्रेरित करते हैं। आहार-संयम का संतुलित भोजन अथवा हित, मित और ऋत भोजन के साथ कोई विरोध नहीं है। शरीर चलाने के लिए जितनी मात्रा में आवश्यक है, उतना लेना होता है। आहार-संयम इसमें बाधक नहीं है। आयुर्वेद का भी यह सिद्धांत है कि मनुष्य को कभी-कभी उपवास करना चाहिए। इससे खाने के साथ जो विष जमा होता है, उसका निष्कासन हो जाता है। विषों के निष्कासन के लिए, पाचनतंत्र और आंतों को विश्राम देने के लिए आवश्यक है उपवास। धर्म का सिद्धांत है—बुरे संस्कारों के शोधन के लिए, त्रिगुप्ति की साधना के लिए उपवास आवश्यक है। त्रिगुप्ति की साधना का तात्पर्य है पूरे तंत्र को विश्राम देना। आयुर्वेद और अध्यात्म इस बिन्दु पर आहार-संयम की बात पर सम्मत हो जाते हैं।

खेद भी, लाभ भी

यह प्रायः देखा गया है—कम खाने वाले जल्दी नहीं मरते, ज्यादा खाने वाले जल्दी मरते हैं। दूसरे महायुद्ध के दौरान जर्मनी सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ। आहार की पर्याप्त उपलब्धि एक समस्या थी। लोगों के लिए राशन की व्यवस्था की गई। प्रति व्यक्ति राशन बहुत कम मिलता था। तीन चार वर्ष बहुत कठिनाई में बीते। इस संदर्भ में जर्मनी के स्वास्थ्य मंत्री का एक वक्तव्य प्रसारित हुआ, जिसमें कहा गया—इन तीन-चार वर्षों में जर्मन नागरिकों को भोजन संबंधी बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। जो बहुत मात्रा में खाने वाले थे, उन्हें बहुत कम राशन से काम

चलाना पड़ा है, इस बात का हमें खेद है किन्तु इससे एक लाभ भी हुआ है और वह यह है—पचास प्रतिशत बीमारियां कम हो गई हैं।

मध्यम-मार्ग

कम आहार से कष्ट हो सकता है, पर मनुष्य रोगी नहीं बनता। इस सचाई के संदर्भ में आहार-संयम का मूल्यांकन करें। आहार-संयम के अनेक प्रकार हो सकते हैं। एक व्यक्ति संकल्प करता है—आज मैं चीनी नहीं खाऊंगा, मिठाई नहीं खाऊंगा या आज मैं नमक नहीं खाऊंगा अथवा आज मैं अमुक प्रकार के पदार्थ नहीं खाऊंगा—ये सारे आहार-संयम के प्रयोग हैं। कभी नमक छोड़ा, कभी चीनी, कभी मिठाई और कभी कुछ। आहार-संयम के ये प्रयोग वैकल्पिक रूप से निरन्तर चलते रहें तो बहुत लाभ हो सकता है। संयम का एक प्रकार यह भी हो सकता है—मैं एक दिन में इतनी वस्तुओं से ज्यादा नहीं खाऊंगा। एक व्यक्ति सदा के लिए चीनी या नमक छोड़ दे तो कठिनाई हो सकती है। यह नहीं कहा जा रहा है—बिलकुल मत खाओ और यह भी कहा नहीं जा रहा है—खूब खाओ। बिलकुल न खाने का और डटकर खाने का—दोनों विश्वास गलत हैं। मध्यम-मार्ग है आहार का संयम। हम इसे अपनाएं।

आजकल विशेष प्रसंगों को मनाने का अर्थ है—विशेष प्रकार का भोजन। उस दिन बहुत मिठाइयां बननी चाहिए, अमुक-अमुक पदार्थ बनना चाहिए। यदि जन्मदिन है, तो केक अवश्य काटनी चाहिए। वस्तुतः जन्मदिन को मनाना चाहिए संयम और साधना के साथ। उपवास न करें पर आहार-संयम का पाठ अवश्य पढ़ें। जन्मदिन पर ज्यादा खाना और ज्यादा खिलाना—यह व्यवहार चलता है किन्तु यदि ऐसे प्रसंगों पर विशेष संयम किया जाए तो वह सारी खुशियों से अधिक लाभदायक बनता है। जिसे अपने शुभ भविष्य का निर्माण करना है, अपने आचार-विचार और व्यवहार को पवित्र बनाए रखना है, मानसिक और भावात्मक संतुलन का जीवन जीना है, उसके लिए आहार-संयम का बहुत मूल्य है। आहार का कषाय से संबंध स्पष्ट है। कषाय के अल्पीकरण का एक सूत्र है आहार-संयम। यह प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति से जुड़ा हुआ है। क्या खाने से मेरा मन और भाव पवित्र रहता है, इसका निर्णय व्यक्ति स्वयं कर सकता है।

जैन दर्शन ने इस बात पर बल दिया—मांसाहार मत करो। मांसाहार अनेक बुराइयों की जड़ है। आहार-संयम का एक पहलू है मांसाहार का वर्जन। यह सब दृष्टियों से आवश्यक है। दूसरा पहलू है शाकाहार का। इस संदर्भ में भी निर्देश दिया गया—तामसिक पदार्थ मत खाओ। वे पदार्थ तुम्हारे लिए उपयोगी हैं, जिनसे शरीर, मन और भाव पवित्र रहे। किस ऋतु में क्या खाएं और क्या न खाएं—इसका आयुर्वेद में विशद वर्णन है। एक धार्मिक व्यक्ति आध्यात्मिक स्वास्थ्य के संदर्भ में आहार का विश्लेषण करे, हितकर भोजन का निर्धारण करे, आहार-संयम करे। उसकी यह दृष्टि स्पष्ट रहे—अर्जित संस्कारों की विशुद्धि आहार-संयम से सम्भव है। यह दृष्टि स्पष्ट होती है तो स्वास्थ्य और साधना दोनों का पथ सदा प्रशस्त बना रहता है।

3. आहार का विवेक (1)

चिकित्सक ने ग्रामीण किसान को सलाह दी—‘भोजन करते समय पानी पीना हो तो भोजन के बीच में पीना चाहिए। पहले भी नहीं और भोजन के तत्काल बाद भी नहीं।’ किसान ने इस बात को पकड़ लिया। एक दिन उसने तीन-चार बाजरे की मोटी-मोटी रोटियां खा ली। उसके बाद याद आया—अरे! आज बीच में पानी पीया ही नहीं। पत्नी से कहा—‘पानी लाओ।’

‘आपने भोजन कर लिया। अब भोजन के बाद पानी नहीं पीना है।’

‘नहीं, तुम पानी लाओ।’

पत्नी पानी ले आई। उसने पानी पीया और बोला—‘तीन-चार रोटियां फिर ले आओ। पानी भोजन के बीच में हो जाएगा।’

प्रश्न होता है—मिताहार की परिभाषा क्या हो? तीन-चार रोटियां पहले खा ली और तीन-चार बाद में। हम इसको मिताहार कहें या अमिताहार? यह इतना जटिल प्रश्न है कि इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह व्यक्ति-सापेक्ष प्रश्न है। एक व्यक्ति हलकी-फुलकी दो चपातियां भी नहीं खा सकता और एक व्यक्ति बीस फुलके खा जाता है। वह एक दिन नहीं, प्रतिदिन खाता है। किसको मित आहार मानें और किसको अमित आहार? हमें एक कसौटी निश्चित करनी होगी।

कसौटी यह है—भोजन के बाद शरीर में भारीपन न आए, शरीर हलका बना रहे। इन्द्रियां प्रसन्न रहे, मन प्रसन्न रहे, चिन्तन स्वस्थ रहे। सोचने की शक्ति, काम करने की शक्ति बनी रहे। यदि ऐसा होता है तो मानना चाहिए—भोजन परिमित हुआ है। यदि भोजन के बाद खाट को तोड़ना पड़े, शक्तियां कुंठित हो जाएं तो मानना चाहिए कि भोजन परिमित नहीं हुआ है। यह एक कसौटी है, जिसके आधार पर प्रत्येक व्यक्ति यह जान सकता है कि मैं परिमित खा रहा हूं या अपरिमित?

अपान की शुद्धि

परिमित भोजन की एक महत्वपूर्ण कसौटी यह है—पाचन-तंत्र और उत्सर्जन-तंत्र स्वस्थ है या नहीं? परिमित भोजन की दृष्टि से दोनों तंत्रों की स्वस्थता बहुत महत्वपूर्ण है। पाचन-तंत्र ठीक है तो जो खाया जाएगा, उसका

सम्यक् पाचन होगा। यदि पाचन ठीक होगा तो मनुष्य बहुत सारी शारीरिक, मानसिक और भावात्मक व्याधियों से मुक्त रहेगा। पाचन-तंत्र का संबंध है उत्सर्जन-तंत्र से। यदि उत्सर्जन-तंत्र स्वस्थ नहीं है तो मानना चाहिए कि भोजन परिमित नहीं है। उत्सर्जन-तंत्र ठीक है तो शरीर हलका रहेगा, मन और इन्द्रियां प्रसन्न रहेंगी, चिन्तन स्वस्थ होगा। यदि अपान वायु शुद्ध नहीं है तो दिमाग भारी रहेगा, व्यक्ति निषेधात्मक विचार से आक्रांत होगा। बहुत सारे निषेधात्मक विचार अपान की अशुद्धि की अवस्था में पैदा होते हैं। बहुत लोगों को आत्महत्या तक का विचार आ जाता है।

भोजन की सबसे बड़ी कसौटी है—अपान की शुद्धि, कब्ज का न होना। अनेक लोग इस भाषा में सोचते हैं—ज्यादा खाएंगे, बार-बार खाएंगे तो पेट की सफाई होगी। यह धारणा सही नहीं है। ज्यादा खाने या बार-बार खाने का अर्थ है—कब्ज को आमंत्रण। एक बार खाया, पूरा पचा नहीं, फिर दूसरी बार खा लिया। दोनों की मल-क्रिया अलग-अलग होगी, एक साथ शुद्धि नहीं होगी। या तो वह अपक्व अवस्था में निकलेगा अथवा आंतों से चिपट जाएगा। यह अधिक मात्रा में खाना, बार-बार खाना, जिसे आयुर्वेद की भाषा में अध्यशन कहा गया है, विचारों को विकृत बनाने का उपाय है। आजकल एक तालिका मिलती है—किस भोजन को पचने में कितना समय लगता है। अनाज को पचने में कितना समय लगेगा, दूध और जूस को पचने में कितना समय लगेगा। इन सबके समय का निर्धारण है उस तालिका में। एक बार जो खाया, उसका पाचन होने से पहले दूसरी चीज को खाने का अर्थ है कब्ज को आमंत्रित करना।

‘मित’ शब्द एक सूचक या प्रतीक शब्द है। वस्तुतः आहार के बारे में हमारा ज्ञान विकसित होना चाहिए।

दो सूचना-केन्द्र

हमारे भीतर दो सूचना केन्द्र हैं। एक कहता है—खाओ। दूसरा कहता है—अब मत खाओ। ये दोनों सूचनाएं हमें निरंतर मिलती हैं। कहीं बाहर से नहीं, अपने ही भीतर से आती हैं। जब भूख लगती है, तब वह एक रासायनिक जैविक प्रक्रिया के द्वारा लगती है। मत खाओ, यह निषेध भी जैविक रासायनिक प्रक्रिया से आता है। ‘सेराटोनिन’ नाम का एक रसायन है, उसका स्राव ठीक मात्रा में नहीं होता है तो आदमी भोजन से हाथ खींच लेता है। वह सोचेगा—अब मुझे नहीं खाना है। मैं तृप्त हो गया हूं। एक आदमी अनाज खाता है। दो फुलके खाए और तृप्ति हो गई। यदि वह कुछ दूसरे तत्व खाता है, प्रोटीन खाता है तो भूख जल्दी नहीं बुझती। उसका कारण यह है—अधिक प्रोटीन का भोजन सेराटोनिन के स्राव को मंद बना देता है इसलिए आदमी खाता है तो उसे देर से तृप्ति होती है। यदि व्यक्ति कार्बोहाइड्रेट खाता है तो तृप्ति जल्दी हो जाती है। व्यक्ति अनाज खाता है, भूख बुझती हुई प्रतीत होती है। वह फल-सब्जियां आदि खाता है तो ऐसा नहीं लगता कि भूख बुझ गई है। खाने के बाद भी महसूस होता है—अभी पेट खाली है। इसका हेतु सेराटोनिन के स्राव का मंद होना है।

हम इन दोनों से परे की बात सोचें। कसौटियों के आधार पर स्वयं निर्णय लें—कितना खाना मेरे लिए अनुकूल है? कौनसा भोजन मेरे लिए अनुकूल है? प्रत्येक व्यक्ति इसका परीक्षण कर सकता है। मनुष्य स्वयं निर्णायक है। कितना ही बड़ा वैद्य या डॉक्टर हो, वह व्यक्ति के खान-पान की मात्रा का निर्धारण नहीं करता। किन्तु यह निश्चित है कि आहार का हमारे शरीर, मन और भाव पर प्रभाव होता है। किस प्रकार के भोजन का क्या प्रभाव होता है, इसका वर्तमान वैज्ञानिकों ने गंभीर अध्ययन किया है और अनेक निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं।

अपराध का कारण

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपराधी प्रकृति के बच्चों का विश्लेषण किया। जांच से यह तथ्य सामने आया कि वे बच्चे कृत्रिम रंग वाले और अति-परिष्कृत पदार्थ खाते थे। आजकल बाजार में रंग-बिरंगी मिठाइयों के ढेर लगे रहते हैं। वे देखने में बहुत अच्छी लगती हैं, खाने में भी स्वादिष्ट लगती हैं पर उनका परिणाम अच्छा नहीं होता। जो डिब्बा-बंद अति-परिष्कृत पदार्थ आते हैं उनका प्रभाव भी नुकसानदेह होता है। मनोवैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला—बच्चे के अपराधी होने का कारण है अति-परिष्कृत और कृत्रिम रंग युक्त भोजन। मनोवैज्ञानिकों ने उनके आहार को बदला, बच्चों को सहज पक्व भोजन देना शुरू किया, कृत्रिम रंग युक्त भोजन देना बंद कर दिया। कुछ ही दिनों में उनकी उदंडता समाप्त हो गई, बच्चे विनीत और शांत बन गए। अपराध करने का मनोभाव समाप्तप्राय हो गया।

वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के सैकड़ों-सैकड़ों प्रयोग किए हैं—मनुष्यों पर भी और पशुओं पर भी। यह प्रमाणित हो गया है—जितने कृत्रिम शर्बत, पेय पदार्थ, कृत्रिम रंग से बनी मिठाइयां हैं, वे देखने में आकर्षक और मनमोहक भले हों, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। जितने डिब्बा-बंद पदार्थ आते हैं, वे प्रायः स्वास्थ्य के शत्रु हैं। ऐसा मानदण्ड बन गया—जितने बड़े लोग हैं, वे प्रायः डिब्बा-बंद भोजन खाते हैं। छोटे आदमी का मन भी ललचा जाता है। समस्या यह है—आज चावल भी शुद्ध नहीं मिलता। वह भी परिष्कृत किया हुआ मिलता है। आटा भी परिष्कृत मिलता है, चोकर निकाला हुआ मिलता है। सारी चीजें परिष्कृत मिलती हैं। जिन लोगों ने यह परिष्कृत भोजन खाना सिखाया, वे ही आज उसके दुष्परिणाम बता रहे हैं। जनता पहले सीख जाती है, फिर उसके परिणाम भी भोगती है पर उसका छूटना मुश्किल बन जाता है।

आहार और व्यवहार—दोनों में गहरा संबंध है। पहले वैज्ञानिक जगत् में यह मान्यता नहीं थी कि आहार हमें बहुत प्रभावित करता है किन्तु वैज्ञानिक परीक्षणों के बाद यह निष्कर्ष सामने आया है—आहार व्यवहार को बहुत प्रभावित करता है। भारतीय साहित्य में आहार और व्यवहार के संबंध को व्यक्त करने वाली बहुत बातें प्रचलित हैं। भीष्म पितामह ने कहा—हम दुर्योधन का दूषित अन्न खाते थे इसलिए ऐसा हो गया। एक कथा भी है। एक मुनि गृहस्थ के घर गया। उसका दूषित आहार खाया। परिणाम यह आया—मुनि ने उस गृहस्थ के घर से हार चुरा लिया। आहार और मानवीय स्वभाव के सम्बन्ध की चर्चा को जीवन के लिए समझना जरूरी है।

प्राणशक्ति बढ़े

वर्तमान साहित्य को पढ़ने वाले तीन शब्दों से बहुत परिचित हैं—अपोषण, कुपोषण और पोषण। अपोषण और कुपोषण—दोनों कठिनाई पैदा करते हैं। पोषण सम्यक् होना चाहिए। ऐसा भोजन नहीं करें जो प्राणशक्ति को क्षीण करे। हमारी दो प्राण ऊर्जाएं हैं। एक वह है, जो जीवन का मूल आधार है। एक वह है, जो भोजन के द्वारा निष्पन्न होती है। आयुर्वेद में पांच प्राण माने गए हैं। उनमें एक प्राण या वायु है समान। वह पाचन के लिए उत्तरदायी है। उसे अग्नि कहते हैं। उसका स्थान है—नाभि, तैजस केन्द्र। हम जो खाते हैं, समान प्राण उसमें ऊर्जा पैदा करता है। प्राण के उत्पादन का स्थल है नाभि का परिपार्श्व। हम ऐसा भोजन न करें, जिससे समान वायु को कठिनाई पैदा हो जाए।

प्राण स्वस्थ कैसे रहे? यह सबसे मूल्यवान बात है। आज शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जा रहा है। कितनी औषधियां काम में ली जाती हैं! दवा दो और दवा के आधार पर मनुष्य को जिन्दा रखो। यह ठीक है कि दवा के आधार पर मनुष्य को जिलाते हैं पर उसके शरीर के जो सहज तंत्र हैं, वे काम करना बंद कर देते हैं।

एक व्यक्ति ने कहा—‘महाराज! ये जो बीकासूल आदि ताकत के कैप्सूल हैं, वह मैं रोज चार-पांच खा लेता हूं।’ मैंने कहा—‘भाई! चार-पांच कैप्सूल की तो जरूरत नहीं है शरीर को। यदि एन्टीबायोटिक दवा लो तो भी उसके साथ एक ही बीकासूल लेने की सलाह दी जाती है।’

उस भाई ने जवाब दिया—‘महाराज! चार-पांच लेने में क्या फर्क पड़ता है? यदि ज्यादा है तो निकल जाएंगे।’

उसने इस परामर्श को बहुत हलके ढंग से लिया। व्यक्ति ने यह नहीं सोचा—जो ज्यादा विटामिन खाया है, वह निकल जाएगा पर उसे निकालने में गुर्दे को कितना श्रम करना पड़ेगा, गुर्दा कितनी जल्दी गड़बड़ा जाएगा। लोग बहुत नमक खाते हैं, चटपटी चीजें खाते हैं। वे खाने में भी अच्छी लगती हैं पर उनके लिए गुर्दे को कितना अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है।

आचार्यवर का पाली में चातुर्मास था। एक प्राकृतिक चिकित्सक आए डॉ. रतन पहाड़ी। एक दिन उन्होंने कहा—‘महाराज! शुगर की बीमारी का एक कारण है, ज्यादा पापड़ खाना।’ मैंने कहा—‘डॉक्टर साहब! अधिक चीनी खाना, चीनी से बने पदार्थ खाना, अधिक आलू, चावल आदि खाना शुगर की बीमारी को निमंत्रण देना है। एक स्थान पर ज्यादा बैठा रहना भी इस बीमारी का हेतु बनता है, पर पापड़ ज्यादा खाने से शुगर की बीमारी होती है, यह तो बिलकुल नई बात है।’

डॉ. पहाड़ी ने कहा—‘महाराज! ऐसा होता है। पापड़ में एक ऐसा क्षार तत्व है, जो पैंक्रियाज की झिल्ली को अस्त-व्यस्त कर देता है। इंसुलिन की कमी हो जाती है, शुगर की बीमारी की संभावना बढ़ जाती है।’

मिताहार का तात्पर्य

भोजन के संदर्भ में यह विवेक जरूरी है कि किसी भी तत्व का अतिमात्रा में सेवन न हो। मात्रा का विवेक आवश्यक है। यदि हम स्वयं अपने परीक्षक बन जाएं तो मिताहार का मूल्य समझ में आ जाए।

मिताहार का शाब्दिक अर्थ है—परिमित भोजन, पर इसका तात्पर्य है—ऐसा न खाएं, जिससे ध्यान में बाधा आए, मन और शरीर का स्वास्थ्य प्रभावित हो। एक ओर हम मानते हैं कि अज्ञान सबसे बड़ा कष्ट है। दूसरी ओर जो जीवन का, प्राणधारण का सर्वाधिक कारक तत्व है भोजन, उसके बारे में ज्ञान कम है। यह आवश्यक है कि पाचन-तंत्र, उत्सर्जन-तंत्र और आहार-इनके बारे में इतनी जानकारी हो, जिससे शारीरिक, मानसिक और चिंतनात्मक स्वस्थता सदा बनी रहे।

आचार्यश्री तुलसी दिल्ली में वरिष्ठ पत्रकार सत्यदेव विद्यालंकार के घर पर पधारे। वे भोजन कर रहे थे। आचार्यश्री ने पूछा—‘आप बहुत हलका भोजन करते हैं?’ पत्रकार सत्यदेव विद्यालंकार ने उत्तर दिया—‘आचार्यजी! अभी मैं एक पुस्तक लिख रहा हूं। जब मैं कोई साहित्य लिखता हूं, तब भोजन बहुत कम कर देता हूं, सीधा-सादा भोजन करता हूं।’

जिस व्यक्ति को दिमाग स्वस्थ रखना है, मस्तिष्कीय काम करना है, उसे मिताहार को समझना होगा। मिताहार का मतलब है—मस्तिष्कीय शक्ति का पूरा प्रयोग। अमिताहार का अर्थ है—मस्तिष्क को जड़ बना देना। पेट्रूपन और दिमागीपन—दोनों एक साथ नहीं रह सकते। जिस दिन यह सचाई समझ में आएगी, मिताहार की उपयोगिता स्पष्ट हो जाएगी।

4. आहार का विवेक (2)

वस्तु का लक्षण है होना और होने का लक्षण है क्रिया करना। जो क्रियाशील नहीं होता वह सत् नहीं होता। सत् वह होता है जिसमें क्रिया होती है और निरंतर होती है। कुछ वस्तुओं में स्वाभाविक क्रिया होती है और कुछ वस्तुओं में स्वाभाविक और सांयोगिक—दोनों प्रकार की क्रिया होती है। क्रिया का स्रोत है शक्ति और शक्ति का स्रोत है आहार। हमारे शरीर-तंत्र में दो मुख्य अवयव हैं—मस्तिष्क और पाचन-संस्थान। मस्तिष्क ज्ञानकेन्द्र और क्रियाकेन्द्र है। वह शरीर की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पाता है, उनका संचालन करता है। पाचन-संस्थान आहार का परिपाक कर उसका शरीर के साथ साम्य करता है।

परिमित भोजन का महत्त्व

मस्तिष्क और शरीर—दोनों की क्रिया प्राण-ऊर्जा या विद्युत्-ऊर्जा द्वारा होती है। मस्तिष्क को अपनी क्रिया करने के लिए बीस वोल्ट विद्युत्-ऊर्जा चाहिए। उसकी पूर्ति ग्लूकोज और ऑक्सीजन—इन दो स्रोतों से होती है। परिमित भोजन पाचन-संस्थान के हिस्से में आने वाली विद्युत्-ऊर्जा से काम चला लेता है। अतिरिक्त भोजन होता है तो पाचन-तंत्र अतिरिक्त विद्युत्-ऊर्जा का उपयोग करता है। पाचन-संस्थान द्वारा अतिरिक्त विद्युत्-ऊर्जा का उपयोग किये जाने पर मस्तिष्क को मिलने वाली विद्युत्-ऊर्जा की मात्रा कम हो जाती है। फलतः पेट की क्रिया प्रधान और मस्तिष्क की क्रिया गौण हो जाती है। आदमी अधिक आहारवान और कम बुद्धिमान हो जाता है। क्या कोई भी समझदार इसे पसन्द करेगा ?

आहार के बारे में हमारा दृष्टिकोण बहुत ही सीमित है। परिमित भोजन आहार का एक मानदंड है। किन्तु वही एकमात्र नहीं है। संतुलित भोजन का भी अपना महत्त्व है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कुछ भी खाकर शरीर की अपेक्षा पूरी कर लेते हैं। सब वैसे नहीं होते। जिनकी प्राण-ऊर्जा सशक्त होती है, जो अपने अन्तःस्रावों पर पूर्ण अधिकार पा लेते हैं, उनमें रासायनिक परिवर्तन की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। साधारण आदमी ऐसा नहीं कर पाते। वे संतुलित भोजन के अभाव में शरीर और मन—दोनों दृष्टियों से रुग्ण हो जाते हैं।

शरीरशास्त्र के अनुसार क्रोध, आवेश, स्वभाव का चिड़चिड़ापन, विक्षोभ—ये शरीर के रोग हैं। यूरिक एसिड की मात्रा बढ़ जाने से ये उत्पन्न होते हैं। यह मात्रा 'एंजाइम' (एक रासायनिक पदार्थ) की मात्रा घट जाने से बढ़ती है और उसकी मात्रा की पूर्ति होते ही यूरिक एसिड की मात्रा घट जाती है। मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है। क्रोध हंसी में बदल जाता है। क्रोध के निमित्तों की स्वीकृति कर्मवाद के सिद्धान्त में बाधक नहीं है।

मुख्य आहार है प्राणवायु

आहार वही नहीं है जो हम मुख से खाते हैं। मुख्य आहार है—प्राणवायु। उसमें पोषण की क्षमता है इसलिए वह आहार है और वह आहार के परिपाक की शृंखला का एक तत्त्व है इसलिए आहार का आहार है। पूर्ण श्वास या दीर्घ श्वास लेने वाला व्यक्ति फुफ्फुस के विष को बाहर निकालता है और रक्त को विशुद्ध बनाता है। साथ-साथ वह शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को भी विकसित करता है। पुराने जमाने में योग के आचार्यों ने इस विषय का साक्षात् किया था और उन्होंने श्वास की अनेक पद्धतियां विकसित की थीं। आज वे रूढ़ि-रूप में चल रही हैं। वैज्ञानिक पद्धति भी जानकारी खो जाने पर रूढ़ि बन जाती है। आज के वैज्ञानिक फिर इस विषय में खोज कर रहे हैं। वे श्वास के विभिन्न प्रयोगों द्वारा अनेक रोगों की चिकित्सा में सफल हुए हैं। तापमान का संतुलन और शक्ति—ये दो आहार के प्रयोजन हैं। प्राणवायु दोनों की पूर्ति करती है।

आहार को केवल आर्थिक और भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं देखा जा सकता। यह दृष्टिकोण भी है, किन्तु और अनेक दृष्टिकोणों से भी इस पर विचार करना चाहिए। अन्तिम दृष्टिकोण है हमारी आत्मा की सुरक्षा, आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण। किन्तु जहां आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों का प्रश्न है, उसमें मनुष्य ही सर्वाधिक विकास कर सकता है और उसे ही सर्वाधिक विकास करने का अवसर प्राप्त है।

आज हिन्दुस्तानी भोजन का जैसा क्रम चल रहा है, वह बहुत उपयोगी नहीं है। आबादी की अधिकता के कारण ही अनाज की कमी नहीं है बल्कि अनाज की कमी का कारण हमारा असंतुलित भोजन भी है। एक आदमी दिनभर में एक सेर भोजन कैसे कर सकता है? हमारी आंतों में केवल अन्न को पचाने की इतनी क्षमता भी नहीं है और न उसे निकालने की क्षमता है। हमारी आंतें एक साथ इतने भोजन को न पचा सकती हैं और न निकाल सकती हैं। इसीलिए हमारे यहां कब्ज की बीमारी बहुत होती है और उसे मिटाने के लिए वैद्य-डॉक्टरों की भरमार भी है। बहुत-सी गोलियां आजकल निकली हैं।

हमारे यहां भोजन का मानदण्ड है केवल स्वाद। स्वाद होना चाहिए। बाजार में चले जाइए, तली हुई अनेक चीजें दिखाई पड़ेगी। चटपटी चीजें केवल स्वाद के लिए खायी जाती हैं और काफी मात्रा में खायी जाती हैं। चोकर की रोटी खाना शायद बहुत कम लोग पसन्द करते हैं, जबकि चोकर में इतने तत्त्व हैं कि हम उसे अच्छी तरह जानते नहीं। परन्तु लोगों की ऐसी मान्यता बन गयी है कि चोकर केवल डालने के लिए होता है, खाने के लिए नहीं।

आज भोजन की आवश्यकता इसलिए इतनी अधिक है कि हम ठीक प्रकार से भोजन करना नहीं जानते, ठीक प्रकार से श्वास लेना नहीं जानते। जो व्यक्ति प्राणायाम को जानता है, ठीक प्रकार से श्वास लेना जानता है, उसकी खुराक बहुत कम होगी। केवल खाना ही पर्याप्त नहीं है। खाने के साथ तत्त्वों को कितना पचा सकते हैं, यह महत्व

की बात है। अगर किसी को भस्मक रोग हो गया तो खाने के कुछ देर बाद ही उसे भूख लग जाती है और इस प्रकार वह काफी भोजन करता है। किन्तु उसके शरीर में कोई परिवर्तन नहीं आता। वह वैसे ही दुबला-पतला रहता है। कुछ लोगों को भोजन की कमी नहीं है। वे बढ़िया भोजन भी करते हैं, किन्तु उन्हें ठीक प्रकार से पोषक तत्व नहीं मिलते। उसका कारण यह है कि वे पूरा भोजन हजम नहीं कर पाते।

भोजन के लिए जितना खाद्य-पदार्थों का निर्वाचन और विवेक होना जरूरी है, उतना ही प्राणवायु के सम्बन्ध में जानना जरूरी है। जो व्यक्ति श्वास के बारे में, प्राणवायु के बारे में ठीक जानकारी नहीं रखता, उसके लिए भोजन उतना लाभदायी नहीं होता।

सबसे बड़ी औषधि

आहार का एक महत्वपूर्ण मानदंड है—अनाहार। आहार और अनाहार का संतुलन रहने पर ही आहार अधिक उपयोगी बनता है। कोरा आहार आहार की उपयोगिता को कम करता है। उपवास का मूल्य केवल आध्यात्मिक नहीं है, शारीरिक भी है। काम को जितनी विश्राम की अपेक्षा है उतनी ही आहार को अनाहार की अपेक्षा है।

एक बार देवताओं का वैद्य अश्विनीकुमार मृत्युलोक में आया। वह वेश बदलकर वाग्भट्ट के पास पहुंचा जो कि आयुर्वेद के बहुत बड़े आचार्य थे। अश्विनीकुमार ने वाग्भट्ट से पूछा—‘वैद्यराजजी! मुझे ऐसी औषधि बतलाएं जो न जमीन से उत्पन्न हुई है और न आकाश से। वह पथ्य है, किन्तु उसमें कोई रस नहीं है और जो सब शास्त्रों द्वारा सम्मत भी है।’

**अभूमिजमनाकाशं, पथ्यं रसविवर्जितं।
सम्मतं सर्वशास्त्राणां, वद वैद्य! किमौषधम्॥**

वाग्भट्ट ने कहा—लंघन (उपवास) ही सबसे बड़ी औषधि है। यह न भूमि से उत्पन्न हुई है और न आकाश से। पथ्य है और रस-विवर्जित है। सब आचार्यों के द्वारा सम्मत भी है।

**अभूमिजमनाकाशं, पथ्यं रसविवर्जितं।
सम्मतं सर्वशास्त्राणां, लंघनं परमौषधम्॥**

उपवास ही सबसे बड़ी औषधि है। हम जब तक इसके महत्व को नहीं समझेंगे, हमारे भोजन की समस्या का समाधान नहीं निकलेगा। द्वितीय महायुद्ध के बाद जब जर्मनी में सर्वेक्षण किया गया तब निष्कर्ष निकला कि वहां अधिकांश बीमारियां अतिभोजन के कारण हुई हैं। हम लोग इतना खाते हैं जितना हमें नहीं खाना चाहिए। हर व्यक्ति खाते समय यही सोचता है कि पेट अभी भरा नहीं। किन्तु खाते समय पेट भरेगा कैसे? और खाते समय पेट भर गया तो फिर स्वस्थ कैसे रहोगे? हमें जितनी भूख लगती है, उसे चार भागों में बांट देना चाहिए। दो भाग भोजन के लिए,

एक भाग पानी के लिए और एक भाग वायु के लिए छोड़ देना चाहिए, परन्तु लोग जब खाना खाने के लिए बैठते हैं तो भूख से भी दो कौर अधिक खाना चाहते हैं। खाने के आधा घंटा बाद कहते हैं कि पेट फट रहा है, आंते फट रही हैं। इसी प्रकार हमारे यहां खाने की कोई व्यवस्थित पद्धति नहीं है। भोजन के सम्बन्ध में हमारा अज्ञान ही बहुत सारी समस्याओं को जन्म देता है। खाना जरूरी है तो उसके साथ-साथ स्वास्थ्य का ज्ञान भी जरूरी है, 'उपवास' और 'नहीं खाना' भी जरूरी है।

प्रश्न है रुचि का

व्यक्ति की हर प्रकार की गूढ़ भावनाओं को जानने का बहुत बड़ा माध्यम है भोजन। जो सात्त्विक रुचि का व्यक्ति है, वह एक प्रकार का भोजन ग्रहण करेगा और जिसकी काम-वासनाएं उभरी हुई हैं, वह दूसरे प्रकार का भोजन पसंद करेगा। भोजन की पसंद अपनी होती है। उसके चुनाव में रुचि बोलती है व्यक्ति की। किसी को जांचना-परखना हो तो आप उसके भोजन को देख लें। व्यक्ति की परख हो जाएगी।

यदि मैं कोई डॉक्टर होता तो स्वास्थ्य के बारे में चर्चा करता, पर मैं डॉक्टर नहीं हूं। कोई पोषणशास्त्री होता तो पोषक भोजन के बारे में चर्चा करता, पर मैं कोई पोषणशास्त्री नहीं हूं। फिर भी साधना जीवन का ऐसा विषय है कि कोई भी विषय उसकी पकड़ से छूट नहीं सकता। हम साधना के किसी एकांगी कोण को लेकर उसके मर्म को छू नहीं सकते। साधक को स्वयं डॉक्टर बनना होता है, स्वयं भोजनशास्त्री और पोषणशास्त्री बनना होता है। क्योंकि साधना के साथ हमारे शरीर का संबंध है, हमारे मन का संबंध है, हमारी चेतना का संबंध है। जहां शरीर और मन का संबंध है, वहां भोजन के प्रश्न को हम छोड़ नहीं सकते। यह मांस और हड्डी का स्थूल शरीर भोजन के आधार पर ही बनता है। भोजन क्या करता है? वह मांस को बनाता है, हड्डी को बनाता है, गर्मी और सक्रियता देता है। ये सब भोजन के काम हैं। भोजन का एक तत्व है 'प्रोटीन'। यह हमारे मांस को बनाता है। भोजन का एक तत्व है 'क्षार'। यह हमारी हड्डियों को बनाता है। भोजन का ही एक तत्व है—चिकनाई आदि। यह हमारी गर्मी और शक्ति को बनाता है।

भोजन के दो प्रकार

भोजन दो प्रकार का होता है—पोषक भोजन और रक्षक भोजन। घी आदि गरिष्ठ भोजन पोषक हैं। ये शरीर को पुष्ट बनाते हैं। रक्षा करने वाले तत्व होते हैं—फल, सब्जी आदि। ये हमारे शरीर के रक्षण में सहयोग देते हैं। भोजन का काम है—मांस का निर्माण, हड्डियों का निर्माण, गर्मी और शक्ति प्रदान करना आदि-आदि। यदि भोजन न हो तो शरीर में गर्मी और विद्युत् पैदा नहीं हो सकती। विद्युत् के बिना शरीर चल नहीं सकता, जैसे कोई भी इंजिन विद्युत् के बिना चल नहीं सकता। विद्युत् पैदा होती है गर्मी से, उष्मा से, अग्नि से और गर्मी प्राप्त होती है भोजन

से। इस तथ्य की पुष्टि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आप दो दिन भोजन छोड़ दीजिए। दो दिन में ही आपके घुटने टिक जाएंगे, सारी ताकत टूटती नजर आएगी। एक दिन के उपवास से ही ताकत घटने लग जाती है। पांच-सात दिन की तो बात ही क्या?

क्यों लेते हैं भोजन?

अशन और अनशन—ये दोनों साथ-साथ चलते हैं। भोजन करना और उसे छोड़ना—ये दोनों साथ-साथ चलते हैं। कोरा भोजन काम का नहीं है। शक्ति भोजन से प्राप्त होती है पर वह भोजन से कम भी होती है। भोजन के भी अपने कुछ विधान हैं। इस विषय में हमें दो बातों पर विचार करना है—

1. हम भोजन किस भावना से ग्रहण कर रहे हैं?
2. भोजन में कौन-कौन से पदार्थ ग्रहण कर रहे हैं?

ये दोनों प्रश्न हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। भोजन क्यों ले रहे हैं? क्या पेट भरने के लिए भोजन ले रहे हैं? यदि पेट भरने के लिए ही भोजन ले रहे हैं, तो वह बहुत ही स्थूल बात है। यह पेट गड़ढ़ा तो है नहीं। लोग गड़ढ़े को कूड़ा-करकट डालकर भर देते हैं। पेट को हम गड़ढ़ा तो बना नहीं सकते। जो भी, जैसी भी वस्तु हमारे सामने आए, उसे खाकर पेट को भर दें—यह हो नहीं सकता। जो चीजें हम लेते हैं, उनका हमारे शरीर पर ही नहीं, मन पर भी बहुत ज्यादा असर होता है। इसलिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि हम लेने वाली चीजों पर ध्यान दें, भोजन लेने की भावना पर ध्यान दें। भोजन का हमारे विचारों पर भी अप्रत्यक्ष और सूक्ष्म रूप से प्रभाव पड़ता है। भोजन लेते हैं हम जीवन चलाने के लिए। इसके साथ ही यह प्रश्न जुड़ा है कि हम जीवन की धारणा क्यों करें?

जीवन का उद्देश्य

किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन को धारण करना, उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शरीर को धारण करना और शरीर को धारण करने के लिए भोजन को ग्रहण करना—ये तीन बातें हैं। हमारा उद्देश्य है—चेतना का विकास। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम शरीर को धारण करते हैं। चेतना का विकास करने के लिए शरीर को धारण करना है और शरीर को धारण करने के लिए भोजन ग्रहण करना है। इसलिए भोजन में हमें उन्हीं तत्वों को ग्रहण करना है जो हमारी चेतना के विकास में बाधक न बनें, सहायक बनें। भोजन में लिए जाने वाले पदार्थों के कारण यदि आपकी वासना उत्तेजित हुई, क्रोध अधिक आया, भय अधिक लगा अथवा अन्य बुरी भावनाओं ने जन्म लिया तो आपकी चेतना का विकास रुक जाएगा। भोजन आपके विकास में बाधक हो जाएगा। भोजन करते समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना है कि जो पदार्थ हम ले रहे हैं, वे हमारे मन और विचारों पर क्या असर करेंगे।

भोजन का प्रभाव

भोजन केवल शक्ति और गर्मी ही नहीं देता, वह और भी कुछ देता है। वह शरीर में सक्रियता पैदा कर उत्तेजना देता है। शरीर में जितने काम-केन्द्र, वासना-केन्द्र, आवेग-केन्द्र और स्मृति-केन्द्र हैं, वे सारे उत्तेजित होते हैं भोजन को प्राप्त कर। भोजन के अभाव में ये सारे केन्द्र शिथिल हो जाते हैं क्योंकि उन्हें अब सहयोग नहीं मिलता। सहयोग का रास्ता कट जाता है। सेना को जब रसद नहीं मिलती, वह आगे नहीं बढ़ पाती। शत्रु-सेना सबसे पहले रसद के मार्ग को काट देती है। उपवास रसद के मार्ग को काट देता है। जो पहुंच रहा है, जिससे शक्ति मिल रही है, उसे रोक देता है। उपवास किया, रस नहीं मिला तो कोई सक्रियता नहीं, कोई उत्तेजना नहीं। उस स्थिति में इन्द्रियां शांत, मन शांत और सब कुछ ढीला-ढाला। शक्ति का स्रोत सूखने लग जाता है, क्योंकि उसे कुछ प्राप्त नहीं हो रहा है। इस प्रक्रिया के द्वारा यह होता है कि उत्तेजना या सक्रियता के जो साधन हैं, उपाय हैं, निमित्त हैं उनको हम समाप्त कर देते हैं। किन्तु पूरा समाप्त नहीं कर पाते। यह पूरी प्रक्रिया नहीं है। केवल मार्ग में जो व्यवधान डालते थे, उन्हें शिथिल बना डालते हैं।

आहार का परित्याग, एक शब्द में उपवास, इसलिए है कि जिनसे उत्तेजना पैदा हो रही है, उनका मार्ग अवरुद्ध किया जाए।

हम भोजन नहीं करते हैं तो इसका परिणाम केवल स्थूल शरीर पर ही नहीं होता, सूक्ष्म शरीर पर भी होता है। यदि उसका परिणाम केवल स्थूल शरीर पर ही होता तो वह बहुत छोटी बात होती। स्थूल शरीर बेचारा दोनों ओर से घसीटा जा रहा है। इधर विषयों की अभिव्यक्ति होती है स्थूल शरीर में, उधर सजा भी उसे ही मिलती है। दूसरी बात यह कि सूक्ष्म शरीर को भी शक्ति प्राप्त होती है स्थूल शरीर के माध्यम से ही। उसे भी शक्ति चाहिए। वह स्थूल शरीर से ऐसा काम करवाता है कि उसे शक्ति प्राप्त हो सके। उपवास करना सूक्ष्म शरीर को पसन्द नहीं है। भूखा रहा स्थूल शरीर और चोट पड़ी सूक्ष्म शरीर पर। ऊर्जा का स्रोत है स्थूल शरीर। हमारा मन बुरी बात सोचता है तो ताकत किसे मिलती है? ताकत मिलती है सूक्ष्म शरीर को, कर्म शरीर को। सारी शक्ति प्राप्त होती है स्थूल शरीर के द्वारा। जब भोजन बंद होता है तो परेशानी होती है सूक्ष्म शरीर को। उसका प्रभाव वहां तक पहुंच जाता है।

अनुभव अशन और अनशन का

हम उपवास करते हैं। दो दिन, चार दिन या और अधिक दिन का उपवास करते हैं। उस समय हम अनुभव करेंगे कि हमारी इन्द्रियां शान्त होती जा रही हैं, हमारे आवेग शांत होते जा रहे हैं, सब कुछ ठीक हो रहा है। किन्तु जैसे ही हमने भोजन करना शुरू किया, रस का परिपाक शुरू हुआ, शक्ति का निर्माण आरंभ हुआ, वैसे ही हमें अनुभव होगा कि जो दीपक बुझ रहा था वह पुनः प्रज्वलित हो उठा, मानो अग्नि में और घी डाल दिया गया हो।

शक्ति का निर्माण होते ही हमारा मन फिर दौड़ना शुरू कर देता है। हमारी वासना दौड़नी शुरू हो जाती है। मतलब यह हुआ कि खाना बन्द तो मन और इन्द्रियों की सक्रियता भी बन्द और खाना प्रारम्भ तो मन और इन्द्रियों की दौड़ भी प्रारम्भ।

हम सात दिनों का उपवास करें, बहुत-सी बातें याद आनी बन्द हो जाएंगी। इसका तात्पर्य यह है कि शरीर में जब शक्ति होती है तभी ये सब उन्माद पैदा होते हैं। शरीर की शक्ति कम हो जाए तो उन्माद के द्वार भी बन्द हो जाते हैं। शायद इसीलिए अशन के साथ अनशन का विधान है। भोजन करने के साथ भोजन छोड़ने की बात जुड़ी हुई है। हम भोजन सर्वथा छोड़ नहीं सकते। हमें किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भोजन ग्रहण करना ही पड़ेगा। इसका अर्थ तो यह हुआ कि दो दिन का हम उपवास कर लें तो इन्द्रियां शान्त और फिर भोजन आरम्भ करें तो इन्द्रियों की दौड़ का भी प्रारम्भ। इस तरह हम कब तक लड़ सकेंगे? यह तो देवासुर संग्राम जैसा हो गया। कभी हम इन्द्रियों को सताएं तो कभी इन्द्रियां हमें सताएं। पूरा खाना छोड़ नहीं सकते और पूरा छोड़े बिना इन्द्रियां शांत नहीं हो सकतीं। यह बहुत बड़ी समस्या है। हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए शरीर आवश्यक है। शरीर के लिए भोजन आवश्यक है। हम अनशन करके बैठ नहीं सकते। फिर हम क्या करें। इसका समाधान भी हमें प्राप्त है। हम जो खाएं, वह चेतना के विकास की भावना के साथ खाएं और जो उसमें सहायक हो, वही खाएं।

स्वस्थ कौन ?

एक बार आयुर्वेद के महान् आचार्य महर्षि चरक पक्षी का रूप बनाकर वाग्भट के घर जाकर बैठ गए और बोले—‘कोरुक? कोरुक? कोरुक?—स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन?’

वाग्भट ने उसे आश्चर्य के साथ सुना। वे स्वास्थ्य के मर्म को जानते थे। वे बोले—‘हितभुक् हितभुक् हितभुक्—स्वस्थ वह है जो हितभोजी है। स्वस्थ वह है जो हितभोजी है। स्वस्थ वह है जो हितभोजी है।’

पक्षी फिर बोला—‘कोरुक? कोरुक? कोरुक?—स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन?’

वाग्भट ने उत्तर दिया—‘मितभुक् मितभुक् मितभुक्—स्वस्थ वह है जो मितभोजी है। स्वस्थ वह है जो मितभोजी है। स्वस्थ वह है जो मितभोजी है।’

पक्षी ने फिर प्रश्न किया—‘कोरुक? कोरुक? कोरुक?—स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन? स्वस्थ कौन?’

वाग्भट ने उत्तर दिया—‘ऋतभुक् ऋतभुक् ऋतभुक्—स्वस्थ वह है जो ऋतभोजी है। स्वस्थ वह है जो ऋतभोजी है। स्वस्थ वह है जो ऋतभोजी है।’ पक्षी उड़ गया। समस्या का समाधान हो गया।

तीन शब्द हैं—हित, मित और ऋत। इन तीनों का अपना महत्त्व है। हितभोजी वह है जो स्वास्थ्य के अनुकूल भोजन करता है। मितभोजी वह होता है, जो थोड़ा खाता है। डॉक्टरों के लिए नहीं खाता। एक डॉक्टर ने भोजन

को चार भागों में बांटते हुए कहा कि मनुष्य एक भाग तो अपने शरीर के लिए खाता है और तीन भाग हमारे लिए खाता है। अगर वह ऐसा न करे तो डॉक्टरों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। यदि सभी लोग मितभोजी बन जाएं तो डॉक्टरों को बोरिया-बिस्तर बांधना पड़े, उनकी जीविका का स्रोत समाप्त हो जाए।

परिणाम वैज्ञानिक प्रयोग का

अमेरिका में वैज्ञानिकों ने भोजन के संबंध में कई परीक्षण किए। उन्होंने चूहों को दो श्रेणियों में बांटा। आप मान लीजिए चूहों की एक श्रेणी 'क' है और दूसरी श्रेणी 'ख'। 'क' श्रेणी के चूहों को पौष्टिक भोजन दिया गया और 'ख' श्रेणी के चूहों को साधारण भोजन। उन्हें दूसरे दिन भूखा रखा गया। निष्कर्ष यह आया कि जिन चूहों को पौष्टिक भोजन दिया गया वे बीमार पड़े और जल्दी मर भी गए। जिन्हें साधारण और एक दिन के अन्तर से भोजन दिया गया वे स्वस्थ रहे और अपेक्षाकृत दो वर्ष अधिक जीए। आज यह प्रयोग सिद्ध हो चुका है कि भारी चीजें खाना, ज्यादा खाना पेट पर अतिरिक्त भार डालना है। यह कार्य पांच मन बोझ ढोने वाली गाड़ी पर पन्द्रह मन वजन लाद देने जैसा है।

भोजन को पचाने के लिए ऊर्जा की जरूरत होती है। वह सारे शरीर में है। शरीर का कोई भी अंग कुछ अतिरिक्त श्रम करता है, तब उसमें ऊर्जा का बहाव अधिक हो जाता है। भोजन को पचाने के लिए पाचन-संस्थान को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। उस समय उसे अतिरिक्त ऊर्जा अपेक्षित होती है। किसी एक अवयव को अतिरिक्त ऊर्जा की अपेक्षा होती है, तब दूसरे भागों में उसकी कमी हो जाती है। भोजन के तत्काल बाद चिंतन नहीं करने का अर्थ यही है कि पाचन-संस्थान में जाने वाली ऊर्जा में अवरोध पैदा न हो और फलतः ऊर्जा की कमी के कारण पाचन में विकृति न हो। जब हम सादा और संतुलित भोजन करते हैं तब हाथ, पैर और मस्तिष्क को संतुलित ऊर्जा मिलती रहती है। जब हम भारी और असंतुलित भोजन करते हैं तब पाचन-संस्थान अधिक मात्रा में ऊर्जा को खींचता है। फलतः ऊर्जा का बहाव असंतुलित हो जाता है। एक व्यक्ति धन का अतिरिक्त संग्रह बढ़ाता है तो निश्चित है कि किसी दूसरे के यहां गड़ढ़ा होता है। पाचन-संस्थान में ऊर्जा बढ़ेगी तो मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होगी। इसीलिए जो पेटू होते हैं, उनका पेट बड़ा और दिमाग छोटा होता है। जिन्हें बुद्धि की चिन्ता नहीं है, जिनके सामने प्रतिभा के विकास का प्रश्न नहीं है, वे अधिक खाते हैं तो खा सकते हैं। किन्तु जो लोग बुद्धि का उपयोग करना चाहते हैं, प्रतिभा को कुशाग्रता से काम लेना चाहते हैं, चिंतन-मनन करना चाहते हैं, उनके लिए अधिक भोजन करना बहुत बड़े शत्रु को निमंत्रित करना है।

शक्ति देती है भावना

भगवान् महावीर ने साधना के प्रथम सूत्र के रूप में 'अनशन' का विधान किया। इसका अर्थ है—ऊर्जा का खर्च कम हो। जो हो वह मुख्यतः चेतना के विकास के लिए मस्तिष्क में ही हो। मस्तिष्क की ऊर्जा का पेट के लिए

उपयोग करना चेतना के विकास का अवरोध है और पेट की ऊर्जा का मस्तिष्क के लिए उपयोग चेतना के विकास की साधना है।

ऋतभोजी वह होता है जो मुफ्त का नहीं खाता, दूसरे का शोषण कर नहीं खाता। हमारे शरीर को केवल भोजन ही शक्ति नहीं देता, भावना भी शक्ति देती है। हम दूसरों की जितनी सद्भावना अर्जित करते हैं, उतना ही हमारा आन्तरिक बल बढ़ता है। दूसरों की आह के साथ जो भी हमारे पेट में जाता है, वह हमारी भावना को विकृत बनाता है। जैसे सुपाच्य और मन की पवित्रता में अवरोध पैदा नहीं करने वाली वस्तुओं का चुनाव भोजन का महत्वपूर्ण विषय है, वैसे ही श्रम और शुद्ध साधनों से अर्जित वस्तुओं का चुनाव भी बहुत मूल्यवान् है। भोजन का मूल्यांकन चेतना के विकास का मूल्यांकन है। हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

5. संतुलित आहार (1)

हमारे जीवन की सारी प्रवृत्तियों का आधार है—शरीर और शरीर का आधार है—आहार। आहार के बिना शरीर नहीं चलता और शरीर के बिना प्रवृत्ति नहीं होती। मैं अंगुली हिला रहा हूँ। वह भी आहार के बिना नहीं हिलती। आहार लिये बिना सोचा नहीं जा सकता। आहार लिये बिना बोला नहीं जा सकता। श्वास भी नहीं लिया जा सकता। आप यह न मानें कि मैंने पांच घंटा पहले जो आहार कर लिया था उसके आधार पर अंगुली हिला रहा हूँ। अभी अंगुली हिला रहा हूँ तो अभी आहार लेकर अंगुली हिला रहा हूँ। अभी मैं बोल रहा हूँ तो साथ-साथ आहार भी लेता जा रहा हूँ। अभी मैं सोच रहा हूँ तो आहार लेकर ही सोचता जा रहा हूँ। शरीर की प्रवृत्ति जिस क्षण में होती है, उसके पहले क्षण में हमें आहार लेना होता है। आहार लेने के बाद ही हमारी प्रवृत्ति होती है। आहार का अर्थ है—बाहर से लेना। बाहर से लिये बिना कोई भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा—‘भंते! एक समर्थ मुनि है। वह वैक्रिय रूपों का निर्माण कर रहा है। वैक्रिय शक्ति का प्रयोग कर रहा है। अपने ही जैसे रूपों का निर्माण कर रहा है। किन्तु क्या वह आहार लिये बिना, बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ऐसा कर सकता है?’

भगवान् महावीर ने कहा—‘गौतम! मुनि कितना ही शक्तिशाली हो, किन्तु बाहर के पुद्गलों को लिये बिना वह ऐसा नहीं कर सकता। वह बाहर से आहार लेकर ही ऐसा कर सकता है।’

आहार का अर्थ

मैं मानता हूँ कि आप आहार की बात को पूरी नहीं समझ पा रहे हैं। इसका भी कारण है। हमने मुंह से खाने वाले खाद्य को ही आहार मान रखा है, शेष कोई आहार जैसा लगता ही नहीं। किन्तु सचाई कुछ और है। मुंह से खाया जाने वाला पदार्थ हमें जितनी शक्ति देता है, उससे अधिक शक्ति दूसरे-दूसरे तत्व देते हैं, जो आहार के रूप में ग्रहण किए जाते हैं। आहार का अर्थ है—लेना, खींचना, आहरण करना। हम मुंह से लेते हैं। कितनी बार? सामान्यतः दो बार। अधिक-से-अधिक दस-बीस बार। किन्तु यह बहुत स्थूल बात है। सूक्ष्म बात यह है कि हम क्षण-क्षण में आहार लेते हैं। उस आहार के बिना हमारा जीवन चल भी नहीं सकता। जैन परिभाषा में उसकी संज्ञा है—‘रोम आहार।’ जो मुंह से लिया जाता है, वह है ‘कवल आहार’ और जो शरीर के रोम-रोम से लिया जाता है, वह है ‘रोम आहार।’ वास्तव में यही हमारे जीवन का आधारभूत आहार है। मुंह से खाए बिना तीस, चालीस, पचास दिन जी भी सकते हैं किन्तु रोम आहार के बिना जी नहीं सकते।

तीसरे प्रकार का आहार है—मनोभक्षी आहार, मानसिक आहार। इसमें न शरीर की जरूरत, न कवल की जरूरत और न रोम की जरूरत। मन में संकल्प किया और आहार की पूर्ति हो गयी।

ये तीन प्रकार के आहार हमारे शरीर को नया स्वरूप प्रदान करते हैं और हमारी स्थूल धारणाओं को मिटाते हैं। आहार के विषय में आज अनेक भ्रान्तियां पैदा हो गयी हैं। उनके कारण मनुष्य अनेक कठिनाइयां भुगत रहा है। उसने यह अंतिम सत्य मान लिया कि जो मुंह से खाया जाता है, वही पर्याप्त है जीवन के लिए। यह पर्याप्तता का भ्रम हो गया।

संतुलित आहार का अर्थ

आज 'संतुलित आहार'—यह शब्द बहुत प्रचलित है। संतुलित आहार का अर्थ है—वैसा भोजन जिसमें सभी तत्त्व संतुलित मात्रा में विद्यमान हों। यह आहारशास्त्रियों का अभिमत है। योगशास्त्रियों का अभिमत इससे भिन्न है। उनके अनुसार संतुलित आहार वह होता है जिसमें ये चार तत्त्व पाये जाते हैं—खाद्य, तेल, वायु और प्रकाश। शरीरशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत संतुलित आहार की परिधि में खाद्य और तेल—ये दो ही आते हैं, शेष दो छूट जाते हैं। मैं मानता हूँ कि यथार्थ में वह आहार संतुलित नहीं हो सकता जिसमें वायु और प्रकाश (धूप) को स्थान न हो।

प्रश्न हो सकता है कि खाद्य और तेल से भूख शान्त होती है, जठराग्नि शान्त होती है, फिर वायु और धूप से प्रयोजन ही क्या है? क्या उनसे भूख शान्त होगी? क्या उनसे भूखा पेट भर जाएगा? और यदि उनसे पेट भर जाता हो तो विश्व की बहुत बड़ी समस्या समाहित हो सकती है, अन्न का अभाव मिट सकता है। मैं आपको पूर्ण विश्वास दिलाना नहीं चाहता कि इनसे पेट भर जाता है किन्तु मुझे विश्वास है कि मेरी बात पूरी सुनने के बाद आप इससे सहमत हो जाएंगे कि इनसे भी पेट भरता है।

सूर्य का प्रकाश

मैं पहले धूप की बात लेता हूँ। धूप या प्रकाश सूर्य से प्राप्त होता है। आपके शरीर को विटामिन 'डी' की बहुत आवश्यकता है। विटामिन 'डी' जितना अच्छा सूर्य की रश्मियों से प्राप्त होता है उतना किसी से भी प्राप्त नहीं होता। हमारी चमड़ी के आस-पास एक ऐसा द्रव्य है जिस पर सूर्य की रश्मियां पड़ती हैं और वहां विटामिन 'डी' स्वतः उत्पन्न हो जाता है। सूर्य की रश्मियां विटामिन 'डी' की पूर्ति करती हैं। शरीर पर पड़ने वाली सूर्य की किरणें कैल्शियम और फासफोरस की भी पूर्ति करती हैं। शरीर को इन दोनों की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह अभिमत है कि मनुष्य को जंगल में जाकर दिन में कुछ समय तक निर्वस्त्र रहना चाहिए, नग्न होकर घूमना चाहिए, धूप का पूरा सेवन करना चाहिए। इससे शरीर की अनेक कमियां पूरी होंगी। साधना के क्षेत्र में जो नग्नता का क्रम था, वह अनावश्यक नहीं था, मूर्खतापूर्ण नहीं था। वह बहुत आवश्यक था और बहुत सोच-विचारपूर्वक निर्धारित किया गया था। शारीरिक और मानसिक साधना की दृष्टि से नग्न रहने के जितने लाभ हैं, उतने लाभ सवस्त्र में नहीं

हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में बहुत स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित है—नग्नता (प्रतिरूपता) से हलकापन आता है। हलकेपन से अप्रमाद, जितेन्द्रियता, विपुल तप आदि-आदि प्राप्त होते हैं।

आतापना का महत्त्व

शारीरिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अब हम कुछ सोचें। निर्वस्त्र रहने से धूप हमारे समूचे शरीर पर पड़ती है। वह धूप हमारे आहार की पूर्ति करती है। विज्ञान का भी यही अभिमत है। धूप खाद्य का पूरक तत्त्व है। आतापना लेने वाले, धूप का सेवन करने वाले व्यक्ति के आहार की मात्रा कम हो जाती है। आतापना के विषय में जितने तथ्य जैन साहित्य में उपलब्ध हैं, वे अन्यत्र नहीं मिलते। वहां बहुत विस्तार से इसका उल्लेख मिलता है—जो आतापना लेता है उसके आहार की मात्रा कम हो जाती है, आवश्यकता कम हो जाती है। वह अधिक भोजन नहीं कर सकता क्योंकि बहुत सारी आवश्यकता धूप से पूरी हो जाती है। आतापना का कितना मूल्य था, कितना बड़ा अर्थ था, उसको हमने भुला दिया। आज के आहारशास्त्री भी यह मानने लगे हैं कि जो मनुष्य धूप और वायु से वंचित रहता है वह जान-बूझकर कठिनाइयां उत्पन्न करता है। वे कहते हैं—जंगल में चले जाओ। सारे कपड़े उतार दो। लंगोटी भी न रहने पाए। भूमि पर लेट जाओ। शरीर धूप से जले तो जलने दो। कोई हानि नहीं होगी। यदि जलन से बचना चाहो तो शरीर पर पतला कपड़ा रख लो या मिट्टी रख लो। सीधा संपर्क बना रहे जमीन के साथ, सूर्य के साथ। यह है आतापना की क्रिया। इसे हठयोग की क्रिया समझना मूर्खतापूर्ण है। यह जीवन-धारण के लिए बहुत महत्वपूर्ण क्रिया है।

विकास हो मानसिक संकल्प का

अब हम वायु पर विचार करें। हम जो खाते हैं, प्राणवायु के बिना उसका अर्थ कम हो जाता है। जो पूरी मात्रा में प्राणवायु नहीं लेता, उसको अधिक मात्रा में आहार लेने की आवश्यकता होती है। जो पूरी मात्रा में प्राणवायु ग्रहण करता है, उसकी खाने की मात्रा कम हो जाएगी।

इस विषय पर यदि हम गहराई में जाकर सोचते हैं तो ऐसा लगता है कि हमारे शरीर में मुख्यतया चार तत्त्व हैं—पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु। शरीर में इन चारों की अपेक्षा होती है। खनिज के रूप में पृथ्वी तत्त्व की आवश्यकता है। हमारे शरीर के लिए लोहा आवश्यक है, शीशा आवश्यक है, चांदी आवश्यक है, सोना आवश्यक है। ये सारी धातुएं आवश्यक हैं। हम दूध पीते हैं। दूध में अभ्रक होता है। हम जीरा खाते हैं। जीरे में लोहा होता है। मां के दूध में बहुत अच्छी चांदी होती है। हम शाक खाते हैं। उनमें बहुत सारे खनिज होते हैं। मनुष्य स्वर्ण भस्म, रजत भस्म, लोह भस्म औषधि के रूप में लेता है। वह पूरी उपयोगी नहीं होती। उसका अधिकांश भाग व्यर्थ चला जाता है। इसीलिए कहा गया—खनिजों को भस्म के रूप में नहीं किन्तु प्राकृतिक भोजन से प्राप्त करने का प्रयास करो। इस आधार पर एक बात सूझती है—जैसे खदानों से लिया जाने वाला खनिज हमारे शरीर में एकरस नहीं होता, वैसे ही

वनस्पति से प्राप्त खनिज भी पूरा एकरस नहीं होता। इनकी अपेक्षा यदि हम मानसिक आहार के रूप में, मानसिक संकल्प के द्वारा कोई चीज विकसित कर सकें तो वे हमारे साथ सुगमता से एकरस हो सकेंगी। इस पर प्रयोग करना चाहिए। प्रयोग लंबा हो सकता है। मनोभक्षी आहार की बात बहुत महत्वपूर्ण है। वह सूक्ष्म है। पर संकल्प के द्वारा उसे विकसित किया जाए तो बहुत सारे तत्त्वों की पूर्ति हम मन से कर सकेंगे। मन के द्वारा पूर्ति करने में कठिनाई हो तो उससे सरल मार्ग है वायु के द्वारा पूर्ति करने का।

कथन भगवती सूत्र का

भगवती सूत्र में बतलाया गया है कि प्राणी छहों दिशाओं से आहार लेता है। वह पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, ऊर्ध्व दिशा से, अधो दिशा से—इन छहों दिशाओं से आहार ग्रहण करता है। आज ये बातें केवल ग्रन्थों में रह गयी हैं, पढ़ने मात्र को रह गयी हैं। अनुसंधान और खोज के अभाव में इनका हार्द समझा नहीं जा सकता। सब ओर से हम आहार लेते हैं। क्या हम पैरों से आहार नहीं लेते? लेते हैं, अवश्य लेते हैं। बताया गया—जब घूमना हो तो नंगे पैर घूमो। वह भी सड़क पर नहीं, भूमि पर। जब बीच में जूते और सड़क आ जाती है—पक्की सड़क, तब पृथ्वी से साक्षात् मिलने वाला आहार प्राप्त नहीं होता। नंगे पैरों पर घूमने से पृथ्वी के सारे तत्व खींच लिये जाते हैं।

हम अपने सिर को भी काम में लें। प्राणशक्ति को उत्तेजित करने वाले या सौरमंडल से विकीर्ण होने वाले तत्वों को हम मस्तिष्क के द्वारा ही अपने शरीर में ले जाते हैं। किन-किन दिशाओं में सिर रखकर सोने से क्या-क्या लाभ होते हैं, यह तथ्य आज पुष्ट हो रहा है। पहले तो यह तथ्य रूढ़ि और अन्धानुकरण समझा जाता था, किन्तु आज के वैज्ञानिक परीक्षणों के बाद यह तथ्य सत्य प्रतीत हो चुका है। अनेक फ्रांसीसी डॉक्टर सिरहाने की दिशाओं को बदलकर अनेक रोगों की चिकित्सा कर रहे हैं और उन्हें इस पद्धति से बीमारी मिटाने में आशातीत सफलताएं मिली हैं। इसका भी वैज्ञानिक कारण है। सौरमंडल से आने वाले जो प्रवाह हैं, वे हमारे मस्तिष्क को आकर्षित करते हैं, अपनी ओर खींचते हैं। जिस प्रवाह की दिशा में मस्तिष्क होता है, उसके तत्व उसमें प्रवेश पा जाते हैं। इसलिए इस पद्धति का बहुत बड़ा महत्व है।

आहार का अर्थ खाना ही नहीं है, उसका अर्थ है—लेना, खींचना, टानना। चाहे हम मुंह से, पैर से, नाक से, माथे से लें, चाहे समूचे शरीर से लें, हम जो भी बाहर से लेते हैं वह सारा-का-सारा आहार है।

इस प्रकार हम ऊपर से भी आहार लेते हैं, नीचे से भी आहार लेते हैं, आस-पास से भी आहार लेते हैं, दायें-बायें से भी आहार लेते हैं। हम सभी दिशाओं और विदिशाओं से आहार लेते हैं। वायु का आहार वायु के माध्यम से लेते हैं। वायु के आहार का अनुसंधान किया जाए तो जो तत्व वनस्पति के आहार द्वारा हम ग्रहण करते हैं, वे सब वायु के द्वारा भी ले सकते हैं। क्योंकि वायुमंडल में सब तत्वों के परमाणु भरे पड़े हैं।

इस प्रकार हमारे आहार के चार मुख्य अंग हैं—खाद्य, तेल, वायु और धूप। साधना की दृष्टि से संतुलित आहार वह होता है जिसमें ये चारों तत्व हों। जिसमें केवल खाद्य और तेल हो, वायु और धूप का योग न हो, वह संतुलित आहार नहीं हो सकता।

उपवास और मानसिक प्रसन्नता

दो बातें और हैं, जो संतुलित आहार की श्रेणी में तो नहीं हैं, पर उनका पूरक के रूप में उल्लेख करना जरूरी है। वे दो बातें हैं—उपवास और मानसिक प्रसन्नता। इन दोनों के बिना आहार अर्थशून्य हो जाता है। आप आहार करते हैं परन्तु उपवास करना नहीं जानते, अनाहार रहना नहीं जानते तो आपका आहार आपके लिए समस्या बन जाता है। हम आहार करते हैं भूख की समस्या को समाहित करने के लिए और वही आहार अनेक समस्याएं हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है। जो लोग केवल आहार करते हैं, उपवास नहीं करते, वे उपवास का मर्म नहीं जानते। वे समस्याओं को कम नहीं कर सकते। आहार के साथ अनाहार को जोड़ना, उपवास को जोड़ना भी बहुत जरूरी है। उपवास का अर्थ नहीं खाना भी है, कम खाना भी है, आहार की मात्रा को कम करना भी है।

दूसरा तत्व है प्रसन्नता। खाते समय मन चिंता से मुक्त होता है तो भोजन का पाचन अच्छा होता है। प्रसन्नता का अर्थ हर्ष नहीं है। शोक जैसे एक आवेश है वैसे ही हर्ष भी एक आवेश है। प्रसन्नता आवेश नहीं है, वह चित्त की निर्मलता है। जैसे प्रसन्न आकाश का अर्थ होता है—निर्मल आकाश, वह आकाश जो बादलों से घिरा हुआ न हो। जो चित्त हर्ष, भय, शोक आदि आवेशों से आक्रान्त न हो वह प्रसन्न होता है। उसमें वृत्तियां शान्त होती हैं, खाने वाला केवल खाने में ही लगा होता है इसलिए चित्त की प्रसन्नता भी भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है।

6. संतुलित आहार (2)

संतुलित आहार शब्द का प्रयोग होते ही हमारा ध्यान संतुलित आहार की वर्तमान पद्धति पर चला जाता है। आज सरकार और स्वास्थ्य विभाग द्वारा संतुलित आहार की तालिका प्रकाशित होती है। संतुलित आहार का अर्वाचीन अर्थ है, जिसमें सब प्रकार के तत्व हों। कार्बोहाइड्रेट, वसा, लवण, क्षार, विटामिन्स, प्रोटीन्स—ये सब जिसमें हों, ऐसा आहार संतुलित आहार माना जाता है। स्वाभाविक है—आज की धारणा के आधार पर हमारा ध्यान इस ओर जाएगा किन्तु प्रस्तुत निबंध में जिस संतुलित आहार की चर्चा की जा रही है, यह दूसरी धारणा है। संतुलित आहार वह है, जिसमें वात, पित्त, कफ का संतुलन बना रहे, अतिवृद्धि किसी की भी न हो।

प्रश्न वात, पित्त और कफ का

आयुर्वेद के अनुसार जितने द्रव्य हैं उन सबमें वात, पित्त और कफ की मात्रा मिलती है। एक भी ऐसा द्रव्य नहीं है जो केवल वात करता है, पित्त या कफ नहीं करता। या किंचित् मात्रा में सत्व, रजस् और तमस् या पंचभूत सबमें विद्यमान हैं। अग्नीय तत्व भी है, जलीय तत्व भी है, वायवीय तत्व भी है—ये तीनों सबमें मिलते हैं। यदि हम शुद्धता की दृष्टि से विचार करें तो एक भी तत्व ऐसा नहीं है जिसमें इन पांच महाभूतों का अथवा सत्व, रजस्, तमस् का मिश्रण न हो। हम जो निर्धारण करते हैं—यह वात-प्रकृति का आदमी है, यह पित्त-प्रकृति का आदमी है या कफ-प्रकृति का आदमी है—वह अधिकता के आधार पर करते हैं। जो वात प्रकृति का है, क्या उसमें पित्त और कफ की प्रकृति नहीं है? जो पित्त प्रकृति का है, क्या उसमें वात और कफ की प्रकृति नहीं है? जो कफ प्रकृति का है, क्या उसमें वात और पित्त की प्रकृति नहीं है? वात, पित्त और कफ—तीनों प्रत्येक व्यक्ति में होते हैं किन्तु नामकरण अधिकता के कारण होता है। जन्म से ही कुछ लोग वात प्रकृति के होते हैं, कुछ पित्त प्रकृति के और कुछ कफ प्रकृति के होते हैं। हमें यह नहीं मान लेना चाहिए—व्यक्ति एक ही प्रकृति का है, उसमें दूसरी प्रकृति नहीं है। हम जब भी इस पर चर्चा करें तो इस सचाई को पकड़ कर करें कि हम केवल मुख्यता के कारण ऐसा प्रयोग कर रहे हैं।

कोई द्रव्य दोषमुक्त नहीं है

समस्या यह है कि सब द्रव्यों से सब तत्व मिलते हैं पर मुख्यतः कोई वात बढ़ाने वाला है, कोई पित्त बढ़ाने वाला है और कोई कफ बढ़ाने वाला है। प्रश्न है—इस स्थिति में आदमी खाएगा क्या?

पांच मित्र गोट करने गए। सबने अलग-अलग काम बांट लिये। उनमें एक वैद्य था। उसके जिम्मे शाक-भाजी लाने का काम था। वह बाजार गया। वह सब्जियों को एक-एक कर देखता किन्तु खरीद नहीं पाता। बैंगन को देखा, यह वातकारक है। करेला देखा, यह पित्त-प्रभावक है। इस प्रकार एक-एक सब्जी के गुण-धर्म का विवेचन करता चला गया। एक भी चीज खरीद नहीं सका, खाली हाथ लौट पड़ा। रास्ते में नीम का पेड़ मिला। उसकी पत्तियां गिरी थीं। झोला भर लिया। मित्रों ने पूछा—‘क्या लाये हो?’ उसने झोला उलट दिया। मित्रों ने कहा—‘यह क्या?’ वैद्य महाशय ने कहा—‘बाजार में कोई सब्जी दोषमुक्त मिली ही नहीं। यह नीम त्रिदोष-नाशक है।’

योग है तीनों का

पूर्ण दोषमुक्त कोई भी वस्तु नहीं है। हम कहते हैं—ऐसिडिटी है, पित्त की बीमारी है, कफ की बीमारी है या गैस ट्रबल है। हम ऐसा मुख्यता के आधार पर कहते हैं। गौण रूप में तीनों साथ में हैं। जहां वायु है, वहां पित्त और कफ भी है। जहां पित्त है वहां वायु और कफ भी है। जहां कफ है वहां वायु और पित्त भी है। समस्या को बढ़ाने में थोड़ा-थोड़ा हिस्सा तीनों का है इसीलिए आयुर्वेद में कहा गया—‘नैकदोषास्ततो रोगाः।’

वात, पित्त और कफ का मन पर प्रभाव होता है किन्तु इन्हें बढ़ाने वाले तत्वों का जब तक ज्ञान नहीं होगा, इनसे कैसे बच पाएंगे? इसलिए आहार और विहार—दोनों के बारे में पर्याप्त ज्ञान का होना जरूरी है। विहार में हमारी सारी चर्या—सोना, बैठना, चलना आदि समाविष्ट है। आयुर्वेद का सिद्धान्त है—दिन में सोना वायु को बढ़ाता है। वर्षा ऋतु या सर्दी की ऋतु में सोना तो गैस की बीमारी को और जटिल बना देता है। विधान किया गया—यदि दिन में नींद लेनी हो तो बैठकर लें, लेटकर न लें। दिन में दो-तीन घण्टे सोना बीमारी को निमंत्रित करना है। केवल गर्मी की ऋतु में दिन में कुछ देर सो लेना विहित माना गया है।

कारण क्रोध का

हम भोजन की बात को लें। रूखा भोजन वायु को बढ़ाता है। आचारांग चूर्ण का प्रसंग है—भगवान् महावीर ने संधाल परगना की यात्रा की। वहां के लोगों ने भगवान् को काफी कष्ट दिए, काफी सताया, कठिनाइयां पैदा कीं। बात-बात पर वहां के लोग क्रोध में आ जाते थे। चूर्णिकार ने स्पष्ट किया है—वहां तिल नहीं होते थे इसलिए तेल नहीं होता था। गाएं नहीं थीं इसलिए घी भी नहीं होता था। न तेल और न घी। इन्हें आयात करने का उनके पास कोई साधन नहीं था। आदिवासी घी-तेल कहां से लाते? वे रूखा भोजन करते थे, इसी कारण उनमें क्रोध बड़ा प्रबल था। व्याकरण में एक उदाहरण आता है—**वातघ्नं तैलं, पित्तघ्नं घृतम्, कफघ्नं मधु**। तेल वायु का शमन करने वाला है, घी पित्त का शमन करने वाला है और मधु कफ का शमन करने वाला है। संस्कृत व्याकरण में भी इनका निर्देश मिलता है।

संतुलित आहार की परिभाषा

जैन आचार्यों ने संतुलित आहार पर बहुत बल दिया। आज लोग इस संबंध में बहुत कम जानते हैं और जानते भी हैं तो इस पर ध्यान कम देते हैं। संतुलित आहार की एक निश्चित परिभाषा थी। पूछा गया—मुनि को कैसा भोजन करना चाहिए? बताया गया—सदा रूखा नहीं और सदा चिकना नहीं। प्रणीत भोजन भी प्रतिदिन नहीं और रूखा भोजन भी हमेशा नहीं। इसका कारण बतलाया गया—यदि वह रूखा भोजन करेगा तो प्रस्रवण के लिए बार-बार उठना पड़ेगा, स्वाध्याय में विघ्न पड़ेगा। कोई रूखा भोजन ही करेगा तो क्रोध भी बढ़ जाएगा इसीलिए तपस्या में गुस्सा ज्यादा आने लग जाता है। तपस्वियों से इसलिए लोग डरते हैं कि कहीं क्रोध में आकर शाप न दे दें। रूखा भोजन इन्द्रिय-नियन्त्रण के लिए जरूरी है और चिकना भोजन इसलिए जरूरी है कि स्वाध्याय की शक्ति रहे, ध्यान करने की शक्ति रहे। यदि प्रणीत भोजन नहीं मिलेगा, स्निग्ध भोजन नहीं करेगा तो बुद्धि भी कमजोर बन जाएगी। मेधा-शक्ति को प्रबल करने के लिए स्निग्ध भोजन को आवश्यक बताया गया है। यदि ऐसा भोजन नहीं मिलेगा तो कोरे मूर्ख भट्टारक रह जाएंगे, ज्ञान-ध्यान कुछ भी नहीं हो पाएगा। ज्ञान-ध्यान की वृद्धि के लिए स्निग्ध भोजन और इन्द्रिय संयम के लिए रूखा भोजन। दोनों का संतुलन रहे तो समस्या पैदा नहीं होगी। यह संतुलित आहार का बहुत महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है।

मधुर रस

आहार में ही नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन आवश्यक है। समस्या यह है—एक सामान्य आदमी इतना ज्ञान कैसे करे? हर आदमी इतना कैसे जाने? जान ले तो निर्णय करना कठिन हो जाए। जब हर चीज में कुछ-न-कुछ कमी मिलती है तो फिर खाए क्या? इसका एक सीधा-सरल रास्ता निकाला गया—खाने के जितने द्रव्य हैं, उनके गुण-दोष जान लो। किन्तु इतने सारे द्रव्यों के गुण-दोष को जानना भी बड़ा कठिन काम है।

दूसरा सरल उपाय बताया गया—रसों के आधार पर आहार का चयन करो। रसों का भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मीठा रस कफ की वृद्धि करता है और वात का शमन करता है। हम स्वयं यह अनुभव करते हैं—जिस दिन चीनी ज्यादा खाते हैं उस दिन शरीर भारी लगता है और दिमाग भी भारी लगता है। मधुर रस के उपयोग में संतुलन रखें, मीठी वस्तुएं खाने में कम-से-कम दो दिन का अन्तर रखें। आज मिठाई खाई है तो दो-दिन फिर कोई मीठी चीज न खाएं। इससे एक संतुलन बना रहेगा। एक साथ दो लाभ होंगे—त्याग का त्याग और स्वास्थ्य का स्वास्थ्य। यदि व्यक्ति इतना विवेक जगा लेता है तो वह मानसिक स्वास्थ्य का सार्थक उपाय कर लेता है। ये छोटी-छोटी बातें हैं किन्तु जीवन में बहुत उपयोगी हैं। स्वस्थ जीवन के आकांक्षी व्यक्ति को इतना संयम करना ही होता है।

अम्ल रस

अम्ल रस या खट्टा रस पित्त को बढ़ाता है, कफ को बढ़ाता है किन्तु वायु का शमन करता है। समस्या यह है—नीबू, अमचूर आदि की खटाई के बिना तो भोजन का आनंद ही नहीं आता। खट्टी चीजें कुछ सीमा तक स्त्रियों के लिए लाभप्रद हो सकती हैं किन्तु पुरुषों के लिए हानिकारक हैं। आज की वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार अन्न के साथ खटाई खाना सर्वथा निषिद्ध है। पुरानी मान्यता के अनुसार भोजन के तत्काल बाद खट्टे की गोली या ऐसी ही चीजें खाना मान्य रहा है किन्तु आज के वैज्ञानिक परीक्षण के अनुसार भोजन के साथ या उसके तत्काल बाद खटाई खाएंगे तो पाचन में गड़बड़ी हो जाएगी। हम इसका भी संतुलन रखें। यह संकल्प होना चाहिए—अम्ल रस रोज नहीं खाना है या ज्यादा नहीं खाना है, बार-बार नहीं खाना है। हम इस बात को एकांततः न पकड़ें कि मीठा रस या खट्टा रस खाएंगे ही नहीं। यह रसों का संतुलन है, सीमाकरण है। इतनी मात्रा से ज्यादा नहीं खाएंगे, यह विवेक जाग जाए तो एक साथ दो लाभ होंगे—एक ओर खाद्य संयम को बल मिलेगा, दूसरी ओर मन भी स्वस्थ रहेगा।

लवण तत्त्व

तीसरा तत्त्व है लवण। यह भी पित्त को बढ़ाने वाला है। डॉक्टरों के अनुसार सामान्यतः एक आदमी को दिन भर में एक या दो ग्राम नमक पर्याप्त है। हम दिन भर में जितने भी द्रव्य खाते हैं, उसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि हम नमक की कितनी मात्रा का उपयोग करते हैं। अतिरिक्त नमक खाते हैं तो पित्त बढ़ता है। इसलिए नमक खाने की सीमा हो। जो नमक का त्याग करते हैं, वे मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ा लेते हैं। ऊपर से नमक नहीं लूंगा, यह बड़ा अच्छा संकल्प है। संकल्प इस बात का भी होना चाहिए कि दिन में इतनी नमकीन चीजों से ज्यादा नहीं खाऊंगा। अगर साग खा लिया तो फिर पापड़ नहीं खाऊंगा, पापड़ खा लिया तो कचौड़ी-पकौड़ी नहीं खाऊंगा।

रसों का संतुलन बनाएं

एक रस है कटु रस। कड़वा रस भी वायु और पित्त को बढ़ाता है। कटु रस का संतुलन बना हुआ है, क्योंकि वह जीभ को कम मान्य है। दो रस और बचते हैं—तीखा और कसैला। ये रस भी कम खाए जाते हैं। दोनों वायु की वृद्धि करते हैं। कटु, तिक्त और कषाय—इन तीनों रसों का प्रयोग औषधियों के निर्माण में अधिक होता है। मधुर, अम्ल और लवण—इन तीन रसों का प्रयोग भोजन में ज्यादा होता है। जहां संतुलन की बात आई, वहां यह बताया गया—यदि संतुलन करना है तो थोड़े-थोड़े कसैले द्रव्य का सेवन भी होना चाहिए। मधुर, अम्ल और लवण—इन तीनों रसों पर हम ध्यान दें और यह संतुलन बनाएं—इनका अति मात्रा में सेवन नहीं करना है या प्रतिदिन सेवन नहीं करना है। यदि प्रतिदिन भी करते हैं तो इनकी मात्रा को कम करना है। यदि यह संतुलन हो जाएगा तो फिर वात, पित्त और कफ का संतुलन भी बना रहेगा।

आयुर्वेद की सार्थकता

संतुलित आहार का यह छोटा-सा लेखा-जोखा है। हमारे मन को प्रभावित करते हैं—वात, पित्त और कफ। उनकी वृद्धि या हानि होती है रसों के आधार पर, द्रव्यों के आधार पर। रसों के संतुलन से ये तीनों संतुलित रहते हैं। जब ये संतुलित रहते हैं तब हमारा शरीर भी स्वस्थ रहता है, मन भी स्वस्थ रहता है। शरीर और मन को स्वस्थ रखने की प्राचीन प्रक्रिया पर यह संक्षिप्त-सी चर्चा है। आज का युग तो वात, पित्त और कफ का नहीं, जर्म्स और वायरस का है। डॉक्टर भी इन्हीं दो तत्वों पर ध्यान देते हैं। वात, पित्त और कफ के बारे में उन्हें ज्यादा जानकारी भी नहीं है। कभी-कभी मैंने इस बात को सुना है और इससे मुझे आश्चर्य भी हुआ है कि डॉक्टर अपने परिवार के लोगों को ऐलोपैथी दवा कम देते हैं। उनकी चिकित्सा आयुर्वेद या होमियोपैथिक से कराते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है—आयुर्वेद के सिद्धान्त, जो शरीर और मन के संदर्भ में निर्धारित किए गए हैं, वे अर्थहीन नहीं हैं। इनकी सार्थकता को समझना आज के युग में भी आवश्यक है। यदि इन बातों को समझ कर इनका प्रयोग करना शुरू करें तो निश्चय ही शारीरिक और मानसिक—दोनों दृष्टियों से लाभ उठाया जा सकता है।

7. साधना, स्वास्थ्य और आहार

साधना के लिए शक्ति चाहिए और शक्ति के लिए शरीर चाहिए। शरीर को धारण करने के लिए खाना जरूरी है। इसलिए जीवन का, शरीर का और आहार का गहरा सम्बन्ध है। साधना जरूरी है, साधना के लिए शरीर जरूरी है और शरीर को टिकाए रखने के लिए आहार जरूरी है।

हम आहार लेते हैं, किन्तु आहार की एक समस्या है। बहुत बड़ी समस्या है कि क्या खाएं? कितना खाएं? कब खाएं? जो आहार शक्ति देता है वही शक्ति को कम भी कर देता है। आहार एक आलम्बन है तो वह एक खतरा भी है। इसलिए मनुष्य को विवेक करना पड़ता है। विवेक के बिना काम नहीं चलता।

जीवन का अनेकांत

प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक साधक के समक्ष यह एक प्रश्न होता है कि क्या खाए? कुछ लोग पेट भर कर अन्न खा लेते हैं, उन्हें लगता है कि भूख मिट गई है। पर शरीर को जो मिलना चाहिए वह नहीं मिला। यदि कोरा अन्न खाया जाता है तो शरीर को केवल श्वेतसार ही मिल पाता है। शरीर में विभिन्न तंतु हैं, रसायन हैं, धातुएं हैं। उनको भिन्न-भिन्न पदार्थ चाहिए। शरीर को चिकनाई भी चाहिए, खनिज लवण भी चाहिए, प्रोटीन और विटामिन भी चाहिए। प्रोटीन नहीं मिलता है तो नयी कोशिकाओं के निर्माण में बाधा आती है, स्वास्थ्य गड़बड़ा जाता है। एक तत्त्व से हमारा काम नहीं चलता। यह जीवन का अनेकान्त है कि एक शरीर के लिए अनेक पदार्थ चाहिए।

आज से पचास वर्ष पूर्व लोग बहुत जल्दी बूढ़े हो जाते थे। उसका कारण यह था कि वे लोग प्रोटीन बहुत अधिक मात्रा में खाते थे, श्वेतसार बहुत अधिक मिलता था। वे अन्न, मिठाइयां, दूध, घी आदि अधिक खाते। सारा भोजन पौष्टिक होता इसलिए वे शीघ्र बूढ़े बन जाते। अधिक दूध पीने वाला जवान नहीं रह सकता, जल्दी बूढ़ा होगा। खूब रोटी खाने वाला जल्दी बूढ़ा होगा, क्योंकि बुढ़ापे से बचाने वाला है—क्षार तत्त्व। इन सब पदार्थों से पौष्टिकता मिलती है पर क्षार तत्त्व नहीं मिलता।

भोजन के दो तत्त्व मूल हैं—अम्ल और क्षार। अम्ल तत्त्व से मृत्यु और बुढ़ापा जल्दी आता है। उससे शक्ति क्षय होती है और बीमारियों को निमन्त्रण प्राप्त होता है। तले हुए पदार्थ, चटपटी चीजें—ये सब अम्लता बढ़ाते हैं।

भोजन के दो प्रकार हैं—संरक्षक भोजन और पौष्टिक भोजन। पौष्टिक भोजन में संरक्षण देने की क्षमता नहीं होती और संरक्षक भोजन में पौष्टिकता देने की क्षमता नहीं होती। दोनों का संतुलन होना चाहिए। अम्लता और क्षार का संतुलन होना चाहिए।

फल क्षार प्रधान होते हैं। कोई यह सोचे कि अधिक फल खाने से अधिक संरक्षण प्राप्त होगा, यह अज्ञान है। फलों को पचाने के लिए भी पाचक-रस का स्राव चाहिए। वे तो एक सीमित मात्रा में ही होते हैं। इसलिए अधिक फलों का खाना भी हानिकारक हो सकता है।

हमारे भोजन में भी अनेकान्तवाद है। एकान्ततः कुछ भी लाभप्रद नहीं होता।

देखें परिणाम को

भारतीय दर्शन का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है कि केवल प्रवृत्ति को मत देखो, उसके परिणाम को देखो। जो विपाक या परिणाम में सुन्दर होता है, वह सुन्दर है। जो परिणाम में असुन्दर होता है, वह असुन्दर है। जो परिणाम में मधुर होता है, वह मधुर है और जो परिणाम में कटु होता है, वह कटु है। भारतीय दर्शन में सिद्धान्त का प्रतिपादन परिणाम के आधार पर किया गया, प्रवृत्ति के आधार पर नहीं। प्रवृत्ति वही अच्छी होती है, जिसका परिणाम सुखद होता है। हम बहुधा कहते हैं—अभी तो तिलक किया है, सूखने पर देखना क्या रंग खिलता है? अभी तो सम्बन्ध जुड़ा है, आगे देखना क्या होता है? नया संबंध, नया योग और नयी प्रवृत्ति का मूल्यांकन परिणाम काल में किया जा सकता है।

चीनी खाने में मीठी होती है, पर परिणाम काल में अम्लता बढ़ती है। आंवला खाने में खट्टा होता है, पर उसका परिणाम मधुर होता है। आंवला मधुरता पैदा करता है। चीनी अम्लता को बढ़ाती है। दूध स्वभावतः मधुर होता है, फिर भी लोग उसमें चीनी मिलाकर पीते हैं क्योंकि जीभ को चीनी का स्वाद लग गया, इसलिए दूध भी फीका लगता है।

चाय की प्रकृति को लोग नहीं समझते। प्रत्येक बीमारी में चाय ली जाती है। अम्लता की बीमारी, पित्त का उफान, पेट में अल्सर—इन सभी स्थितियों में लोग चाय का सेवन करते हैं। इन स्थितियों में चाय पीना भयंकर हानिप्रद होता है। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि किस बीमारी में चाय पीनी चाहिए और किस बीमारी में नहीं। चाय कोई सर्व शक्तिमान तत्त्व नहीं है जो सब कुछ ठीक कर दे। प्रत्येक चीज लाभ भी करती है और हानि भी। दूध अमृत भी है और जहर भी। इसी प्रकार चाय अमृत भी है और जहर भी। कोई भी पदार्थ एकान्ततः अमृत या जहर नहीं होता किन्तु मात्राभेद, कालभेद, देशभेद और प्रकृतिभेद से हर वस्तु अमृत है, हर वस्तु जहर है। इस विषय में हमारा विवेक जागृत रहना चाहिए।

गै. सल्टन का कथन

आज भोजन के विषय में अनेक खोजें हुई हैं, नये-नये तथ्य हमारे सामने आए हैं। उन पर हमें गहराई से ध्यान देना चाहिए। कोई व्यक्ति गैस की बीमारी से ग्रस्त है। वह यदि दाल खाता है तो वह उसके लिए जहर का काम करती है। प्रोटीन के लिए दाल आवश्यक है, पर गैस की बीमारी उससे बढ़ती है, कम नहीं होती। चना पौष्टिक होता है, किन्तु गैस की बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति के लिए वह हानिकारक होता है।

तीस वर्ष पहले की बात है। गुरुदेव तुलसी का चतुर्मास जोधपुर में था। एक ज्योतिषी आया। उसने मेरी कुण्डली देखकर कहा—‘आपके वायु की शिकायत रहती है, आप चना छोड़ दें।’ मैंने उस दिन से चना छोड़ दिया। उससे मुझे लाभ महसूस हुआ।

अमेरिका के मनोवैज्ञानिक चिकित्सक गै. सल्टन ने कहा—बीमारी में औषधि की कोई आवश्यकता नहीं है। भोजन को बदलो, बीमारी ठीक हो जाएगी। भोजन के परिवर्तन से स्वास्थ्य-लाभ हो सकता है। भारत में भोजन के बाद खटाई खाने का प्रचलन है। डॉक्टर सल्टन का कहना है कि भोजन के साथ खटाई खाने से पाचन-तन्त्र प्रभावित होता है, पाचन बिगड़ जाता है। यह कथन सच है। क्योंकि अन्न खाते समय एक प्रकार का स्राव होता है ‘टायलिन’। वह अन्न को पचाता है। जब अन्न खाने के बाद ऊपर से खटाई खाई जाती है तो वह अम्लता उस स्राव को समाप्त कर देती है। तब दूषित वायु पैदा होती है, अपान दूषित होता है और सारी गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

भोजन संबंधी कुछ तथ्य

द्वितीय महायुद्ध के बाद वैज्ञानिकों ने भोजन संबंधी अनेक तथ्य प्रस्तुत किए थे—

1. अन्न के साथ खटाई खाना बीमारी को निमंत्रण देना है। खटाई चाहे नीबू की हो, अमचूर की हो या अन्य किसी पदार्थ की, वह हानि करती है। इसका भी कारण है। जीभ और दांत के पास जो लार ग्रंथियां हैं, भोजन के साथ उनमें से लार टपकती है। यह लार अन्न को पचाती है। इसका नाम है—टायलिन। यह रस अन्न को मुंह में ही पचाना प्रारम्भ कर देता है। यह रस जितना अधिक होता है, उतना ही पाचन अच्छा होता है। अन्न आमाशय में गया। ऊपर से खटाई खाई। वह भी वहां गई। उसका काम है उस लार को, उस टायलिन को नष्ट कर देना। उसके सम्पर्क में यह रस विनष्ट हो जाता है और इसका यह परिणाम होता है कि अन्न पचता नहीं, वैसा-का-वैसा पड़ा रह जाता है। उससे सड़ांध शुरू होती है, फिर वायु दूषित होती है, शरीर में दर्द होने लगता है। यह सारा खटाई के कारण होता है।

2. रोटी और दाल भी साथ में नहीं खानी चाहिए। इसका कारण है कि दाल है प्रोटीन का भोजन और अन्न है श्वेतसार। दाल के साथ रोटी खाने से दोनों साथ-साथ जाते हैं। लिवर से जो पाचक रस निकलते हैं, उनका काम है सबसे पहले प्रोटीन को पचाना। दाल पच जाती है। अन्न कार्बोहाइड्रेट है। उसके पचने का नम्बर दूसरा हो जाता

है। पाचक रस प्रोटीन (दाल) को पचाने में लग गया और बेचारा अन्न यों ही पड़ा रह गया। इसके परिणामस्वरूप वायु अधिक बनी और सारी गड़बड़ियां हो गईं। दाल और अन्न यदि अलग-अलग खाया जाता है तो दाल भी पच जाती है और अन्न भी पच जाता है। अन्यथा दूषित वायु बनती है, और उससे अनेक बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं।

3. लोग मानते हैं कि दूध और चीनी का मेल है। यदि दूध में चीनी न मिलाई जाए तो वह वायु करता है। आज यह मान्यता भी टूट चुकी है। आज माना जाता है कि दूध के साथ चीनी तो क्या मीठा फल भी नहीं खाना चाहिए।

श्लेष्माहीन आहार की उपयोगिता

डॉक्टर अरनाल्ड ट्राविस्की ने एक किताब लिखी—‘आहार चिकित्सा।’ उसमें उन्होंने यह प्रतिपादन किया है कि जब तक आहार श्लेष्माहीन नहीं होगा तब तक प्राकृतिक चिकित्सा के सारे साधन पूरा लाभ नहीं पहुंचा सकेंगे। मिट्टी, पानी और धूप का उपचार करने पर भी स्थायी लाभ नहीं होगा, क्योंकि दिया जाने वाला आहार एक ओर बीमारी को बढ़ाएगा, दूसरी ओर उसकी चिकित्सा चलेगी तो एक बार रोग का शमन होगा किन्तु उसका निराकरण नहीं होगा। रोग के निराकरण के लिए आवश्यक है कि मूल आहार को बदला जाए। श्लेष्माहीन आहार का निरन्तर सेवन बहुत कठिन बात है। अम्लता बढ़ाने वाले आहार का परिवर्तन कैसे संभव हो सकता है? फल और पत्रशाक—ये दो ही ऐसे हैं जो श्लेष्माहीन आहार में परिगणित होते हैं। अनाज भी श्लेष्मा को बढ़ाता है और दूध भी श्लेष्मा को बढ़ाता है। सभी प्रकार के भोजन श्लेष्मावर्धक होते हैं। केवल खट्टे फल और पत्रशाक श्लेष्मा को नहीं बढ़ाते।

सुंदर हो मस्तिष्क

हमारे शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अवयव है—मस्तिष्क। यह सबसे अधिक मूल्यवान् है। जिसका मस्तिष्क सुन्दर होता है, वास्तव में वही सुन्दर होता है। जिसका मस्तिष्क विकृत होता है, उसका कोई मूल्य नहीं होता। मस्तिष्क को निर्मल और शक्तिशाली रखने के लिए भोजन पर ध्यान देना जरूरी है। हमारी ऊर्जा या शक्ति सीमित होती है। उसका उपयोग चाहे भोजन पचाने में कर दो या मस्तिष्क की शक्ति के संवर्धन में कर दो। हमारी ऊर्जा जितनी है, उतनी ही है। उस ऊर्जा को या तो पाचन की क्रिया में खपा दो या मस्तिष्क में सुरक्षित कर लो। यहां चुनाव का प्रश्न उपस्थित है कि क्या हम ऊर्जा को मस्तिष्क के लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं या उसको पेट की क्रिया में खपा देना चाहते हैं? पेट में ऊर्जा को खपाने वाला पेटू होगा और पागल की श्रेणी में जाने वाला होगा। जो व्यक्ति अपनी ऊर्जा को मस्तिष्क के लिए सुरक्षित रखता है, वह व्यक्ति दुनिया में कोई अनोखा नया काम कर सकने में सफल हो सकता है।

साधना, स्वास्थ्य और आहार—तीनों का गहरा संबंध है। रोगी आदमी न ध्यान कर सकता है, न अध्ययन कर सकता है और न कोई बड़ा काम कर सकता है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए अपान पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना होगा। अपान का स्थान जितना निर्मल होगा, व्यक्ति की आत्मा उतनी ही निर्मल, स्वभाव उतना ही निर्मल और चिन्तन भी उतना ही निर्मल होगा। जिस व्यक्ति का अपान दूषित होता है, उसका विचार भी दूषित होगा, कार्य भी दूषित होगा।

प्रहर में दो बार न खाएं

हम सबसे पहले यह निर्णय करें कि हमें कुछ करना है। यदि हम साधना का विकास करना चाहते हैं तो कोरे ध्यान से, कोरे कायोत्सर्ग से कुछ नहीं होगा। हमें भोजन पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। भोजन पर ध्यान केन्द्रित किए बिना ध्यान और कायोत्सर्ग का परिणाम भी नहीं आएगा। इधर कायोत्सर्ग किया, शरीर और रक्तचाप को संतुलित किया, तनाव को मिटाया और उधर टूंस-टूंस कर खाया तो जितना तनाव मिटाया था उससे ज्यादा और कर लिया। इसका कोई अर्थ नहीं होगा। हम नयी दिशा में प्रस्थान करें। वह नयी दिशा होगी कि हम भोजन की मात्रा और भोजन करने के प्रयोजन को ठीक ढंग से समझें। हम यह भी समझें कि भोजन कितनी बार करना चाहिए। सबसे अच्छा माना जाता है दो बार भोजन करना। प्राचीन सिद्धान्त यह है—‘याममध्ये न भुञ्जीत’—प्रहर में दो बार न खाएं। एक बार भोजन करने के पश्चात् तीन घण्टा तक पुनः भोजन न करें।

आज व्यक्ति नाश्ते में भी बहुविध पदार्थ खाता है। उन पदार्थों के पचने से पूर्व ही वह अनेक बार और खा लेता है।

माना जाता है कि फल के रस सुपाच्य होते हैं। पर उनका बार-बार सेवन भी लाभप्रद नहीं होता। उनको पचाने में भी कम से कम दो घण्टा लग जाता है। हर पदार्थ को पचाने में समय लगता है। कोई भी पदार्थ खाते ही नहीं पच जाता। आदमी घी खाता है। घी को पचाने में काफी समय लगता है। घी आमाशय में नहीं पचता। पक्वाशय भी घी को नहीं पचा पाता। छोटी आंत में जाकर वह चिकनाई पचती है।

अधिकांश लोग अनियमित आहार करते हैं, कभी कम करते हैं तो कभी अधिक। कभी विरुद्ध भोजन करते हैं तो कभी असंतुलित। शरीर-शास्त्रियों की दृष्टि से भोजन न अति-मात्रा में होना चाहिए और न हीन मात्रा में। कम खाना भी मलोत्सर्ग में रुकावट पैदा करता है। अतिमात्रा में आहार करना तो हर दृष्टि से दोषपूर्ण है। भोजन आमाशय में जाता है। आमाशय अपनी शक्ति के अनुसार ही उसका घोल बनाता है। अधिक मात्रा होने से कुछ घोल कच्चा रह जाता है जिसे आम कहते हैं। आम का संचय होने से उदरशूल, गैस, सिरदर्द आदि कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अध्यशन आहार का एक दोष है। पहले खाया हुआ पचा नहीं, उसी बीच और खाना अध्यशन है। संभव हो तो पांच घंटे, कम से कम तीन घंटे पहले दूसरी बार अन्न न खाया जाए। यह सामान्य मर्यादा रही है। कुछ हलके भोजन जल्दी पच जाते हैं पर अन्न तीन घंटे पहले नहीं पचता। पचने से पूर्व खाने से घोल कच्चा ही रह जाता है।

प्राचीन काल में भोजन दो बार किया जाता था, कभी-कभी तीन बार भी। किन्तु आजकल इस सिद्धांत में परिवर्तन आ गया है। कई डॉक्टर थोड़ा-थोड़ा बार-बार खाने को कहते हैं। उनका आशय संभवतः हलके भोजन से है। अल्सर जैसे रोग में बार-बार खाया जाता है। भस्मक रोग में सब कुछ स्वाहा हो जाता है। अल्सर और भस्मक बड़े रोग हैं। तीव्र दोष में छोटे दोष समा जाते हैं।

भोजन का ऋतुओं से भी सम्बन्ध है। वर्षाकाल में अग्नि मन्द होती है। इसलिए तपस्या इस ऋतु में अधिक सुगमता से होती है। शीतकाल की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में अग्नि मन्द रहती है। दोनों ऋतुओं में भोजन का भी अन्तर रहता है। ठूंसकर खाने वाले बौद्धिक श्रम नहीं कर पाते। हलका भोजन खाने वाले अधिक स्वस्थता से वह कर सकते हैं। रक्त का संचार आनुपातिक होने से उसमें बाधा नहीं पड़ती। चिंतन-मनन करने में रक्त का दौर मस्तिष्क की ओर होने लगता है, इसलिए आंतों को वह कम मात्रा में मिल पाता है। ज्यादा खाने से रक्त का संचार उदर की ओर ज्यादा होता है, इसलिए मस्तिष्क को वह कम मात्रा में मिल पाता है। दिमाग को शक्ति न मिलने से कुंठा आ जाती है। शक्ति-व्यय के आधार पर ही भोजन की मात्रा निश्चित होती है। इसीलिए शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम में भोजन की मात्रा और प्रकार का अन्तर होता है।

महत्त्व नीहार का

आहार से अधिक महत्त्व नीहार का है। ठीक खाने का महत्त्व तो है, पर उससे अधिक महत्त्व है ठीक समय पर उत्सर्ग का।

उत्सर्ग के प्रति कम ध्यान दिया जाता है। उत्सर्ग क्रिया ठीक न होने से अपान वायु दूषित होती है। उससे मानसिक प्रसन्नता नहीं रहती। गुदा-चक्र का मानसिक प्रसन्नता के साथ गहरा सम्बन्ध है। सामान्यतः आहार के असार भाग का चौबीस घंटे बाद उत्सर्ग होता है और तीन दिन की अवधि में तो हो ही जाता है। इस अवधि के बाद भी यदि मल आंतों में रहता है तो उससे आलस्य, जड़ता और बुद्धि-मन्दता होती है।

बड़ी आंतें स्पन्दन के द्वारा मल का विसर्जन करती हैं। तीन कारणों से उसकी गति में मन्दता आ जाती है—(क) अवस्था के साथ, (ख) वेग-निरोध, (ग) अतिभोजन।

(क) अवस्था के साथ-साथ आंतों में श्लथता आती जाती है। अवस्था-वृद्धि के साथ क्षीण होने वाला आंत की शक्ति का स्पन्दन योगमुद्रा से पुनः पुष्ट हो जाता है।

(ख) वेग-निरोध—समय पर उत्सर्ग न करने से आंतें संकेत देना छोड़ देती हैं। विवशता की परिस्थिति या प्रमाद के कारण कई लोग मल के वेग को रोक लेते हैं। आंत के संकेत की बार-बार उपेक्षा करने के कारण वह संकेत देना बन्द कर देती है।

कई लोग बड़े गर्व के साथ कहते हैं—हमें दो-दो, तीन-तीन दिनों तक मलोत्सर्ग की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होता। पर वे भूल जाते हैं कि आंत के संकेतों की उपेक्षा कर वे उस अनुभूति को खो बैठे हैं।

(ग) अतिभोजन—अतिभोजन से आंत श्लथ हो जाती है। वह मल को आगे नहीं ढकेल पाती। इस प्रकार कोष्ठबद्धता हो जाती है। उससे चिन्तन में कुंठा आती है। प्रसन्नता के लिए यह अनिवार्य है कि मल-संचय न हो। दो दिन तक खाना न खाया जाए तो भी आंतों को पचाने के लिए शेष रह जाता है पर मल का उत्सर्ग न हो तो एक दिन में बेचैनी हो जाती है। आंतों में मल भरा रहने से अपान-वायु का द्वार रुद्ध हो जाता है। फिर वह ऊपर जाती है और हृदय को धक्का लगाती है। जिसे हम सामान्यतया हृदय-रोग समझते हैं वह बहुत बार यही होता है।

अपने शरीर के तापमान से अधिक ठंडा और अधिक गर्म भोजन भी हानिप्रद होता है। उससे आंत और दांत, दोनों विकृत होते हैं। भोजन का सम्बन्ध आवश्यकतापूर्ति से है, किन्तु जब उसका संबंध स्वाद से हो जाता है तब मर्यादा का अतिक्रमण और विपर्यय होने लगता है।

हम अपने अज्ञान से स्वास्थ्य को बिगाड़ देते हैं। एक बार जब स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तब पुनः उसकी प्राप्ति कठिन हो जाती है। साधना के विषय में भी यही बात है। आदमी प्रमाद व आलस्यवश साधना के विषय में लापरवाही बरतता है, फिर साधना का योग मिलना कठिन हो जाता है।

स्वस्थ वह नहीं होता जो केवल हट्टा-कट्टा होता है, मांसल होता है, चर्बीयुक्त होता है। स्वस्थ वह होता है जिसकी इन्द्रियां निर्मल होती हैं, मन निर्मल होता है, चित्त निर्मल होता है। जो चिड़चिड़ा नहीं होता, क्रोध नहीं करता, आवेश नहीं करता, तनाव से नहीं भरता—वह स्वस्थ होता है। स्वास्थ्य मिलना दुर्लभ है और उसके बाद साधना का योग मिलना और भी दुर्लभ है।

पथ्य की अनिवार्यता

अनेक बार व्यक्ति शरीर का शोधन करता है फिर पौष्टिकता के लिए रसायन का सेवन भी करता है। यदि वह पथ्यापथ्य का विवेक नहीं रखता, जो चाहा वह खाने लग जाता है तो बेचारा शोधन भी क्या करेगा और रसायन का सेवन भी क्या करेगा? पथ्य का सेवन भी जरूरी है। उसके बिना प्रक्रिया पूरी नहीं होती। संस्कृत में कहा है—‘यदि पथ्यं किमौषधेन? यदि अपथ्यं किमौषधेन?’ यदि पथ्य है तो औषधि-सेवन से क्या? यदि अपथ्य है तो औषधि-सेवन से क्या? जितना लाभ दवाई नहीं करती, उतना लाभ पथ्य कर देता है।

साधना करने वाले व्यक्ति पथ्य के प्रति जागरूक हो जाते हैं। वे केवल रसायन का ही प्रयोग नहीं करते, उनमें पथ्य का भी पूरा विवेक जाग जाता है। एक साधक बता रहा था—मैंने पिछले शिविर में कुछ प्रयोग सीखे थे। मैंने दैनन्दिन के भोजन में परिवर्तन किया। नमक छोड़ दिया, चीनी छोड़ दी। भोजन की मात्रा कम कर दी। पर मेरी

शक्ति यथावत् बनी रही। आलस्य घटा, स्फूर्ति बढ़ी और कार्य करने की क्षमता का विकास हुआ। अब स्वास्थ्य भी पहले से बहुत अच्छा है।

यह सारा पथ्य का ही परिणाम है। यदि पथ्य न हो, भोजन का क्रम न बदले और ध्यान भी चलता रहे तो कोई परिणाम नहीं आ सकता। पथ्य का विवेक हो, भोजन का क्रम बदले, चर्या बदले, आलस्य न रहे, श्रम हो तो ध्यान फलदायी हो सकता है।

हम तीनों पर संतुलित विचार करें—साधना, स्वास्थ्य और आहार। साधना के लिए स्वास्थ्य जरूरी है और स्वास्थ्य के लिए आहार जरूरी है। इन तीनों का संतुलन होने पर हम अनेक शक्तियों को जागृत करने में सफल हो सकते हैं।

8. आहार : साधना का प्रथम चरण

मनुष्य सदा सार के प्रश्न पर चिंतन करता रहा है। असार को छोड़ना और सार को उपलब्ध होना, ये दो बहुत बड़े कार्य हैं। प्रत्येक कार्य के साथ सार का संबंध जुड़ा है। जीवन के साथ भी सार का संबंध जुड़ा है।

प्रश्न पूछा गया—‘ज्ञान का सार क्या है?’ उत्तर मिला—ज्ञान का सार है आचार।

‘धर्म का सार क्या है?’ उत्तर मिला—शांति।

‘जीवन का सार क्या है?’ इसका उत्तर होगा—स्वास्थ्य।

हमारा जीवन है—प्राण। प्राणी प्राण से जीता है। प्राण उसका जीवन होता है। प्राण सन्तुलित होता है, प्राणी स्वस्थ होता है। प्राण असन्तुलित होता है, प्राणी अस्वस्थ होता है। स्वस्थ व्यक्ति जीवन का आनंद लेता है और अस्वस्थ व्यक्ति निराशा के साथ, दुःख के साथ जीवन जीता है। वह जीते हुए भी अपने को मृतवत् अनुभव करता है। सचमुच वही व्यक्ति जीवन जीता है जो स्वस्थ होता है। जिसकी प्राण-शक्ति प्रबल होती है वह सदा आशा, उत्साह और शक्ति-सम्पन्नता का अनुभव करता है। शरीर स्वस्थ होता है, जीवन का रस मिलता है। शरीर स्वस्थ हो और मन अस्वस्थ हो तो जीवन का रस खण्डित हो जाता है, पूरा आनन्द का अनुभव नहीं होता। शरीर तो ठीक चल रहा है किन्तु मन गड़बड़ा रहा है तो शांति समाप्त हो जाती है। शरीर भी स्वस्थ, मन भी स्वस्थ किन्तु भाव स्वस्थ नहीं है, तो ये दोनों गड़बड़ा जाते हैं।

स्वास्थ्य के तीन स्तर

स्वास्थ्य का प्रश्न तीन स्तरों पर चर्चित होता है—भाव, मन और शरीर। भावात्मक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य। भावात्मक स्वास्थ्य आध्यात्मिक स्वास्थ्य है। शरीर स्थूल है, मन उससे सूक्ष्म है और भाव उससे भी सूक्ष्म। स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर। सबसे पहले हमारे सामने शरीर आता है। हम शरीर के स्वास्थ्य की चिन्ता करते हैं। जिन लोगों ने सूक्ष्म की दिशा में प्रस्थान किया है, सूक्ष्म की यात्रा शुरू की है, वे स्थूल पर ही नहीं अटकते। वे सूक्ष्म में जाते हैं, तब पता चलता है कि शरीर के स्वास्थ्य का मूल्य केवल दस प्रतिशत है। मानसिक स्वास्थ्य का मूल्य तीस प्रतिशत है। जब और आगे जाते हैं तब पता चलता है—मानसिक स्वास्थ्य का मूल्य भी कम है। भावात्मक स्वास्थ्य का मूल्य साठ प्रतिशत है। सर्वाधिक मूल्य है भाव के स्वास्थ्य का, आध्यात्मिक स्वास्थ्य का। जिस व्यक्ति ने आध्यात्मिक स्वास्थ्य उपलब्ध कर लिया, उसे मानसिक स्वास्थ्य के लिए चिन्ता करने की

जरूरत नहीं होती, वह स्वतः उपलब्ध होता है। जिस व्यक्ति ने भाव का स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया, उसे शारीरिक स्वास्थ्य की भी बहुत चिन्ता करने की जरूरत नहीं, वह अपने आप हो जाएगा। हमारी अधिकतर चिन्ता शारीरिक स्वास्थ्य के लिए होती है। हम मानसिक स्वास्थ्य को गौण करते हैं। भाव के स्वास्थ्य को और अधिक गौणता देते हैं। इसीलिए शारीरिक स्वास्थ्य की चिन्ता भी मिट नहीं पाती। हम उलटे क्रम से चलें। सबसे पहले चिन्ता करें आध्यात्मिक स्वास्थ्य की, फिर हमारी चिन्ता हो मानसिक स्वास्थ्य की, फिर हमारी चिन्ता हो शारीरिक स्वास्थ्य की। इस क्रम से चिन्ता स्वयं अचिन्ता बन जायेगी, समस्या सामने नहीं रहेगी।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य और साधना

साधना का पहला सूत्र है—आध्यात्मिक स्वास्थ्य। आध्यात्मिक स्वास्थ्य में और साधना में कोई भेद-रेखा नहीं खींची जा सकती। जो साधना है, वह आध्यात्मिक स्वास्थ्य है और जो आध्यात्मिक स्वास्थ्य है, वह हमारी साधना है। दोनों एक हैं—शब्द भिन्न, तात्पर्य सर्वथा अभिन्न। ध्यान करने वाले आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दिशा में प्रस्तुत होते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। कोई भी कार्य बाधाओं से मुक्त नहीं होता। सब कामों में बाधाएं आती हैं, विघ्न आते हैं। प्रत्येक प्रवृत्ति के साधक-बाधक तत्त्वों को जानना जरूरी होता है—प्रवृत्ति के ये बाधक तत्त्व हैं और ये साधक तत्त्व। कोई भी प्रवृत्ति करने वाला यदि बाधक और साधक तत्त्वों का विश्लेषण नहीं कर लेता तो उसकी प्रवृत्ति कभी सम्पन्न नहीं होती, निष्ठा तक नहीं पहुंच पाती, पहले ही समाप्त हो जाती है। सफलता के बिन्दु तक वही प्रवृत्ति पहुंच पाती है जिसके साथ साधक और बाधक तत्त्वों का पूरा विवरण होता है, विश्लेषण होता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के साधक तत्त्व भी हैं और बाधक तत्त्व भी।

मनुष्य में प्रबल है काम संज्ञा

जैसे ही व्यक्ति अध्यात्म की साधना शुरू करता है, विघ्न आने शुरू होते हैं, बाधाएं सामने आ खड़ी होती हैं। उन सब बाधाओं में सबसे पहली और सबसे बड़ी बाधा है—काम-मूच्छा। भगवान् महावीर ने बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा—संज्ञाएं चार हैं—आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। ये चार संज्ञाएं सब प्राणियों में होती हैं। ये संज्ञाएं अविकसित स्थावर प्राणियों में भी होती हैं तो परम विकसित प्राणी मनुष्य में भी होती हैं। फिर प्रश्न हुआ—किस प्राणी में कौन-सी संज्ञा कम और अधिक होती है?

इस प्रश्न के उत्तर से बहुत सारी मनोवैज्ञानिक गुत्थियां सुलझती हैं। पशु में आहार की संज्ञा सबसे ज्यादा होती है और मनुष्य में काम की संज्ञा सबसे अधिक। उसमें काम का तनाव निरंतर बना रहता है।

फ्रायड का कथन

आज के मनोवैज्ञानिक भी मानते हैं कि क्रोध का तनाव सामयिक होता है, काम का तनाव निरंतर बना रहता है। फ्रायड ने इसी आधार पर कहा था कि हमारी सारी वृत्तियों के मूल में सेक्स है और काम का ही अनेक दिशाओं

में प्रकटीकरण होता है। उसका सब्लीमेशन होता है, उदात्तीकरण होता है, अनेक दिशाओं में प्रस्फुटन होता है। उन्होंने संगीत, बौद्धिक विकास—सभी अभिव्यक्तियों को काम की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया। इसमें कुछ चर्चनीय भी हो सकता है, विवादास्पद भी हो सकता है। किन्तु यह सचाई है कि काम का तनाव मनुष्य में सबसे अधिक होता है, काम की संज्ञा सबसे प्रबल होती है। यह सबसे बड़ी बाधा है। काम की संज्ञा को कम किए बिना कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक स्वास्थ्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। काम की संज्ञा को कम करना सबसे कठिन कार्य है। दोनों में कैसे समझौता हो और इस समस्या को कैसे सुलझाया जाये?

समस्याएं काम की

पूज्य कालूगणीजी कहते थे कि बूर का लड्डू खाने वाला भी पछताता है और नहीं खाने वाला भी पछताता है। खाता है, वह अनुभव करता है कि खाया, फिर भी मजा नहीं आया। कोई स्वाद नहीं है। जो नहीं खाता, वह सोचता है कि वह आदमी तो खा रहा है, कितने स्वाद का, आनन्द का अनुभव कर रहा होगा और मैं तो बिलकुल वंचित रह रहा हूँ। वह तरसता है। दोनों ओर से कठिनाई है।

काम की भी समस्या है और ब्रह्मचर्य की भी। दोनों ओर समस्याएं हैं। ब्रह्मचर्य की समस्या को वे लोग जानते हैं जो इस दिशा में जाते हैं। बहुत बड़ी समस्याएं होती हैं। काम की समस्याएं भी कम नहीं हैं। आज कौन-सा समाचारपत्र ऐसा होगा जिसमें आत्महत्या की चर्चा न हो। आत्महत्याओं में प्रेम के कारण आत्महत्या करने वालों की चर्चा भी कम नहीं होती। विवाह कर लेने वाले भी समस्याओं का अनुभव करते हैं। जहां दो व्यक्तियों का संबंध होता है, कोई गारण्टी नहीं कि परस्पर प्रेम सदा बना रहे। अगर ऐसा होता तो तनाव की नौबत ही नहीं आती, किन्तु तनाव होते हैं। यह इस बात की सूचना है कि विवाह, अब्रह्मचर्य या काम की एक समस्या है। कितने झगड़े होते हैं परस्पर, कितनी हत्याएं होती हैं? काम के साथ बहुत सारी समस्याएं जुड़ी हुई हैं। कहना यह चाहिए कि काम के कारण बहुत सारी समस्याओं का जन्म हुआ है। हिंसा की समस्या, चोरी की समस्या, असत्य की समस्या और उनकी उपजीवी समस्याएं—ये सारी समस्याएं काम के परिवार के रूप में उत्पन्न हैं।

समस्या ब्रह्मचर्य की

क्या ब्रह्मचर्य की कोई समस्या नहीं है? अगर कोई समस्या नहीं होती तो फिर यह बाधा ही नहीं होती। यह भी बहुत बड़ी समस्या है और इसलिए समस्या है कि अब्रह्मचर्य की मांग शरीर की मांग भी है और मन की मांग भी। दोनों की मांग है। इसे केवल मानसिक नहीं कह सकते, काल्पनिक नहीं कह सकते। शरीर और मन, दोनों की मांग है और इसके पीछे श्रृंखला है संस्कार की। इसके साथ संस्कार जुड़ा हुआ है। ब्रह्मचर्य की अपनी समस्या है। कोई ब्रह्मचारी बने और शरीर व मन की मांग को पूरा न करे तो पागल भी हो सकता है, पागल हो जाता है। कुछ

ऐसे लोग हैं जिन्होंने शादी नहीं की, गृहस्थी में बने हुए हैं। लगता ऐसा है कि आधे विक्षिप्त हों। आधे पागल बन गये। बड़ी समस्या है यह।

तो फिर क्या करें? कौन-सा रास्ता चुनें? अब्रह्मचर्य की अपनी समस्या, ब्रह्मचर्य की अपनी समस्या और हम लोग चाहते हैं कि समस्या-मुक्त मार्ग में जाएं। कौन-सा मार्ग चुनें? न अब्रह्मचर्य को चुनें, न ब्रह्मचर्य को चुनें तो किसको चुनें? अधर में रहें? आकाश भी नहीं, पाताल भी नहीं, त्रिशंकु की भांति बीच में ही लटकते रहें? कहां जाएं? बहुत बड़ी उलझन है। निश्चित मानकर चलें कि हमारे जीवन में कोई घटना, कोई भी बात ऐसी नहीं होती जिसके साथ समस्या जुड़ी हुई न हो। किन्तु आदमी समस्या का सामना करता है लक्ष्य के आधार पर। जो लक्ष्य चुनता है उसके आधार पर समस्याओं को सुलझाने की बात सामने आती है।

प्रश्न है लक्ष्य का

मूल प्रश्न प्रवृत्ति का नहीं है, समस्या का नहीं है, मूल प्रश्न है लक्ष्य का। जिन लोगों ने लक्ष्य चुना कि गृहस्थी में रहना है, वे गृहस्थी में जाते हैं और सैकड़ों समस्याओं को झेलते हैं। बहुत समस्याएं होती हैं। गृहस्थाश्रम इतना कठोर होता है कि भुगतने वाला जानता है।

बहुत लोग कहते हैं—‘महाराज! आप बहुत सुखी हैं। आपको कोई चिन्ता नहीं। हमारे दुःखों को देखें, तब पता चले कि गृहस्थी में कितना दुःख है।’ तब सोचता हूं ये हमें सुखी मानते हैं और गृहस्थावास को दुःखी मानते हैं। शायद दूसरे खेमे के लोग कभी-कभी सोचते होंगे कि कितना सुखप्रद है घर में रहना। जो मन में आया, बना लिया, खा लिया। जो जैसा अच्छा लगा, कर लिया। कोई चिन्ता नहीं, किसी का अनुशासन नहीं। कब उठना, इच्छा की बात। इच्छा हो तो आठ बजे उठो, इच्छा हो तो बारह बजे उठो। कोई कहने वाला नहीं, कोई रोकने वाला नहीं। यहां कितना अनुशासन, चार बजे उठना। ध्यान करो, स्वाध्याय करो। यह करो, वह करो। लगता है कि सारा जीवन नियंत्रित और अनुशासित है। कितना अच्छा होता कि घर में रहते! बहुत स्वाभाविक है ऐसे विचारों का आना। उधर वे सोचते हैं कि ये सुखी हैं, इधर ये सोचते होंगे कि वे सुखी हैं। सचमुच यह संभावना हो सकती है। किन्तु लक्ष्य के साथ जब व्यक्ति जुड़ जाता है तब यह विकल्प समाप्त हो जाता है। जिन लोगों ने लक्ष्य निश्चित किया कि मुझे सूक्ष्म सत्य का अनुभव करना है, अपने अस्तित्व का अनुभव करना है, अपने चैतन्य के स्तर पर जीवन जीना है, उनकी समस्याएं सुलझ गईं।

रहस्य आत्मबल का

एक संन्यासी को किसी सन्देहवश दंड मिला। राजा ने दंड दिया कि कोड़े लगाए जाएं। पतला-दुबला था बूढ़ा संन्यासी। अब कोड़े लगने लगे। इधर कोड़े लग रहे हैं तेज, उधर वह मुसकरा रहा है, हंस रहा है। कोड़ों की सजा

समाप्त हो गई। एक आदमी देख रहा था, पूछा—‘महाराज! आपके इस क्षीण जर्जर शरीर पर कोड़े बरस रहे थे और आप मुसकरा रहे थे। यह क्या है? आपके शरीर में कहां ताकत है, कहां शक्ति है कि उनको सह सकें? फिर भी आप हंस रहे थे।’

संन्यासी बोला—‘विपदा को शरीर-बल से नहीं सहा जा सकता। भारी-भरकम पुष्टकाय शरीर का आदमी भी थोड़ा-सा शरीर को कष्ट होता है तो सबसे पहले जुआ डाल देता है, झुक जाता है। विपत्ति को सहा जाता है आत्मबल से।’

फिर प्रश्न पूछा—‘महाराज! कैसे उपलब्ध होता है आत्मबल? उसका रहस्य क्या है? जानना चाहता हूँ।’

संन्यासी बोला—‘अच्छे विचार से पैदा होता है आत्मबल।’

निरंतर शुभ विचार किया जाये, पाँजीटिव विचार किया जाये, विधायक विचार किया जाये, धनात्मक विचार किया जाये, अमंगल विचार कभी नहीं किया जाये तो यह आत्मबल उत्पन्न होता है। तब व्यक्ति हर कठिनाई को झेल सकता है, उसका सामना कर सकता है। एक बहुत बड़ा सूत्र मिलता है मंगल विचार का। मन में कोई अमंगल भावना न आए, किसी के प्रति न आए। निरन्तर मंगल भावना, अपने प्रति भी, दूसरों के प्रति भी और सब दिशाओं के प्रति भी। बहुत शक्ति जाग जाती है समस्या को सुलझाने की। उसमें एक सूझ-बूझ भी स्वतः उत्पन्न हो जाती है। यह स्थिति पैदा होती है कुछ आलंबन के द्वारा। लक्ष्य के साथ फिर आलंबन जुड़ते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण आलंबन

भगवान् महावीर के सामने भी यह प्रश्न था कि कोई मुनि बना, ब्रह्मचारी बना और काम की मूर्च्छा सताने लगी। क्या करना चाहिए? भगवान् महावीर ने उसके लिए कुछ सूत्र बतलाए। साधक में जब काम की मूर्च्छा जगे तो उसे कुछ आलंबनों का उपयोग करना चाहिए। वे आलंबन छह हैं—

1. रस परित्याग—गरिष्ठ भोजन का परिहार, दुर्बल भोजन का आसेवन।

2. ऊनोदरी—भूख से कम खाना।

3. अनशन—भोजन का सर्वथा परिहार।

—ये तीन आलंबन भोजन से संबंधित हैं।

4. ऊर्ध्वस्थान—खड़े-खड़े ध्यान करने का अभ्यास करना।

5. ग्रामानुग्राम विहरण—एक गांव से दूसरे गांव में विचरण करना।

6. काम-वासना में जाते हुए मन का विषय बदल डालना, संकल्प को हटा लेना।

यहां छह आलंबनों का प्रतिपादन किया गया है। आलंबन इतने ही नहीं हैं, और अधिक हो सकते हैं। छह नहीं, छह सौ हो सकते हैं। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि यदि छह करोड़ आदमी हैं तो आलंबन छह करोड़ भी हो सकते हैं। यह प्राणी जगत् का प्रश्न है। प्राणी यंत्र तो है नहीं कि एक ही तरह से सब बन जाएं। यह प्रश्न है चैतन्य जगत् का, प्राणी जगत् का। प्राणी जगत् के लिए कोई सार्वभौम नियम नहीं बनाया जा सकता। प्राणी जगत् के लिए कोई जागतिक कानून नहीं बनता। प्राणी की अपनी स्वतंत्रता होती है, अपनी क्षमता होती है और क्षमता के आधार पर सारे नियम बनते हैं। साधना का चुनाव एक ही प्रकार से नहीं होता। विभिन्न क्षमताओं के आधार पर साधना के मार्ग भी अलग-अलग होते हैं।

पहला आलंबन है भोजन

ब्रह्मचर्य के भी अनेक आलंबन हैं। छह आलंबन बताये गये और ये आलंबन भी प्रारंभिक हैं। आगमों के व्याख्याकार कहते हैं कि अबहुश्रुत के लिए ये आलंबन हैं। बहुश्रुत के लिए ये आलंबन नहीं हैं। वह भिन्न आलंबनों का चुनाव करेगा। उसके लिए आलंबन होगा—स्वास्थ्य। उसके लिए आलंबन होगा—ध्यान। किन्तु सामान्य साधक के लिए ये छह आलंबन बनते हैं। सबसे पहला आलंबन है भोजन का। यह बहुत महत्वपूर्ण है। आहार का और ब्रह्मचर्य का बहुत गहरा संबंध है। जिस व्यक्ति ने गहराई के साथ इस विषय पर विचार नहीं किया, आहार को यथार्थ मूल्य नहीं दिया, साधना में आहार का कितना मूल्य होता है, यह नहीं जाना, वह कैसे ब्रह्मचारी हो सकता है? मैं तो नहीं समझ पाता। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार का बहुत मूल्य है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उसका मूल्य जानते हैं किन्तु मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए उसका कितना मूल्य है, यह सब नहीं जानते। कुछ लोग पागल बन जाते हैं। पहले तो यही माना जाता था कि स्नायु-संस्थान दुर्बल हो गया या और कोई आघात लगा कि पागल बन गया। किन्तु आज आहार-शास्त्रीय खोजों ने अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। आहार-शास्त्रियों का कहना है कि अपोषण और कुपोषण के कारण भी मनुष्य पागल बनता है। पूरा पोषण नहीं मिलता है तो पागल बन जाता है। कुपोषण मिलता है तो पागल बन जाता है। आहार का संबंध तो हमारे समूचे जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। प्रारंभ से अन्त तक उसका परिणाम हमें परिलक्षित होता है। भगवान् महावीर ने साधना के प्रथम चरण में भी आहार को बहुत महत्व दिया। तपस्या के बारह प्रकार हैं। तपस्या शुरू कहां से होती है? प्रारंभिक चार प्रकार आहार से संबंधित हैं—अनशन, ऊनोदरी, वृत्ति-संक्षेप और रस-परित्याग। चारों का संबंध है भोजन से। ब्रह्मचर्य में भी सबसे पहले 'अवि णिब्बलासए'—'दुर्बल आहार करो, निर्बल आहार करो।' यहां से साधना शुरू होती है। यह बहुत बड़ा विषय है। इसका अनुशीलन जीवन में नई दिशा का प्रवर्तन कर सकता है।

9. आहार-शुद्धि से रूपान्तरण

आदत को बदलने के लिए आहार-शुद्धि करनी होती है। जिस व्यक्ति ने आहार-शुद्धि नहीं की, वह कभी अपनी आदत को नहीं बदल सकता। गहरा सम्बन्ध है आहार का और आदतों का। आदतें बनती हैं चैतन्य-केन्द्रों के द्वारा। हमारे मस्तिष्क में अनेक बिन्दु हैं, केन्द्र हैं। वे हमारी प्रवृत्तियों का संचालन करते हैं। आदमी नींद लेता है। नींद का नियामक केन्द्र है मस्तिष्क में। आदमी हंसता है, रोता है, सोचता है, चिन्तन करता है, इन सबके अलग-अलग केन्द्र हैं। स्मृति का केन्द्र है, कल्पना का केन्द्र है, बुद्धि का केन्द्र है।

जितनी मानसिक प्रवृत्तियां हैं उन सबके केन्द्र हैं मस्तिष्क में। जो केन्द्र सक्रिय हो जाता है, जाग जाता है, आदमी वैसा ही बन जाता है। सारे जीवन का संचालन इन मस्तिष्कीय केन्द्रों के द्वारा होता है। ये सारे केन्द्र विद्युतीय आवेशों के द्वारा और रसायनों के द्वारा जागते हैं। मस्तिष्क के अपने रसायन हैं। जैसे शरीर को भोजन की अपेक्षा होती है वैसे ही मस्तिष्क को भी भोजन की अपेक्षा होती है। शरीर को टॉनिक चाहिए तो मस्तिष्क को भी टॉनिक चाहिए। आज के वैज्ञानिक मस्तिष्क के टॉनिकों की खोज में लगे हुए हैं। प्राचीन काल में अतीन्द्रिय-ज्ञानियों ने भी इस विषय में अनेक खोजें की थीं। आयुर्वेद के ग्रन्थ इन खोजों से भरे पड़े हैं। इन ग्रन्थों में मस्तिष्कीय टॉनिक और नाड़ी-संस्थान को बल-अबल देने वाले पदार्थों के विषय में बहुत लम्बी चर्चा उपलब्ध होती है।

मस्तिष्क का सम्बन्ध है विद्युत् के आवेशों से और रसायन से। रसायन बनते हैं आहार से। इस प्रकार आहार का सम्बन्ध जुड़ गया। जैसा आहार वैसा रसायन, जैसा रसायन वैसी मस्तिष्कीय क्रिया और जैसी मस्तिष्कीय क्रिया वैसा हमारा आचार-व्यवहार, विचार और आदतें। यह एक पूरा चक्र है।

आहार : व्यापक अर्थ में

आहार को समझे बिना आदतों को नहीं बदल सकते। आहार-शुद्धि किए बिना स्वभाव का परिवर्तन नहीं हो सकता। आदमी दूसरे-दूसरे कितने ही परिवर्तन करे, स्वभाव नहीं बदलेगा जब तक कि वह अपने आहार के क्रम को नहीं बदल देता। दोनों का गहरा सम्बन्ध है। सबसे पहले हमारा ध्यान आहार पर केन्द्रित होना चाहिए। आहार का अर्थ बहुत व्यापक है। केवल मुंह से खाना ही आहार नहीं है। हम जो कुछ बाहर से ग्रहण करते हैं वह सारा आहार है। नथुनों से जो श्वास लेते हैं वह भी आहार है। बोलने के लिए बाह्य वातावरण से भाषा के योग्य परमाणु लेते हैं, वह भी आहार है। चिन्तन के लिए मानसिक परमाणुओं को संगृहीत करते हैं वह भी आहार है। प्राण का आकर्षण,

भाषा का आकर्षण, चिन्तन परमाणुओं का आकर्षण आदि-आदि सभी आहार हैं। इस व्यापक अर्थ में हम आहार को समझें। इसको समझ लेने पर सारी समस्याएं सुलझ जाएंगी।

मादक द्रव्यों का प्रभाव

आहार मस्तिष्क को अत्यधिक प्रभावित करता है। आदमी ने शराब पी। मस्तिष्क का नियंत्रण ढीला हो गया। वह पागल बन गया। पागल किसने बनाया? भोजन ने। शराब भी एक तरह का भोजन है, आहार है। भांग पी, आकाश-पाताल एक हो गए। सारा संसार घूमने लगा। यह भी आहार के कारण ही हुआ। भांग भी एक प्रकार का आहार है। मादक द्रव्यों के परिणाम से हम परिचित हैं।

संदर्भ स्मृति का

किसी व्यक्ति की स्मृति कमजोर है। वह ब्राह्मी का प्रयोग करता है, शंखपुष्पी का प्रयोग करता है, स्मृति बढ़ जाती है। आज के वैज्ञानिक स्मृति को बढ़ाने वाले अनेक रसायनों की खोज कर रहे हैं और साथ-साथ स्मृति को घटाने वाले रसायनों की खोज भी कर रहे हैं। उनका मानना है कि बुद्धि और स्मृति सबके लिए जरूरी नहीं होती। जो चोर हैं, लुटेरे हैं, हत्यारे हैं, खूंखार हैं, उनकी स्मृति को कम कर दिया जाए, जिससे अपराध कम हो सकें। इस स्थिति को घटित करने के लिए वे स्मृति घटाने वाले रसायनों की खोज कर रहे हैं। इसी प्रकार स्मृति को वृद्धिगत करने वाले रसायनों की खोज भी चल रही है। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अनुसार स्मृति बढ़ाने वाले द्रव्य हैं—गोरखमुड़ी, सतावरी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी आदि-आदि। आज के वैज्ञानिक इस खोज में पूरी तन्मयता से लगे हुए हैं कि कौन-सा रसायन क्या कार्य करता है? उसके आधार पर वे विभिन्न रसायनों का निर्माण कर रहे हैं। आयुर्वेद के आचार्यों ने पदार्थ की खोज की और उन पदार्थों के द्वारा रसायनों को पैदा करने का उपाय बताया। प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं है, मूल बात एक ही है कि उन खोजों के द्वारा, उन पदार्थों के द्वारा मस्तिष्क में विशेष प्रकार के रसायनों का निर्माण करना और मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाना या घटाना। दोनों कार्य हो सकते हैं—मस्तिष्कीय शक्ति का विकास भी हो सकता है और हास भी हो सकता है।

शारीरिक दृष्टि से भोजन के प्रभावों की जितनी खोजें हुई हैं, उतनी खोजें मनुष्य के स्वभाव को रूपान्तरित करने की दिशा में कम हुई हैं। आयुर्वेद में भी कम हुई हैं और ऐलोपैथिक में भी कम हुई हैं।

भोजन के अनेक प्रकार

आयुर्वेद के आचार्यों ने भोजन के अनेक प्रकार बतलाए हैं—जीवनीय, बृंहणीय, दीपनीय, बल्य आदि-आदि।

एक प्रकार का भोजन वह होता है जो जीवनी-शक्ति को बढ़ाता है, उसको बनाए रखता है। एक प्रकार का भोजन वह होता है जो बृंहणीय होता है, शरीर को पुष्ट करने वाला होता है। दीपनीय भोजन अग्नि का दीपन करता है। एक प्रकार का भोजन वह होता है जो बल की वृद्धि करता है। भोजन के और भी अनेक प्रकार हैं।

द्रव्य के तीन प्रकार

द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं—शमन करने वाले, कुपित करने वाले और संतुलित रखने वाले। कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं जो वात, पित्त और कफ का शमन करते हैं। कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं जो वात, पित्त और कफ को कुपित करते हैं। कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं जो वात, पित्त और कफ को सम-अवस्था में रखते हैं, संतुलित रखते हैं। इनके संतुलन को बिगाड़ने नहीं देते।

पित्त को कुपित करने वाले द्रव्य क्रोध को कुपित करते हैं। पित्त और क्रोध का गहरा सम्बन्ध है। जिस व्यक्ति का पित्त कुपित होता है, उसका क्रोध भी कुपित होता है। जिस व्यक्ति का कफ कुपित होता है, उसका लोभ भी कुपित होता है। कफ को कुपित करने वाले द्रव्य लोभ को भी कुपित करते हैं। कुछ व्यक्ति लालची होते हैं। हजार बार उपदेश सुन लेने पर भी उनकी लालची मनोवृत्ति में कोई अन्तर नहीं आता। वे बेचारे क्या करें? उनके कफ का प्रकोप बना रहता है, तब वे लालची मनोवृत्ति से कैसे छुटकारा पा सकते हैं? कफ का प्रकोप शान्त होते ही लालच की वृत्ति में अन्तर आ जाएगा। कफ और लालच का गहरा सम्बन्ध है। वायु को कुपित करने वाले द्रव्य व्यक्ति में निराशा को जन्म देते हैं। जिस व्यक्ति में वायु कुपित रहता है वह व्यक्ति निराश, डिप्रेशन से ग्रस्त, मानसिक अवसाद से युक्त होता है। वायु का और इन सब दोषों का गहरा सम्बन्ध है।

व्यापक है आहार की चर्चा

आदमी का जीवन भोजन से बहुत बंधा हुआ है। आतिथ्य सत्कार भी इससे प्रारम्भ होता है। दो आदमी या दो औरतें जहां भी मिलती हैं, भोजन की चर्चा चल पड़ती है। भोजन की चर्चा जितनी व्यापक है उतनी व्यापक और कोई चर्चा नहीं है।

जैन साहित्य में चार प्रकार की कथाओं का वर्णन है—स्त्री-कथा, भक्त-कथा, देश-कथा और राज-कथा। भक्त-कथा अर्थात् भोजन की कथा। यह कथा अकारण नहीं होती। आदमी भोजन से जितना बंधा हुआ है, उतना शायद वह किसी से बंधा हुआ नहीं है। भोजन से शरीर बनता है, रक्त बनता है, मांस बनता है, सारी धातुएं बनती हैं। सात धातुओं से परे जो ओज है वह भी भोजन से बनता है। ओज को आज की भाषा में विद्युत् कहा जाता है। सारे रसायन भोजन से निष्पन्न होते हैं।

जीवन का पूरा चक्र भोजन से संचालित होता है। हमारी सारी वृत्तियां भोजन से संचालित होती हैं। भोजन के आधार पर पूरे व्यक्तित्व का अंकन किया जा सकता है। जिस व्यक्ति ने भोजन का यथार्थ मूल्यांकन नहीं किया वह अपने व्यक्तित्व को भी कैसे समझ सकता है? वह अपनी आदतों का विश्लेषण या रूपान्तरण कैसे कर सकता है?

जो भोजन हित, मित और सात्त्विक होता है, वह आहार-शुद्धि है। जो आहार हितकारी होता है, परिमित होता है और सात्त्विक होता है, वही आहार शुद्ध होता है। यही आहार-शुद्धि है।

क्या है हित भोजन ?

हित भोजन क्या है, इसकी व्याख्या बहुत लम्बी है। हमारे शरीर के महत्वपूर्ण अंग हैं—मस्तिष्क, हृदय, लिवर, फेफड़े, तिल्ली और गुर्दे। इन्द्रियां—आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा ये भी मुख्य हैं। नाड़ी-संस्थान का भी अपना महत्व है। इन सबकी दृष्टि से एक साथ हितकर की व्याख्या नहीं की जा सकती। मस्तिष्क के लिए कुछेक पदार्थ हितकर होते हैं। नाड़ी-संस्थान के लिए भिन्न-भिन्न पदार्थ हितकर होते हैं। जो ज्ञानवाही नाड़ियों के लिए हितकर हैं, वे क्रियावाही नाड़ियों के लिए हितकर नहीं भी होते। हृदय के लिए कोई एक पदार्थ हितकर होता है तो आंख के लिए कोई दूसरा ही पदार्थ हितकर होता है। बहुत विशाल ज्ञान करना होता है कि किस अवयव के लिए कौन-सा पदार्थ हितकर है ?

कुछेक व्यक्ति एकांगी दृष्टि से 'हित' की बात को पकड़ लेते हैं। कई वैद्य कहते हैं—पिप्पल बहुत हितकर होती है। मंदाग्नि हो, पाचन की कमी हो तो पिप्पल का सेवन भी हितकर होता है। बात ठीक है। पर इसकी भी एक सीमा है। मंदाग्नि के समय पिप्पल का सेवन हितकर हो सकता है, परन्तु जब वह बीमारी मिट गई और व्यक्ति प्रतिदिन उसका सेवन करता ही रहे तो वह पिप्पल भी दोष-संग्रहकारक हो जाएगी। हित की बात देश, काल और मात्रा के साथ जुड़ी हुई होती है। देश, काल और मात्रा की उपेक्षा कर हित की बात नहीं सोची जा सकती।

हितकर या अहितकर की व्याख्या एकांगी दृष्टि से नहीं की जा सकती। अनेक दृष्टियों से उसकी व्याख्या करनी होती है। देश की दृष्टि से हितकर, काल की दृष्टि से हितकर, सार की दृष्टि से हितकर, अवस्था की दृष्टि से हितकर। बच्चे के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है। दूध की भी आवश्यकता होती है। पर कोई व्यक्ति बचपन पार कर युवावस्था में चला जाता है और प्रोटीन का अत्यधिक सेवन करता है तो वह अनेक रोगों को निमंत्रित करता है। अवस्था, काल तथा अन्यान्य स्थितियों को ध्यान में रखकर जब मात्रा सहित किसी पदार्थ का उपयोग करते हैं तो भोजन हितकर होता है। दूध अच्छा भोजन है। परन्तु उसको कब कितनी मात्रा में लेने का सापेक्ष दृष्टिकोण नहीं होता है तो वह अच्छा भी बुरा बन जाता है, अमृत भी विष बन जाता है।

मित भोजन

दूसरा प्रश्न है मित भोजन क्या है? हित के साथ मित जुड़ा हुआ है। यह मात्रा-बोध का सूचक है। कौन-सी वस्तु कितनी मात्रा में लेनी चाहिए, इसका पूरा ज्ञान आवश्यक है। मुनि के लिए भोजन का एक दोष है—प्रमाणातिक्रान्त। मुनि प्रमाण से अतिरिक्त भोजन करता है तो वह इस दोष से स्पृष्ट होता है। आयुर्वेद के अनुसार 'अधिक खाना' भोजन का एक दोष है। अधिक खाने वाला अनायास ही अनेक रोगों को निमंत्रित कर लेता है।

भोजन के दो प्रकार हैं—हलका या लघु भोजन और गरिष्ठ भोजन। लघु भोजन वायु प्रधान होता है। उसमें अग्नि तत्त्व अधिक होता है, इसलिए वह सुपाच्य होता है। गरिष्ठ भोजन या भारी भोजन जल-प्रधान होता है। वह

न वायुप्रधान होता है और न अग्नि-तत्त्व प्रधान। इसलिए वह दुष्पाच्य होता है। अधिक खाने पर यह विकृतियां पैदा करता है। राजस्थान प्रान्त के कुछेक लोग बहुत मिठाइयां खाते हैं। भोजन और मिठाई पर्यायवाची जैसे बन गए हैं। एक भी आतिथ्य नहीं जहां मिठाई का भोजन न हो। बिना मिठाई के निमंत्रण ही कैसे? वे अत्यधिक मिठाई खाते, दूध, दही-मक्खन खाते। सारी चीजें गरिष्ठ ही गरिष्ठ। परिणाम यह हुआ कि वे लोग जब तीस-चालीस वर्ष के होते तो बूढ़े जैसे लगने लग जाते, बुढ़ापे का अनुभव होने लग जाता। शक्तिहीनता के वे शिकार हो जाते। चालीस वर्ष के बाद किसी की मृत्यु होती तो माना जाता कि कोई बात नहीं, अवस्था-प्राप्त था। आज यह मान्यता बदल चुकी है। आज चालीस से सत्तर वर्ष तक का आदमी युवा माना जाता है। गरिष्ठ भोजन आदमी को बूढ़ा बना देता है। गरिष्ठ भोजन देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट होता है, पर उसमें अग्नि-तत्त्व पर्याप्त मात्रा में नहीं होते, अतः वह पूरा पचता नहीं। अर्धपक्व भोजन विकृति पैदा करता है और असमय में ही आदमी काल-कवलित हो जाता है।

मात्रा का विवेक

भोजन-विज्ञान में मात्रा का विवेक बहुत जरूरी है। हलका या लघु भोजन की मात्रा भी अधिक नहीं चाहिए। गरिष्ठ भोजन की मात्रा तो और भी कम होनी चाहिए। पर सामाजिक व्यवहार भी अजीब होता है। दस-बीस मित्र मिलते हैं। एक साथ भोजन करने बैठते हैं तो फिर मात्रा का विवेक रहता ही नहीं। एक दूसरे को कौर देने का दौर चलता है और उदरकूप जो भर चुका है, उसको टूस-टूसकर भरा जाता है। जब आदमी गले तक भर जाता है तब खाने से हाथ खींचता है। यह इसलिए चलता है कि आदमी को आहार की मात्रा का पूरा ज्ञान नहीं है। हम जाने-अनजाने इस प्रक्रिया से अपने प्रिय व्यक्ति के प्रति भी इतनी शत्रुता का व्यवहार कर देते हैं कि जितना शत्रु के साथ भी नहीं करते। शत्रु इतना अनिष्ट कर ही नहीं पाता, क्योंकि उसकी प्रत्येक क्रिया को संदेह की दृष्टि से ही देखा जाता है। परन्तु मित्र या प्रिय व्यक्ति की क्रिया में यह संदेह नहीं होता, सब कुछ अच्छा लगता है। वह एक ओर बीमारी को निमंत्रण देता है तो दूसरी ओर प्रियता की अनुभूति होती है। वह सोचता है, आज जैसा स्वागत पहले कभी नहीं हुआ। बड़ा मजा आया। कितना स्वादिष्ट था भोजन! कितनी बड़ी थी सामग्री! वह भूल जाता है कि भोजन के माध्यम से उसने अनेक बीमारियों को निमंत्रण दिया है। मात्रा-विवेक बहुत आवश्यक होता है।

भोजन हो सात्त्विक

तीसरी बात है कि भोजन सात्त्विक होना चाहिए। यह तथ्य गहरे अनुसंधान के बाद प्रकट हुआ है। जो भोजन चित्तवृत्तियों में विकृति पैदा न करे, वह होता है सात्त्विक भोजन। जिस भोजन से शुक्ल लेश्या के विचार जगें, पद्म लेश्या के प्रकम्पन उठें, वह होता है सात्त्विक भोजन। जिस भोजन के खा लेने पर मन दूषित हो, बुरे विचार आएँ, उत्तेजना और वासना उभरे, क्रोध और लालच की भावना उग्र हो, हिंसा के भाव जगें, वह भोजन तामसिक या राजसिक होता है। कृष्ण, नील और कापोत लेश्या को उभारने वाला भोजन सात्त्विक नहीं होता। वह होता है

तामसिक। वह शरीर के नीचे के केन्द्रों को सक्रिय करता है। सात्त्विक भोजन शरीर के नाभि के ऊपर के केन्द्रों को जगाता है, सक्रिय करता है। इस भोजन से आनंद-केन्द्र, विशुद्धि-केन्द्र, ज्ञान-केन्द्र, दर्शन-केन्द्र और ज्योति-केन्द्र सक्रिय होते हैं। भोजन के साथ शरीर का, चैतन्य-केन्द्र का, वृत्तियों का कितना गहरा सम्बन्ध है, इसे जानना आवश्यक है।

रूपान्तरण के लिए आहार-शुद्धि का अभ्यास आवश्यक है। हित आहार, मित आहार और सात्त्विक आहार के अभ्यास से रूपान्तरण घटित होने लगता है। जैसे-जैसे यह अभ्यास बढ़ता है, शरीर की विद्युत् बदलती है, रसायन बदलते हैं, चैतन्य-केन्द्रों की सक्रियता बढ़ती है। जो केन्द्र सोने योग्य होते हैं, वे सो जाते हैं और जो जागने योग्य होते हैं, वे जाग जाते हैं। नीचे के केन्द्र सो जाते हैं, ऊपर के केन्द्र जाग जाते हैं। जिस दिन यह जागृति होती है, उस दिन नई दुनिया का अनुभव होता है, नये जीवन की अनुभूति होती है और तब आदमी इस स्वर में कह सकता है—जो सम्पदा आज तक नहीं मिली वह आज हस्तगत हो गई, जो जागृति आज तक नहीं आई, वह आज घटित हो गई।

10. ध्यान और आहार

हम शक्ति का विकास, आनन्द का विकास और चेतना का विकास चाहते हैं। विकास की चाह एक बात है और विकास की प्रक्रिया में से गुजरना दूसरी बात। जो व्यक्ति कोरा चाहता है और प्रक्रिया में से नहीं गुजरता, उसकी चाह पूरी नहीं होती। चाह को पूरा करने के लिए आवश्यक होता है— एक साधन का उपयोग, वह है ध्यान।

जीवनी-शक्ति

ध्यान चित्त की वह निर्मल अवस्था है जहां कोरी चेतना जागृत होती है, और सारी बातें छूट जाती हैं। किन्तु उस निर्मल चेतना को उपलब्ध करने के लिए अनेक रास्तों से चलना पड़ता है। उनमें एक मार्ग है—आहार। पहुंचना ध्यान की गहराई में है, चेतना की उच्च भूमिका में है, पर आहार पर विचार करना बहुत अपेक्षित है। आहार को हमने स्थूल अर्थ में समझा है। आहार बहुत व्यापक है। भोजन बहुत छोटी चीज है। आहार के बिना शरीर का निर्माण नहीं होता।

जीवन की छह शक्तियां हैं—

1. आहार पर्याप्ति
2. शरीर पर्याप्ति
3. इन्द्रिय पर्याप्ति
4. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति
5. भाषा पर्याप्ति
6. मन पर्याप्ति।

पहली शक्ति है—आहार पर्याप्ति, फिर शरीर का निर्माण होता है, इन्द्रियों का निर्माण होता है, श्वासोच्छ्वास की शक्ति का निर्माण होता है, भाषा की शक्ति का निर्माण होता है, मन की शक्ति का निर्माण होता है।

पहली आवश्यकता

जीवन की सबसे पहली आवश्यकता है—आहार। आहार का अर्थ होता है—बाहर से लेना। पौद्गलिक जगत् की ऐसी व्यवस्था है कि बाहर से लेना होता है। केवल प्राणी ही नहीं, अचेतन वस्तुएं भी लेती हैं। यह हमारे सामने भीत है। ऐसा लगता है कि यह तो स्थायी चीज है। किन्तु सूक्ष्मता में जाएं तो यह भीत निरन्तर अनन्त परमाणुओं को ले रही है और अनन्त परमाणुओं को छोड़ रही है।

प्रत्येक पदार्थ का, चाहे वह चेतन हो या अचेतन, यह नियम बना हुआ है कि नया लेना और पुराने का विसर्जन करना—पुराने को छोड़ते चले जाना। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। प्राणी आहार लेता है और लेता रहेगा। एक

क्षण भी ऐसा नहीं जाता कि कोई व्यक्ति निराहार हो सके। जब से गर्भाधान हुआ, तब से आहार कर रहा है। एक प्राणी मरने के बाद दूसरे जन्म में जाता है, बीच की स्थिति को कहते हैं अन्तराल गति। उस गति में भी पूरा अनाहार नहीं होता। वहां भी कभी-कभी लम्बा समय होता है तो बीच में आहार ले लेता है।

आहार के तीन प्रकार

अनाहार होना, यह शरीर के लिए सम्भव नहीं है। आहार हम शरीर के प्रत्येक कण से लेते हैं। जीवन के प्रारम्भ से जो लेते हैं उसकी संज्ञा है—ओज आहार। यह हमारी जीवनी-शक्ति है। वह जब तक रहती है, आदमी जिन्दा रहता है। वह चुक जाती है तो आदमी मर जाता है।

दूसरा होता है रोम आहार। हर रोम से हम आहार लेते हैं। पुराने जमाने के लोग एक बार खाते थे, बाद में अनेक बार खाने लगे। किन्तु रोम आहार हम प्रतिक्षण लेते हैं। उस आहार में कठिनाई होती है तो सचमुच कठिनाई होती है, दम घुटने लग जाता है। आदमी जब बहुत ऊंचा जाता है तो ऑक्सीजन नहीं मिलती और दम घुटने लगता है। इसलिए ऊपर या नीचे गहराई में जाने वाले आक्सीजन की व्यवस्था करके जाते हैं।

तीसरा होता है—कवल आहार। जो हम कौर से खाते हैं वह हमारा भोजन होता है।

प्रत्येक इन्द्रिय का अपना आहार होता है। आंख से देखते हैं—आंख का आहार। कान से सुनते हैं—कान का आहार। मन से विकल्प करते हैं—मन का आहार। भाषा का आहार करते हैं, फिर बोलते हैं। हमारी एक भी वाणी नहीं होती जो आहार के बिना चल सके। प्रत्येक शब्द का पहले आहार, फिर परिणमन, फिर उसका विसर्जन—यह बराबर चलता है। वाणी को आहार चाहिए, चिन्तन और मनन को आहार चाहिए।

जरूरी है विवेक संपन्नता

प्रश्न होता है—जब आहार अनिवार्य है तो किस प्रकार का आहार लें? एक आहार हमारे विचार को, हमारी भाषा और मन को विकृत बनाता है। एक आहार हमारे इस तन्त्र को स्वस्थ बनाता है। जिस व्यक्ति ने आहार को समझने का प्रयत्न नहीं किया और ध्यान करता है तो ठीक वही बात होती है कि इधर अन्धी बुढ़िया चक्की में आटा पीसती जा रही है, उधर कुत्ता खाता जा रहा है। हमारी दृष्टि-सम्पन्नता और विवेक-सम्पन्नता होनी चाहिए।

हमें मन के, इन्द्रियों के, शरीर के आहार पर विचार करना होगा और उसका एक हिस्सा होगा—हमारा भोजन। केवल भोजन पर ही सारा विचार करेंगे तो बात ठीक बैठेगी नहीं। एक आदमी भोजन का बहुत संयम करता है, सादा भोजन करता है पर आंख का बहुत लोलुप, स्पर्श का बड़ा लोलुप, वाणी का कोई संयम नहीं। जीभ से जुड़ा हुआ है भोजन का स्वाद और जीभ से जुड़ी हुई है हमारी वाणी। एक पहलू का पूरा ध्यान रखता है—सात्विक भोजन करता है किन्तु सात्विक भोजन में भी कोई चीज मन के अनुकूल नहीं बनी तो गुस्से में आ जाता है, गालियां देने लगता है तो कहां हुआ भोजन का विवेक!

आहार का विवेक बहुत व्यापक अर्थ में हम स्वीकार करें तभी बात बनेगी, अन्यथा बात अधूरी रह जायेगी। ध्यान करने वाला व्यक्ति स्वाद का संयम करता है, क्योंकि चटपटी, मीठी और बहुत सारी चीजें खाने को नहीं मिलतीं, किन्तु इतने मात्र से आहार की समस्या हल हो जाती है और ध्यान में आपको बल मिल जाता है, यह मानेंगे तो बड़ी भ्रांति होगी।

पहली बात है—ध्यान साधक ठूस-ठूसकर नहीं खाता। ठूस-ठूसकर खाने वाला व्यक्ति कभी साधना नहीं कर सकता। अध्यात्म साधना तो क्या, अपने शरीर की साधना भी नहीं कर सकता। खा लेता है, घंटा भर बाद जब प्यास लगती है तो पानी पीता है और वायु बनती है, तो फिर ऐसा होता है कि कोई दूसरा आकर उठायें तो ठीक अन्यथा हिल-डुल भी नहीं सकता। बड़ी मुसीबत पैदा हो जाती है। फिर चाहिए—पत्थर हजम चूर्ण या वे गोलियां जो भोजन को पचा सकें।

बचें अहितकर भोजन से

दूसरी बात है—हितकर भोजन करता है। स्वाद की दृष्टि से नहीं खाता। जो अनुकूल होता है, वही खाता है। हित की व्याख्या बहुत लम्बी-चौड़ी है। ऋतु के अनुसार, स्वास्थ्य के अनुसार हितकर होता है और व्यक्तिविशेष के कारण भी हितकर हो सकता है। सर्दी का मौसम और खूब गरम चीजें खायी जाएं। हितकर हो सकती हैं किन्तु गर्मी के मौसम में गर्म चीज अहितकर हो जायेगी। गर्म चीज खाना, यानी जैसे चाय पीना। चाय का एक दोष यह भी है कि चाय पीने वाला ठंडी चाय नहीं पीता। इतनी गर्म पीता है कि कई लोग उस बर्तन को हाथ में नहीं पकड़ पाते, पर मुंह में डाल लेते हैं। बेचारी आंतों का क्या होगा? आंतों, आमाशय और पक्वाशय के वाणी होती तो आंतें सबसे पहले विरोध करतीं कि तुम्हें स्वाद लगता है पर हमारी दशा को देखो, हमारे पर क्या बीत रही है। बहुत गर्म चीज खाना भी अच्छा नहीं, शरीर के तापमान से ठंडी चीज खाना भी ठीक नहीं। बच्चा छोटा होता है तो बर्फ खाना सीख लेता है, जिससे उसका गला तथा आंतें बिगड़ जाती हैं। मां-बाप सोचते हैं—बच्चा बहुत बीमार रहने लग गया, कमजोर रहने लग गया। टांसिल बहुत बढ़ गये। गला बहुत खराब हो गया। पेट बहुत खराब, दांत बहुत जल्दी गिर गए। आंत और दांत—ये दोनों ठंडी चीज से बहुत जल्दी खराब होते हैं। यह सारा अहितकर भोजन से होता है।

ऋतु भोजन

हितकर और मित भोजन के साथ ऋतु भोजन नहीं होता है तो पूरी बात नहीं बनती। ऋतु भोजन का संबंध जुड़ता है हमारी सूक्ष्म भावनाओं से। ऋतु भोजन का सम्बन्ध जुड़ता है हमारी मानसिक विचारधारा के साथ। भोजन कमाते, पैदा करते या बनाते समय किस प्रकार की विचारधारा है, सबका प्रभाव भोजन पर पड़ता है। एक व्यक्ति ने बड़ी क्रूरता के साथ भोजन का अर्जन किया। एक व्यक्ति ने बड़ी क्रूरता के साथ भोजन बनाया। खाने वाला बेचारा उसे अच्छे भाव से ही खा रहा है, किन्तु उस भोजन में क्रूरता के भाव आ रहे हैं तो कोमल व्यक्ति को भी वह क्रूर

बना देगा। ऐसा भोजन कितना अनर्थ कर देता है! व्यक्ति के मन में चोरी की भावना जाग जाती है। एक संन्यासी के मन में अपराध की भावना जाग गयी। ऐसा क्यों हुआ? कारण खोजा तो पता चला कि जो भोजन मिला, सारा उसी का दोष है। जब तक वह भोजन रहा, तब तक अपराध भावना रही। जब भोजन निकला तब अपराध भावना भी साथ में समाप्त हो गयी।

कितना महत्त्व है ऋतभुक् का

क्रोध करने वाला व्यक्ति स्वयं ही दुःखी नहीं होता। वह अपने क्रोध के परमाणुओं को बिखेरता है तो आसपास का वातावरण भी दुःखी हो जाता है। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध—इन सारे परमाणुओं का बड़ा प्रभाव होता है। हमारे चारों ओर आभामण्डल होता है। उसमें से हमारी भावधारा के परमाणु निकलते हैं, दूर तक फैलते हैं। अच्छी भावधारा तो अच्छे परमाणु, बुरी भावधारा तो बुरे परमाणु। दोनों प्रकार के परमाणु निकलते हैं। एक सन्त के पास जाकर बैठते हैं तो मन आनन्द से भर जाता है। ऐसा लगता है कि बिना कारण प्रसन्नता बरस रही है। किसी क्रोधी, ईर्ष्यालु व्यक्ति के पास जाकर बैठते हैं तो मन खिन्न हो जाता है। यह परमाणुओं का प्रभाव होता है। हमारा संवेदनशील मन, संवेदनशील चेतना इतनी सूक्ष्मता और इतनी दूरी से उन्हें पकड़ लेती है कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

इस सारे सन्दर्भ में 'ऋतभुक्' का कितना महत्त्व है। ऋतभुक् यानी वह भोजन जिसके साथ सचाई जुड़ी हुई है, जिसके साथ पवित्रता और चेतना की निर्मलता जुड़ी हुई है, इसलिए भोजन बनाने वाला, भोजन पैदा करने वाला हर कोई व्यक्ति नहीं चाहिए। यह ऋतभुक् का सिद्धांत बहुत महत्त्वपूर्ण है कि भोजन के समय हमारे चित्त की प्रसन्नता हो।

भोजन और भावक्रिया

भोजन के समय हम भावक्रिया को न भूलें। पूरा एक घंटा आप ध्यान की साधना में लगाते हैं, विधिवत् ध्यान का प्रयोग करते हैं और भावक्रिया का दिन में प्रयोग नहीं करते हैं तो साधना पूरी नहीं होती। भावक्रिया का अर्थ है—जिस समय जो काम करें, उसमें तन्मय बने रहें। जिस समय जो काम करना है वही काम करें। भोजन करना है तो केवल भोजन ही करें, और कुछ नहीं करें। मैंने कई बार सोचा था कि जब शिविरार्थियों का भोजन हो तो उस समय एक व्यक्ति खड़ा रहे और बार-बार सुझाव देता रहे कि केवल भोजन करें, केवल भोजन करें। ऐसा होता था पुराने जमाने में। चक्रवर्ती भरत ने एक आदमी की नियुक्ति की थी, जो प्रातःकाल उठते ही उन्हें सावधान किया करता था, जागरूकता पैदा करता था। जागरूकता बढ़ाने के लिए भी ऐसे साधनों की बहुत जरूरत है। केवल भोजन करें, केवल भोजन करना सीखें। यह केवल भोजन करना—न मन में कोई क्रोध की भावना, न उत्तेजना, न चिंता, न चिड़चिड़ापन, न राग का भाव, न द्वेष का भाव, केवल भोजन का भाव और आगे-पीछे भी पूरी शुद्धता—अर्जन में भी शुद्धता, निर्माण में भी शुद्धता और खाने में भी शुद्धता—इसका अर्थ है ऋतभुक्।

भोजन स्वास्थ्य देता है और भोजन स्वास्थ्य बिगाड़ता है। भोजन रोग भी पैदा करता है और आरोग्य भी। आरोग्य के लिए ये तीन सूत्र महत्वपूर्ण हैं—मितभुक्, हितभुक् और ऋतभुक्।

आहार-विजय

आहार इसलिए करते हैं कि भूख लगती है। भूख लगती है शरीर को, चेतना को भूख नहीं लगती। शरीर को भूख लगे और चेतना देखती रहे कि किसे भूख लगी है और किसे नहीं? चेतना की वह स्थिति अभिव्यक्त हो जाए, वह ज्योति जल उठे जो भूख को देखे और साथ-साथ अनुभव करे कि मुझे भूख नहीं है, मैं स्वयं तृप्त हूं, सदा तृप्त हूं, कभी अतृप्त होता ही नहीं, कभी भूख लगती ही नहीं। इस स्थिति का अनुभव ही वास्तव में तपस्या है। बहुत बड़ा तप है अपने चैतन्य को इतना जागृत कर देना कि वह देख सके कि भूख किसे लगी है? कौन खा रहा है? मैं तो केवल द्रष्टा हूं, देख रहा हूं।

साधना की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण सूत्र है—आहार-विजय। शरीर शरीर है। वह आहार के बिना नहीं टिकता। ऐसी स्थिति में आहार-विजय कैसे हो सकती है? आहार-विजय हुए बिना तप को नहीं जाना जा सकता। दोनों विरोधी बातें लग रही हैं। ये विरोधी नहीं हैं। इनमें संगति है और वह यह है कि जो व्यक्ति भूख, खाने वाले और चैतन्य के भेद का अनुभव नहीं करता वह आहार की विजय नहीं कर सकता। जो आहार की विजय नहीं कर सकता, उसे भूख निरन्तर सताती है। वह उपवास भी करता है तो उसे निरन्तर भूख की अनुभूति होती रहती है और जब भूख की अनुभूति होती रहती है तब तप की अनुभूति कहां से होगी? कब होगी? कैसे होगी? न खाए और न खाने पर भूख न सताए, यह है आहार की विजय। यह तब संभव है जब यह भेद इतना स्पष्ट अनुभव में आ जाए कि जिसे भूख लग रही है वह कोई दूसरा है और मैं दूसरा हूं। मुझे कभी भूख नहीं सताती। मुझे कभी भूख लगती ही नहीं। यह भेद प्रयोग के द्वारा स्पष्ट हो जाए। हम न खाएं और न खाकर यह प्रयोग करें।

भगवान् महावीर ने तपस्या पर, उपवास पर बहुत बल दिया, संभव है वह तपस्या भी उनका एक प्रयोग हो। वे स्वयं एक प्रयोग कर रहे थे कि न खाने की स्थिति में रहकर चैतन्य का कितना अनुभव किया जा सकता है और भूख के द्वारा होने वाली जो कठिनाई है, भूख के द्वारा जो होने वाली पीड़ा है, उस पीड़ा से अपने अस्तित्व को कितना अलग रखा जा सकता है। तप उनका एक प्रयोग था। केवल न खाना या उपवास कर लेना मात्र ही तपस्या नहीं है। सतत ध्यान और जागरूकता उसके साथ जुड़ी हुई रहे कि मैं नहीं खाता हूं और नहीं खाने से कष्ट होता है, वह कष्ट किसको हो रहा है? उस कष्ट का कौन अनुभव कर रहा है? कष्ट कैसे हो रहा है? इसे स्पष्टता से समझ लेना, यह है तप का एक प्रयोग। इस बात को जो आदमी समझ लेता है वह आहार-विजय कर लेता है।

11. आहार, नींद और जागरण

हमारी जीवन-यात्रा में चार प्रमुख वृत्तियां भाग लेती हैं—आहार, नींद, भय और मैथुन। और भी संज्ञाएं हैं, वृत्तियां हैं, जो चित्त को प्रभावित करती हैं पर ये चार सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाली हैं।

आहार का संबंध जीवन से जुड़ा हुआ है। कोई भी प्राणी आहार के बिना जीवन की यात्रा को नहीं चला सकता। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी भोजन की जरूरत समाप्त हो जाती है। आज भी कुछ लोग ऐसे मिलते हैं जिन्हें खाना जरूरी नहीं लगता। यह एक आश्चर्य माना जाता है किन्तु जब एक रासायनिक परिवर्तन होता है तो आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं रहती। हम जो खाते हैं वे सारे द्रव्य आकाशमण्डल में फैले हुए हैं। इसीलिए एक आहार की संज्ञा रखी गई—मनोभक्षी आहार। जब किसी निमित्त से एक शक्ति जाग जाती है, व्यक्ति मन से आहार को खींच लेता है। यह माना गया—देवता कभी कवल-आहार नहीं करते। वे मनोभक्षी आहार लेते हैं। कुछ साधक भी ऐसे हो जाते हैं जो मनोभक्षी आहार लेने लग जाते हैं, फिर उन्हें कवल-आहार की जरूरत ही नहीं रहती।

दिगम्बर परम्परा और श्वेताम्बर परम्परा में एक विचार-भेद है। श्वेताम्बर मानते हैं कि केवली कवल-आहार करते हैं। दिगम्बर मानते हैं कि वे कवल-आहार नहीं करते। मुझे ऐसा लगता है कि अनेकांत की दृष्टि का उपयोग करें तो यह कोई विवाद का विषय नहीं है। सामान्य आदमी कवल-आहार करते हैं। जिनकी साधना परिपक्व हो जाती है, जरूरी नहीं कि वे कवल-आहार करें ही। न करें, यह भी जरूरी नहीं। साधक के लिए दोनों स्थितियां बन सकती हैं—कवल-आहार की स्थिति भी हो सकती है और कवल-आहार न करें तो भी जीवन की स्थिति चल सकती है।

मनोभक्षी आहार की स्थिति जागने पर बाहर से आहार लेने की आवश्यकता नहीं होती। इतना तो निश्चित ही स्वीकार करना होगा कि वे मुंह से न खाएं पर पूरे शरीर से तो खाना ही होता है। रोम-आहार को नहीं छोड़ा जा सकता और मनोभक्षी आहार की स्थिति भी निर्मित हो सकती है। उसके द्वारा स्थूल द्रव्यों को भी आकाश से खींचा जा सकता है।

मनोभक्षण की प्रक्रिया

आदमी दूध पीता है। पर दूध बनने की एक प्रक्रिया है। दूध का पर्याय अव्यक्त होता है—घास के परमाणुओं में। पशु का जो चारा होता है, वह घास या चारा गाय-भैंस खाती हैं। खाने के बाद एक प्रक्रिया होती है। प्रक्रिया होते-होते दूध का पर्याय प्रकट हो जाता है। जो दूध गाय के स्तन से निकलता है, वह आकाश में भी भरा हुआ

है। जो चीनी ईख में से निकलती है वह चीनी आकाशमण्डल में भी भरी हुई है। आकाश एक इतना बड़ा खजाना है, इतना बड़ा रेकार्ड है कि ऐसी कोई चीज नहीं जो आकाशमण्डल में उपलब्ध न हो। यदि आकाशमण्डल में अनुपलब्ध हो तो वह फिर किसी प्रकार से हमें उपलब्ध नहीं हो सकती। जो कुछ पदार्थ आता है वह आकाशमण्डल से ही आता है।

जिन व्यक्तियों में सूक्ष्म को पकड़ने की शक्ति प्रकट हो जाती है उन्हें फिर पूरी प्रक्रिया के बाद स्थूल वस्तु को लेने की जरूरत नहीं होती, वस्तु को आकाश में से ही ले लेते हैं और उस पर्याय में उसे बदल देते हैं। यह मनोभक्षण की प्रक्रिया है।

आहार शुद्धि का पहला चरण

जो लोग मनोभक्षी आहार लेते हैं उन्हें बहुत शुद्ध आहार मिलता है। उसमें विकृतियां नहीं आतीं। न अर्जन की विकृति, न उत्पादन की विकृति और न खाने की विकृति। किन्तु जो लोग कवल-आहार लेते हैं, कौर से खाते हैं, उन्हें इन तीन विकृतियों पर ध्यान देना जरूरी होता है। बहुत लम्बी चर्चा में हम न जायें, केवल एक बात पर ध्यान केन्द्रित करें कि अर्जन में क्रूरता न हो। अगर एक बात भी आ जाती है तो हमारी करुणा जाग जाती है, मृदुता का भाव जाग जाता है। दूसरों को सताने वाली निर्दयता और क्रूरता यदि समाप्त होती है तो आहार की शुद्धि का पहला चरण सफल हो जाता है।

जो व्यक्ति दूसरों के प्रति क्रूर व्यवहार करता है, फिर चाहे वह अन्न खाता है, शाकाहारी होता है किन्तु वह शाकाहार भी बहुत दुष्प्रभाव डालने वाला बन जाता है। मांसाहार के निषेध के अनेक तर्क हो सकते हैं। उनमें एक प्रबल तर्क यह भी है कि क्रूरता का भाव लाए बिना कोई मांसाहारी नहीं बन सकता। व्यक्ति में क्रूरता का भाव छिपा होता है तो वह मांसाहार करता है। दूसरी बात है कि मांसाहार करने वाला केवल मांस को ही नहीं खाता, केवल पशु के मांस में मिलने वाले विटामिन 'ए' को ही नहीं खाता, अपितु पशु में विद्यमान पाशविक संस्कार-पशुता को भी साथ-साथ खाता है। हम इस बात को अस्वीकार नहीं करेंगे कि भोजन के परमाणुओं में अनेक तत्व विद्यमान होते हैं, अनेक संस्कार मिले हुए होते हैं।

संक्रमण संस्कारों का

एक धनी सेठ बीमार हो गया। रक्त चढ़ाने की जरूरत हुई। डॉक्टर रक्त चढ़ाता है तो पहले ग्रुप मिलाता है। किस ग्रुप का रक्त है? ठीक मिला या नहीं? एक कंजूस आदमी का रक्त ठीक मिला, चढ़ाया गया। सेठ बड़ा उदार था। अपने मुनीम को कहा—'उसको तीन हजार रुपये दे दो।' दूसरी बार फिर खून चढ़ाने की जरूरत हुई। उसी कंजूस का रक्त। सेठ ने कहा—'उसे सौ रुपये दे दो।' तीसरी बार जरूरत हुई तो सेठ ने एक कागज लिया और उस पर लिखा—साधुवाद! धन्यवाद!

ऐसा क्यों हुआ? सेठ तो उदार था किन्तु जिसका रक्त चढ़ाया जा रहा था, वह कंजूस था। उसका इतना प्रभाव हुआ कि जब तक रक्त का पूरा प्रभाव नहीं हुआ तो तीन हजार रुपये दिये, थोड़ा प्रभाव हुआ तो सौ रुपये और पूरा प्रभाव हुआ तो केवल धन्यवाद दिया। चाहे रक्त हो, कोई दूसरी वस्तु हो, हमारे शरीर में बाहर के जो परमाणु प्रवेश पाते हैं, वे परमाणु जिस प्रकार के होते हैं, अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहते।

आजकल प्रत्यारोपण बहुत होता है। एक व्यक्ति में दूसरे व्यक्ति के अंग का प्रत्यारोपण किया जाता है। एक व्यंग्य मानें किन्तु बहुत महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। एक आदमी के मस्तिष्क का प्रत्यारोपण किया गया। वह स्वस्थ हो गया। बहुत बोलने लगा, लम्बी-चौड़ी बातें बघारने लगा। पत्नी बड़ी परेशान हो गई। डॉक्टर के पास गई, बोली—‘आपने क्या कर दिया? मेरा पति तो बहुत शांत था। मौन रहने वाला था। किन्तु जब से आपने ऑपरेशन किया, प्रत्यारोपण किया, तब से सारे दिन बकवास करता है। सब परेशान हो गए हैं।’ डॉक्टर ने अपना कान पकड़ा, बोला—‘तुम ठीक कहती हो। यह किसी राजनेता का मस्तिष्क था इसलिए सारी गड़बड़ हो रही है।’

कितने प्रभावित होते हैं हम

आहार के विषय को हम इस पूरे संदर्भ के साथ समझें कि हम कितने प्रभावित होते हैं हमारे शरीर में प्रवेश पाने वाले पदार्थों से। किसी दुर्गन्ध के पास से आप गुजरते हैं तो नाक आहार करता है। केवल मुंह ही आहार नहीं करता, हमारी घ्राणेन्द्रियां भी आहार करती हैं। दुर्गन्ध के परमाणु जाते हैं और तत्काल आपकी भ्रुकुटी तन जाती हैं, दोनों नथुने सिकुड़ जाते हैं। किसी परिमल के पास से गुजरते हैं, सुवास आती है, सुगन्ध के परमाणु चारों ओर बिखरते हैं तो दिल और दिमाग दोनों प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि प्रसन्नता से आप भर गए। इस प्रभाव और संक्रमण की स्थिति में रहने वाला व्यक्ति आहार के बारे में ध्यान नहीं देगा तो उसका परिणाम भुगते बिना नहीं रहेगा।

साधना का एक महत्वपूर्ण सूत्र है—आहार का विवेक। जो व्यक्ति बदलना चाहता है, अपनी आदतों को बदलना चाहता है, प्रभाव को बदलना चाहता है, अपने व्यवहार को बदलना चाहता है उसे आहार को भी बदलना पड़ेगा। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि आप ध्यान करें, संयम की साधना करें और जो चाहें सो खाते चले जाएं, जैसे चाहें वैसे खाते चले जाएं और जब चाहें तब खाते चले जाएं।

जरूरी है सम्यक् पोषण

पहले मानसशास्त्री और मानसचिकित्सक मानते थे कि मानसिक विकृतियों के कारण, मस्तिष्कीय दुर्बलता के कारण अनेक मानसिक बीमारियां पैदा होती हैं। किन्तु अब नयी खोजों से यह पता चला है कि अपोषण और कुपोषण—ये दोनों मानसिक बीमारियों के लिए काफी जिम्मेदार हैं। पूरा पोषण नहीं मिलता है तो स्नायविक दुर्बलता होती है, मानसिक रोग पैदा होते हैं। कुपोषण से भी मानसिक रोग पैदा होते हैं। भोजन का मतलब कोरा पेट भरना ही नहीं है। कोरी रोटियां ही रोटियां खा लीं, पेट तो भर जाएगा किन्तु कुपोषण हो जाएगा, ठीक पोषण नहीं होगा।

शरीर को जिन तत्वों के संतुलन की जरूरत है, जो तत्व शरीर में पूरा कार्य करते हैं, उस पूरे यन्त्र को संचालित करने के लिए कार्बोहाइड्रेट भी चाहिए, चिकनाई भी चाहिए, लवण भी चाहिए, क्षार भी चाहिए, विटामिन्स भी चाहिए। अगर यह सब नहीं मिलता है तो उससे संबंधित अंग निकम्मा हो जाता है। शरीर का श्रम करने वाला व्यक्ति यदि अन्न ज्यादा खाता है तो कठिनाई पैदा नहीं होती। किन्तु केवल अन्न से मानसिक विकास की स्थिति पूरी नहीं बनती। मानसिक काम करने वाला, बौद्धिक श्रम करने वाला कोरे अन्न पर रहे और उसे स्वस्थ पोषण न मिले तो मानसिक अवस्था गड़बड़ा जाएगी। इसलिए संतुलन यानी न अपोषण और न कुपोषण किन्तु सम्यक् पोषण। इस स्थिति में आहार पर अनेक कोणों से विचार करना जरूरी होता है।

प्रभाव परमाणुओं का

हम इस बात को न भूलें कि आहार एक अलग वस्तु है और भोजन एक अलग वस्तु है। आहार बहुत व्यापक है और भोजन आहार का एक अंश है। आहार का अर्थ है कि हम बाहर से जो कुछ भी लें वह विवेकपूर्वक लें। मुझे तो कई बार बहुत आश्चर्य होता है कि आजकल वातावरण ही कुछ अजीब-सा हो गया। आज की सभ्यता या संस्कृति भी कुछ ऐसी हो गई है कि सीधे होटल में जाते हैं। मैं खाने की चर्चा नहीं करूंगा, दूसरी बात कहना चाहता हूं। बिस्तर की जरूरत नहीं, कपड़ों की जरूरत नहीं, कुछ भी पास में रखने की जरूरत नहीं। सब कुछ किराये पर मिलता है। पहनने के कपड़े भी किराये पर मिल जायेंगे। यह बात तो ठीक है कि यात्रा में बहुत सुविधा हो गई पर जिस बिस्तर पर कल कोई आदमी सोया था या जिस कपड़े को किसी आदमी ने ओढ़ा था, आज आप उस बिछौने पर सोते हैं, उस कपड़े को ओढ़ते हैं तो क्या कल जिस व्यक्ति ने उन कपड़ों का उपयोग किया था उसके परमाणु भी उन कपड़ों के साथ जुड़े हुए नहीं हैं? क्या वे परमाणु आपको प्रभावित नहीं करेंगे? महर्षि नारद जहां भी जाते, अपना आसन साथ में रखते, किसी दूसरे के आसन पर नहीं बैठते। दूसरे का कपड़ा नहीं ओढ़ते, दूसरे का कपड़ा नहीं पहनते। ये कपड़े तो बहुत खतरनाक होते हैं। इनमें बहुत सारे परमाणु भरे हुए होते हैं। एक चिकित्सा की पद्धति चलती है कि रोगी को वैद्य के पास जाने की जरूरत नहीं। वह कपड़े को देखेगा, उसी के आधार पर उसका निदान करेगा और दवा भी दे देगा। जब कपड़े में इतने परमाणु लगे हुए हैं तो यह भी क्या आहार नहीं? आहार में तो यह भी आ जाता है। दूसरे का कपड़ा ओढ़ना, दूसरे का कपड़ा पहनना—यह भी आहार के साथ जुड़ा हुआ प्रश्न है। साधना करने वाले व्यक्ति को इससे सावधान रहना पड़ता है—किसका कपड़ा है, किसके ओढ़ने का है और किसके बिछावने का है।

विद्यमान रहते हैं परमाणु

जैन साहित्य में इस विषय की बहुत सूक्ष्म चर्चा उपलब्ध होती है—परमाणुओं का किस प्रकार संक्रमण होता है और किस प्रकार प्रभाव होता है। कोई मुनि किसी स्थान पर बैठता है तो यह विधान है कि स्थान का प्रमार्जन किए बिना न बैठे। यदि कोई स्त्री बैठी है और साधु को वहां बैठना है तो अन्तर्मुहूर्त का अन्तराल किए बिना न बैठे। आज

ये बातें बहुत स्पष्ट हो गईं। आज की फोटोग्राफी ने इन तथ्यों को इतना स्पष्ट कर दिया कि इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहा। आज बहुत संवेदनशील कैमरे बन गए हैं। इस परिषद् में इतने लोग बैठे हैं। यहां से चले जाएं, दो घंटे बाद भी इस पूरी परिषद् का फोटो लिया जा सकता है। आदमी तो चला गया पर आदमी के परमाणु तो वहीं विद्यमान हैं। वे तदाकार रहते हैं, उसी आकार में रहते हैं। हमारा यह आकाशमण्डल इतना विशाल है, उसमें इतना कुछ भरा पड़ा है कि पूरा तो नहीं, एक अणु का भी पता लग जाए तो भी आश्चर्य से भर जाए।

आहार, भोजन और जीभ

आहार की चर्चा में एक बात और चर्चित करना चाहता हूं। आहार, भोजन और जीभ का बहुत गहरा संबंध है। जिस व्यक्ति ने जीभ को अनुशासित नहीं किया, वह व्यक्ति वासना को अनुशासित नहीं कर सकता। बहुत वर्ष पहले मेरे मन में भी प्रश्न था कि कहां का संबंध कहां जोड़ा। आहार और काम वासना का क्या संबंध है? किन्तु जैसे-जैसे इस विषय की गहराई में पहुंचा, मुझे लगा कि सत्य कभी खोज लिया जाता है, सत्य हमारे सामने रह भी जाता है, पर व्याख्या खो जाती है। ताला रह जाता है, चाबियां खो जाती हैं। चाबियां नहीं होती हैं तो ताले भी निकम्मे हो जाते हैं। यही हुआ। हमारे शरीर का एक केन्द्र है, जिसे हठयोग की भाषा में स्वाधिष्ठान चक्र कहा जाता है। प्रेक्षाध्यान पद्धति में हम उसे स्वास्थ्य केन्द्र कहते हैं। इसके साथ दोनों बातें जुड़ी हुई हैं—काम वासना और भोजन की वासना। दोनों का संबंध उस स्वास्थ्य केन्द्र या स्वाधिष्ठान केन्द्र से है। स्वाधिष्ठान चक्र जितना सक्रिय होगा, भोजन की लोलुपता उतनी ही अधिक होगी। स्वाधिष्ठान चक्र जितना सक्रिय होगा, काम की वासना उतनी ही प्रबल होगी। वह जैसे-जैसे निष्क्रिय होगा, वैसे-वैसे भोजन की लोलुपता भी मिटेगी और काम वासना भी कम होती जाएगी।

जैन आगमों में स्थान-स्थान पर भोजन की लोलुपता पर बहुत प्रहार किया गया है, भोजन-संयम पर बहुत बल दिया गया है। आप स्वास्थ्य केन्द्र को निष्क्रिय करने के लिए उस पर ध्यान करें, आपकी भोजन और काम-वासना—दोनों की लोलुपता कम होगी। यदि आप में शक्ति है, बल है तो आप स्वास्थ्य केन्द्र पर ध्यान बिलकुल न करें। भोजन और मन में उठने वाली तरंगों का संयम करें, स्वास्थ्य केन्द्र अपने आप निष्क्रिय हो जाएगा। किसी भी रास्ते से चलें किन्तु यह रास्ता जरा कठिन है और स्वास्थ्य केन्द्र को निष्क्रिय करना, यह रास्ता जरा सरल है। सरलता और कठिनता की दृष्टि से चुनाव किया जा सकता है। दोनों प्रक्रियाएं हैं। चाहे इधर से चलें, चाहे उधर से चलें, किन्तु लक्ष्य-बिन्दु पर जरूर पहुंच जायेंगे।

नींद और जागरण

भोजन की लम्बी चर्चा के बाद अब नींद पर भी थोड़ी-सी चर्चा कर लें। बड़ा जटिल प्रश्न है नींद का। इसे बुलाने की जरूरत नहीं होती, बिना बुलाए ही आ जाती है। रसोई बनाते शायद नींद नहीं आती होगी, कपड़ों की सिलाई करते या गपें हांकते समय शायद नींद नहीं आती होगी, सिनेमा देखते समय भी शायद नींद नहीं आती होगी,

किन्तु ध्यान में बैठते ही नींद शुरू हो जाती है। जैसे ध्यान में चित्त को निर्मल बनाने का अवसर है उतना ही अवसर नींद को लेने का है। दोनों का समान अवसर है। यह नींद के लिए बहुत अच्छा अवसर है। ऐसे सोते समय भी पूरी नींद नहीं आती होगी। जिन लोगों को नींद नहीं आती है उन्हें नींद की गोलियां लेने की जरूरत नहीं, कायोत्सर्ग की स्थिति में बैठ जाएं तो अपने आप काम हो जाएगा। किन्तु कठिनाई तब होती है जब ध्यान में नींद सबसे पहले अपना आसन बिछा देती है।

नींद और जागरण—दोनों साथ जुड़े हुए हैं। खाने के बारे में कोई नियम नहीं बनाया जाता। हर व्यक्ति की भूख अलग-अलग होती है। इसी प्रकार नींद के विषय में भी नियम नहीं बनता। बन भी कैसे सकता है? सबके अपने-अपने नियम हैं।

एक व्यक्ति दो-चार घंटे नींद लेकर पूरी शक्ति और ताजगी का अनुभव करता है। एक व्यक्ति सात-आठ घंटे सो जाता है तो भी ऊंगथा ही रहता है। आचार्यश्री तुलसी बारह बजे सोते और चार बजे उठ जाते। आचार्यश्री कहते कि नींद जमा नहीं रहती। यदि मैं बारह बजे सोता हूं तो मुझे लगता है कि नींद जमा रहती है। अलग-अलग स्थिति होती है। बहुत कम सोते थे आचार्यवर। फिर भी वे कभी महसूस नहीं करते कि भार है सिर पर। मुझे अनुभव होता है कि भार है और इस नींद की कमी को पूरा किया जाए।

सर्वोत्तम है ब्रह्म मुहूर्त में उठना

नींद के बारे में कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता किन्तु एक बात बहुत महत्वपूर्ण है साधना की दृष्टि से। उस पर साधना करने वाले व्यक्ति को ध्यान देना जरूरी है। इसलिए जरूरी है कि सारी संस्कृति और सभ्यता बदलती जा रही है। आज आठ-नौ बजे उठने की संस्कृति पनप रही है। सूर्योदय की बात छोड़ दें। कभी कहा गया था कि चार बजे उठना, ब्रह्म मुहूर्त में उठना सर्वोत्तम है। कुछ समय बाद तो शायद यह एक कल्पना की बात हो जाएगी। जैसे राजा लोग कल्पना की बात बन गए वैसे ही यह चार बजे उठने की बात भी शायद कल्पना की बात बन जाएगी। हमारा यह कोई आग्रह नहीं कि आठ बजे न उठा जाए। ठीक है, जिनको बहुत व्यवसाय करना है, धन्धा करना है, व्यस्त रहना है, व्यस्तता में जीवन को बिताना है, वे चाहे आठ बजे उठें चाहे नौ बजे उठें, किसको आपत्ति है? किन्तु साधना की दृष्टि से सोचने वाले व्यक्ति को इस बात पर जरूर ध्यान देना होगा कि समय का अपना मूल्य होता है और आज उसकी वैज्ञानिक महत्ता भी है।

शरीरशास्त्रीय दृष्टिकोण

शरीरशास्त्र की दृष्टि से हम इसकी व्याख्या करें। दो प्रकार के स्राव होते हैं—सेराटोनिन और मेलाटोनिन। ये दो हार्मोन्स बहुत महत्वपूर्ण हैं। जो मेलाटोनिन है वह काम पर नियंत्रण करने वाला है। कामवासना को जगाने वाले

हारमोन्स बाहर से आते हैं, एड्रिनल ग्लैंड से आते हैं और उन पर नियंत्रण करने वाला है—मेलाटोनिन। वह तीन या चार बजे तक वृत्ति पर नियंत्रण रखने का काम करता है। चार बजे के बाद प्राण के प्रवाह को भरने लगता है। हम बाहर से, आकाशमण्डल से बहुत प्राण लेते हैं। जब तक मेलाटोनिन अपना काम नहीं करता, प्राण के प्रवाह को हम अपने भीतर ले नहीं सकते। तीन से चार बजे के समय प्राण का प्रवाह मेलाटोनिन के द्वारा पूरे शरीर में भरता है, नयी स्फूर्ति और नयी चेतना जागती है। आकाशमण्डल से आने वाले बहुत सारे विकिरणों के अनुदान का समय होता है तीन और चार बजे का। इसलिए बतलाया गया कि ध्यान के लिए सबसे अच्छा समय है दो बजे के बाद चार बजे तक का। यों पांच बजे तक। यह समय साधना की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस समय जो व्यक्ति उठता है वह अपने आपको प्राण से भरा हुआ अनुभव करता है, स्फूर्ति से भरा हुआ अनुभव करता है। बाद में सोने वाला सोता है तो नींद भी लेता है और उठता है तो आलस्य में भरा हुआ। उठ जाने के बाद आदमी ऐसा अनुभव करता है कि पूरी ताजगी आयी नहीं।

शक्ति के स्रोत

नींद और जागरण पर लम्बी चर्चा न भी करें, यह निश्चित है कि मानसिक बल को बढ़ाने के लिए कम नींद लेना बहुत जरूरी है। बहुत सोना बहुत खराब है। सोने में एक हानि तो प्रत्यक्ष है। सोते समय हमारी श्वास की संख्या बढ़ जाती है, 15 से 18 श्वास हो जाती है। श्वास की संख्या बढ़ना स्वास्थ्य और दीर्घायु, दोनों ही दृष्टि से हानिकारक है। जागना बहुत अच्छा होता है। साधना करते-करते व्यक्ति जागने का इतना अभ्यास कर लेता है कि नींद की स्थिति भी समाप्त हो जाती है। जैसे कुछ व्यक्तियों को भोजन की जरूरत नहीं होती वैसे कुछ व्यक्तियों को नींद लेने की जरूरत नहीं होती। अप्रमत्त मुनि नींद नहीं लेता। जिनकल्पी मुनि बहुत थोड़ी नींद लेते हैं। यथालन्दक अर्थात् निरन्तर अप्रमाद की साधना करने वाला नींद से परे हो जाता है। भगवान् महावीर ने अपने बारह वर्ष के साधनाकाल में केवल कुछ मिनटों की नींद ली। एक घंटा भी नींद नहीं ली। इस स्थिति को भी प्राप्त किया जा सकता है।

आहार और नींद—इन दोनों पर ठीक विचार करें तो ये दोनों मानसिक विकास या मनोबल बढ़ाने में बहुत सहयोगी बनते हैं। हमारे शरीर की जो शक्ति, स्फूर्ति और प्राणवत्ता है वह साधना के द्वारा बढ़ती है तो वह विकास और दूसरे की भलाई के लिए होती है। शक्ति दूसरे स्रोतों से भी प्राप्त की जा सकती है। ऐसे पदार्थ भी हैं, ऐसी औषधियां भी हैं कि जिनके द्वारा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है, किन्तु वह पदार्थों से और दूसरे प्रकारों से बढ़ाई हुई शक्ति पछाड़ने वाली शक्ति होगी। अपने भीतरी स्रोतों से बढ़ाई जाने वाली शक्ति—उठाने वाली शक्ति होगी।

उस शक्ति को जगाएं

एक बच्चे से कहा गया—तुम मल्ल-पहलवान बनो। छोटा बच्चा नहीं था, थोड़ा समझदार हो गया था। उसने पूछा—‘क्यों? किसलिए?’

‘क्योंकि मल्ल बड़ा ताकतवर होता है।’

‘यह तो ठीक बात है, ताकतवर तो मुझे बनना है?’

‘मल्ल में इतनी ताकत होती है कि वह बलवान व्यक्ति को भी पछाड़ देता है।’

‘मैं मल्ल नहीं बनूंगा। मुझे ऐसी ताकत नहीं चाहिए, जो दूसरों को पछाड़ सके। मुझे वह शक्ति चाहिए जो दूसरों को उठा सके।’

शक्ति के दो रूप हो जाते हैं। साधना के द्वारा, अपने भीतरी स्रोतों के द्वारा, आहार और नींद के संयम के द्वारा जो मन की शक्ति बढ़ती है वह दूसरे को उठाने वाली शक्ति होती है, दूसरे का कल्याण और भलाई करने वाली शक्ति होती है। दूसरे-दूसरे स्रोतों से प्राप्त होने वाली शक्ति दूसरे को पछाड़ने वाली शक्ति होती है।

हम स्वयं अपने विवेक से निर्णय करें और ऐसी शक्ति का अर्जन करें जो न केवल स्वयं को उठाए, दूसरों को भी उठा सके।

12. आहार और अनाहार

हमारा विश्वास है कि हम खाते हैं इसलिए जी रहे हैं। यह विश्वास झूठा भी नहीं है। जो नहीं खाता है, वह मर जाता है—यह स्पष्ट है इसलिए यह धारणा स्वाभाविक है कि हम खाते हैं, इसलिए जीते हैं। यह सही है, पर यदि इसे ही पूरा सच मान लिया जाए तो यह मिथ्या धारणा होगी। सच यह है कि हम खाते हैं इसलिए नहीं जीते, किन्तु नहीं खाते हैं, इसलिए जीते हैं। हमने देखा है—अधिक खाने वाले जल्दी मर गए, मर जाते हैं और जिन्होंने कम खाया, रोज नहीं खाया, वे दीर्घायु बन गए। दीर्घायु बनने का एक कारण है—कम खाना, प्रतिदिन न खाना, एकान्तर उपवास करना। जिन-जिन लोगों ने एकान्तर उपवास किए, उन्होंने 10-20 वर्ष की आयु बढ़ा ली।

लोग मानते हैं कि हृदय धड़कता है इसलिए आदमी जीता है, किन्तु इसमें बहुत सचाई नहीं है। हृदय धड़कता है इसलिए आदमी नहीं जीता, किन्तु प्रत्येक धड़कन के बाद हृदय विश्राम लेता है इसलिए आदमी जीता है। यदि वह विश्राम न ले तो वह भी समाप्त हो जाए और साथ-साथ जीवन भी समाप्त हो जाए। विश्राम बहुत महत्वपूर्ण है।

ऐच्छिक : अनैच्छिक

शरीर में दो प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं—ऐच्छिक और अनैच्छिक। हाथ हिलाना—यह ऐच्छिक प्रवृत्ति है। जब चाहा तब हाथ को हिलाया और जब चाहा तब उसे रोक दिया। सामान्यतः जब हम नींद में होते हैं तब हाथ भी स्थिर हो जाते हैं और पैर भी स्थिर हो जाते हैं।

अनैच्छिक प्रवृत्तियां इच्छा-संचालित नहीं होतीं। वे निरन्तर चलती रहती हैं। जैसे श्वास लेना, रक्त का संचरण होना, लिवर का कार्यरत रहना—ये प्रवृत्तियां हमारी इच्छा के नियंत्रण में नहीं हैं। ये नींद में भी चलती रहती हैं।

कवल लेना ऐच्छिक प्रवृत्ति है। चबाना इच्छा पर निर्भर करता है, पर निगलने के बाद की सारी क्रियाएं अनैच्छिक होती हैं।

चबाने के विषय में ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। एक बात—चबाकर खाने वाला अधिक नहीं खा सकता, थोड़े में तृप्त हो जाता है। दूसरी बात—जो चबा-चबाकर खाता है उसे कैंसर की बीमारी नहीं होती। यह नयी खोज है, यथार्थ खोज है। चबाने के साथ जो लार भीतर जाती है, वह कैंसर निरोधक है।

शरीर का जो भी अवयव क्रिया करता है, विश्राम करता है, फिर क्रिया करता है, फिर विश्राम करता है, वह अपना कार्य सही-सही संपादित कर सकता है। यदि लिवर को, पाचक रसों का स्राव करने वाली ग्रंथियों

को, छोटी-बड़ी आंत को विश्राम न मिले तो आदमी असमय में ही बूढ़ा हो जाता है। उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है।

अनशन, विनय और प्रायश्चित्त

हमारे सामने दो पक्ष हैं—अशन और अनशन। अनशन के आधार पर अशन चलता है। यदि अनशन न हो तो अशन चल नहीं सकता। इस तथ्य को समझ कर ही अध्यात्म की चर्चा करने वाले साधकों ने तपस्या का विधान दिया था। तपस्या का एक प्रकार है—अनशन। साधना अनशन से प्रारंभ होती है। यदि अनशन नहीं है तो कायक्लेश नहीं होता। अनशन नहीं है तो प्रायश्चित्त, विनय, स्वाध्याय, ध्यान आदि नहीं हो सकते।

प्रश्न हो सकता है कि अनशन और विनय का क्या संबंध है? अनशन और प्रायश्चित्त का क्या संबंध है? बहुत बार खाने वाला, बहुत खाने वाला इतना खा डालता है कि लिवर और पक्वाशय उसे पचाने में अक्षम हो जाते हैं। उस स्थिति में सड़ांध पैदा होती है। जितनी सड़ांध होती है, उतना ही विष पैदा होता है। वह विष मानसिक बेचैनी पैदा करता है। जो मानसिक रूप से बेचैन है, मानसिक तनाव से ग्रस्त है, वह प्रायश्चित्त नहीं कर सकता। प्रायश्चित्त चित्त की निर्मलता से संभव हो सकता है। जब चित्त ही मलिन है तो प्रायश्चित्त की बात कहां से पैदा होगी? जब मन की मलिनता विद्यमान है, मन की बेचैनी है तब मन का विनय कैसे होगा? निर्मल चित्त वाला व्यक्ति ही विनय कर सकता है। जिसके मन में मलिनता है उसमें उदंडता आती है। वह विनय नहीं कर सकता, ध्यान और स्वाध्याय नहीं कर सकता। यह बहुत स्पष्ट है।

मान्यता आयुर्वेद की

आज का आदमी एक बार नहीं, अनेक बार खाता है। इस पद्धति को डॉक्टरों का समर्थन प्राप्त है। प्राचीन काल में यह मान्यता नहीं थी। उस समय कहा जाता था—

याममध्ये न भुञ्जीत, यामयुग्मं न लंघयेत्।

याममध्ये रसोत्पत्तिः, यामयुग्मे बलक्षयः॥

—आयुर्वेद की मान्यता है कि एक बार खाने के पश्चात् तीन घंटा तक दुबारा नहीं खाना चाहिए। दो प्रहर बीत जाने पर अवश्य ही कुछ खा लेना चाहिए। इसका कारण है कि भोजन के एक प्रहर बीत जाने पर रसोत्पत्ति होती है इसलिए एक प्रहर के बीत जाने पर, दूसरे प्रहर में जरूर खा लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो बल क्षीण होता है।

बार-बार खाने से रस की उत्पत्ति नहीं होती। पहले खाया हुआ पचा ही नहीं और ऊपर से फिर खा लिया। अब पाचक रस पहले वाले को पचाए अथवा दूसरी बार खाए पदार्थ को? चाहे दूध हो या चाय या अन्य पेय रस—एक प्रहर का लंघन होना चाहिए। अन्यथा वायु के रोग, सिरदर्द आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आज विवाह की

अपनी आचार-संहिता हो गई है। उसका 'कोड ऑफ कण्डक्ट' सबसे भिन्न है। एक बार शादी में सम्मिलित होने का अर्थ है, अनेक दिनों तक बीमारी को भोगना, अधिक भोजन से उत्पन्न रोग को भोगना। रोग आदमी स्वयं पैदा करता है। वह पूरा जिम्मेवार है इस स्थिति के लिए। जितना तीव्र होता है राग और द्वेष, प्रियता और अप्रियता का संवेदन, उतनी ही तीव्र होती हैं बीमारियां। गलत खान-पान से बीमारियों को निमन्त्रण मिलता है। प्राचीनकाल की अपेक्षा आज बीमारियां अधिक हैं। इसका कारण है—गलत खान-पान।

इस अत्यधिक अशन अथवा असंतुलित अशन की भयानकता से बचने के लिए धर्माचार्यों ने एक उपाय निकाला। उसका नाम है—अनशन। कम खाना भी अनशन है। यह बहुत बड़ी सहिष्णुता है। जिस व्यक्ति में सहिष्णुता का विकास नहीं है, वह व्यक्ति भूख-प्यास को नहीं सह सकता। कुछ लोग अतिरिक्त होते हैं भूख-प्यास सहने में। उन्हें न भूख सताती है और न प्यास।

दोष निवारण का अचूक उपाय

उपवास पर अनेक खोजें हुई हैं। प्राचीनकाल में उपवास करना, न खाना केवल धार्मिक मान्यता थी या स्वास्थ्य का सिद्धान्त था। आज उपवास चिकित्सा पद्धति बन गया है। पश्चिम के लोगों ने उपवास पर खोजें कर उसको चिकित्सा पद्धति का व्यवस्थित रूप दिया है। असाध्य लगने वाले रोग इस पद्धति से शान्त हो जाते हैं।

अनशन दोष निवारण का अचूक उपाय है। आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध श्लोक है—

**आहारं पचति शिखी, दोषान् आहारवर्जितः।
ततश्च धातून् सर्वान्, पचेत् प्राणं समन्ततः॥**

—अग्नि आहार को पचाती है। जब व्यक्ति अनशन करता है, अनाहारी रहता है तब वह अग्नि आहार वर्जित दोषों को पचाती है। शरीर में वात, पित्त और कफ के दोष हैं। उन दोषों को अग्नि खाने लग जाती है। उसे ऊपर से लिया जाने वाला आहार तो मिलता नहीं, इसलिए वह शरीरस्थ दोषों को आहार बना लेती है। जब दोषों का खाना पूरा होता है तब वह धातुओं को पचाना प्रारम्भ करती है। धातुएं सात हैं और अग्नि इन सभी धातुओं को समाप्त कर देती है। फिर वह प्राणों को पचाना प्रारम्भ करती है। जब वह सारे प्राणों को पचा लेती है तब प्राणी मर जाता है। यही मृत्यु है। अनशन करने वाले के प्राणों की क्षीणता का यही क्रम है। अनशन करने वाले कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो जाते हैं, दोष सारे नष्ट जाते हैं और तब यह शरीर निर्मल हो जाता है। यह स्वयं गम्य तथ्य है। न खाना, कम खाना स्वस्थ रहने का अचूक उपाय है।

रतनलालजी रामपुरिया ने पूछा—पूज्य गुरुदेव तुलसी प्रातः चार बजे उठते और रात को दस-बारह बजे सोते। निरन्तर कार्यरत रहते। पर गुरुदेव के चेहरे पर कभी थकान नहीं देखी, सदा हंसता-खिलता चेहरा, वही प्रसन्नता और लगता कि अभी-अभी गहरी नींद लेकर ताजगी प्राप्त कर उठे हैं।'

यह प्रश्न एक व्यक्ति का नहीं, हजारों का है। मैंने निकटता से इसके कारण की खोज की। मुझे उनकी प्रसन्नता और श्रम परायणता का रहस्य यही लगा कि वे अनशन करते, कम खाते। यदि कम खाने की बात नहीं होती तो गुरुदेव न तो इतने प्रसन्न रह पाते और न इतना श्रम कर पाते।

समाधान है कम खाना

कम खाना अनेक समस्याओं का समाधान है। हमारे साधु-साध्वी चतुर्मास के बाद विहार कर गुरुदेव के दर्शनार्थ आते हैं। उन्हें लम्बा मार्ग तय करना होता है। छोटे-छोटे गांव में रहते हैं। भोजन की प्राप्ति भी उतनी सुलभ नहीं रहती फिर भी वे प्रसन्न रहते हैं और स्वस्थ अनुभव करते हैं।

अनशन तपस्या है, कम खाना भी तपस्या है। तपस्या से समस्या का हल निकल आता है। लगभग सौ वर्ष पुरानी घटना है। तेरापंथ के चौथे आचार्य जीतमलजी चित्तौड़ शहर में चतुर्मास कराना चाहते थे। उन्होंने साधु-साधवियों से पूछा—‘कौन करेगा चित्तौड़ में चतुर्मास? वहां तेरापंथ के अनुयायियों के केवल दो घर हैं, शेष जैन बंधु कुछ विद्वेष रखते हैं।’ सब एक-दूसरे को ताकने लगे। महासती दीपांजी ने खड़े होकर प्रार्थना की—‘गुरुदेव! यदि आप चाहें तो मैं वहां चतुर्मास कर दूंगी।’ श्रीमज्जयाचार्य ने कहा—‘तुम बारह साधवियां हो। वहां केवल दो घर हैं। भोजन-पानी की प्राप्ति कैसे होगी?’ दीपांजी ने कहा—‘गुरुदेव! मैंने अपनी साधवियों से परामर्श कर लिया है। हमने समाधान ढूंढ निकाला है। गुरुदेव! चार साधवियां चातुर्मासिक तप करेंगी—चार महीने तक कुछ नहीं खाएंगी, चार साधवियां द्विमासिक तपस्या करेंगी—दो महीने कुछ नहीं खाएंगी और शेष चार साधवियां एकान्तर तपस्या—एक दिन भोजन और एक दिन उपवास करेंगी। दो महीने बीतने के बाद, जब वर्षा का प्रकोप कम हो जाएगा, रास्ते साफ हो जाएंगे, तब हम आसपास के गांवों में जाकर भिक्षा प्राप्त कर लेंगी।’

समस्या का समाधान निकल गया।

मैं किसी को इतनी बड़ी तपस्याओं के लिए नहीं कहता। मैं यह कहना चाहता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति भूख को सहने का अभ्यास करे, कम खाने का अभ्यास करे। यह सहिष्णुता लाभप्रद होती है।

अनशन आदि तपस्याएं कायसिद्धि के उपाय हैं। कोई व्यक्ति तपस्या न कर सके, उपवास भी न कर सके, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से इतना तो अवश्य ही करे कि बार-बार न खाए, तीन घंटा से पूर्व न खाए, अधिक न खाए। अनशन, ऊनोदरी आदि तपस्याओं के साथ धर्म की दृष्टि तो जुड़ी हुई है ही, उसके साथ स्वास्थ्य की दृष्टि भी जुड़ी हुई है। इसलिए भोजन विषयक हमारी धारणा बदलनी चाहिए और अनशन का मूल्य स्पष्ट होना चाहिए।

13. प्रयोग अस्वाद, अनाहार और आतापना का

रत्न की परीक्षा करने वाला केवल पुस्तकें नहीं पढ़ता, रत्नों को देखता है। पुस्तक पढ़ने वाला कभी कुशल जौहरी नहीं बन सकता। पुस्तक न पढ़ने वाला, केवल रत्नों को देखने वाला, निरीक्षण करने वाला, जांचने वाला कुशल जौहरी बन सकता है। जो बात अभ्यास से आती है, वह सिद्धांत से नहीं आती। सिद्धांत एक सुविधा है। जान लेने पर अभ्यास में सुविधा होती है। इसलिए सिद्धांत का भी मूल्य होता है। किन्तु वास्तविक मूल्य है अभ्यास का, प्रयोग का। जब हम अभ्यास करते हैं तब अनजानी बातें स्वयं जान ली जाती हैं। जो बातें पुस्तकों में नहीं होतीं, वे बातें भी जान ली जाती हैं। पुस्तकों का निर्माण उन लोगों ने किया है, जो पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु अभ्यासी थे। अभ्यास में जो फलित हुआ, वह पुस्तकों में आ गया।

मूल्य है कर्मजा बुद्धि का

कर्मजा बुद्धि का जितना मूल्य है, उतना दूसरी बुद्धि का मूल्य नहीं भी हो सकता। कर्मजा बुद्धि का बहुत बड़ा मूल्य है। कर्म करते-करते जो बुद्धि पैदा होती है, वह बहुत काम की होती है। साधना के क्षेत्र में ऐसा ही है। यदि हम केवल सिद्धान्त को जानें तो बात पूरी बनती नहीं। बहुत लोग आते हैं, जल्दी में आते हैं और कहते हैं कि मन बहुत चपल है, कैसे ठीक हो, बता दें। मैं कहता हूँ—यह कोई बुद्धि का व्यायाम नहीं है। बता भी दूंगा तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। समस्या का समाधान करना है तो अभ्यास करो। फिर पूछने की जरूरत भी नहीं होगी। किन्तु हमारी आदतें ही ऐसी हैं कि हम अभ्यास करना नहीं चाहते। दो टूक उत्तर चाहते हैं प्रश्न का। प्रश्न और उत्तर में तो तर्क की बात आ जाएगी। प्रश्न एक तर्क है और फिर उसका उत्तर होगा प्रतितर्क। तर्क के प्रति तर्क। लाभ कुछ भी नहीं होगा।

दो छोर

अभ्यास का हम मूल्यांकन करें। साधना स्वयं एक अभ्यास है। साधना का सिद्धान्त भी है और साधना का अभ्यास भी। हम प्रयोग करें। कहां से शुरू करें साधना का प्रयोग? किस बिन्दु से शुरू करें?

आचारांग का एक सूक्त है—साधक को दो अन्तों से परिचित होना चाहिए। एक राग और दूसरा द्वेष। एक प्रियता और दूसरी अप्रियता। ये दो छोर हैं। हमारी सारी प्रवृत्तियों के दो छोर हैं। कोई भी प्रवृत्ति होती है, वह राग से शुरू होती है या द्वेष से। वह राग में समाप्त होती है या द्वेष में। ये दोनों छोर हैं। आदि-बिन्दु में राग और

द्वेष, प्रियता और अप्रियता। समाप्ति में भी प्रियता और अप्रियता, राग और द्वेष। साधक वह होता है, जो प्रियता और अप्रियता—इन दोनों छोरों के बीच में नहीं रहता। इनसे परे हो जाता है। जिसकी प्रवृत्ति के आदि-बिन्दु में भी राग नहीं, द्वेष नहीं, जिसकी परिसमाप्ति में भी राग नहीं, द्वेष नहीं, प्रियता और अप्रियता नहीं, वह साधक होता है।

आरोपित है प्रियता और अप्रियता

यथार्थ को हम अस्वीकार नहीं कर सकते, भोजन को अस्वीकार नहीं कर सकते। वह यथार्थ है। आहार करना एक यथार्थ की समस्या का समाधान है। किन्तु प्रियता और अप्रियता—ये दोनों आरोपित हैं। हम आरोपित करते हैं। हमने ऐसा मान लिया कि जिह्वा को स्वाद मिलना चाहिए। जो जिह्वा के ज्ञान-तन्तु हैं उन्हें स्वाद मिले तो हमें अच्छा लगता है, न मिले तो हमें बुरा लगता है। हमने उसके साथ प्रियता और अप्रियता का भाव जोड़ रखा है। चीनी, नमक और चिकनाई—ये तीनों भोजन के अनिवार्य अंग बने हुए हैं किन्तु इनके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, यह सब नहीं जानते। हृदय की बीमारी के लिए तीनों निषिद्ध माने जाते हैं। बहुत चीनी का प्रयोग भी न हो, बहुत चिकनाई का प्रयोग भी न हो और नमक का प्रयोग सर्वथा न हो तो बहुत अच्छा है। हृदय की बीमारी वाले चीनी, चिकनाई को तो शायद नहीं छोड़ते होंगे, किन्तु नमक तो प्रायः निषिद्ध होता है।

उपयोगी होता है प्राकृतिक लवण

कृत्रिम नमक, खनिज नमक का तो हमारे शरीर के लिए कोई विशेष उपयोग ही नहीं है। पता नहीं, यह कैसे चला? वह नमक शरीर के लिए उपयोगी होता है जो शाक, भाजी व फलों से मिलता है। वह प्राकृतिक लवण है। वह शरीर में घुल जाता है। यह कृत्रिम नमक शरीर में विकार पैदा करता है। उच्च रक्तचाप आदि बीमारियां नमक के कारण होती हैं। गुर्दे की बीमारी ज्यादा नमक खाने से होती है। इस नमक का कोई बहुत उपयोग नहीं है। पर इतना मूल्य मिल गया कि भोजन का मतलब ही नमक है। यदि नमक नहीं तो भोजन ही क्या हुआ? सामान्य बोलचाल की भाषा में भी कहा जाता है कि यह तो वैसा ही फीका रहा जैसा कि बिना नमक का भोजन। अनिवार्य तत्त्व मान लिया गया कि अगर भोजन है तो नमक होना ही चाहिए। उतने से ही काम नहीं चलता, ऊपर से भी न जाने कितना लिया जाता है। यदि नमक का प्रयोग बन्द हो जाये तो दस-बीस प्रतिशत बीमारियां भी कम हो जायें। नमक के कारण लोग ज्यादा खाते हैं। गर्मी के दिन हैं। फिर भी बाजार में से निकलो तो चटपटी चीजें खरीदने वालों की भीड़ लगी मिलेगी। लोग ये चीजें बड़े चाव से खाते हैं। उनका तर्क है कि चटपटी चीजें खाने के बाद जब पानी पीते हैं तो वह बड़ा स्वादिष्ट लगता है, तृप्ति देता है। गर्म चटपटी चीजें खाए बिना पानी भी स्वादिष्ट नहीं लगता। कृत्रिम स्वाद पैदा कर हमने नमक को भोजन का प्रधान तत्त्व मान लिया। जीभ को स्वाद मिले, डॉक्टरों को संरक्षण मिले, उनका धंधा चले और बीमारियां अच्छी तरह से पलें।

अस्वाद का पहला प्रयोग

साधना का प्रयोग शुरू करें। इसे मैं केवल साधना का प्रयोग ही नहीं मानता, स्वास्थ्य का प्रयोग भी मानता हूँ। यदि प्रतिदिन नमक न छोड़ सकें तो सप्ताह में एक, दो, तीन दिन ही छोड़कर देखें और बिना नमक का भोजन करें। यह प्रियता और अप्रियता से बचने का प्रयोग होगा, संकल्पशक्ति का प्रयोग होगा तथा साथ-साथ स्वास्थ्य का भी प्रयोग होगा। हृदय रोग की संभावना कम होगी, अन्तर्ग्रण (कैंसर) की संभावना कम होगी।

ध्यान करने वालों को उत्तेजना के वातावरण से बचना चाहिए। नमक कृत्रिम ढंग से उत्तेजना पैदा करता है, रक्त को अद्रव बनाता है। जब वह उत्तेजना नहीं होगी, मानसिक शांति में सहयोग मिलेगा।

आयंबिल का प्रयोग

सूत्रकृतांग सूत्र में एक चर्चा है। कुछ दार्शनिक या कुछ धार्मिक साधक लोग मानते थे कि नमक खाने वाले को मोक्ष नहीं मिलता। अलवण भोजन होना चाहिए। जो नमकीन भोजन करता है उसे मोक्ष नहीं मिलता। यह तो कहने का ढंग है। एक बात को बहुत महत्त्व दे दिया, किन्तु हमें तो उससे सार लेना चाहिए। इतना ही अर्थ इसका हो सकता है कि नमक का प्रयोग साधना के लिए वर्जित होता है और स्वास्थ्य के लिए यह विघ्न है। आयंबिल करने वाले नमक नहीं खाते। आयंबिल में कोरा एक धान्य और पानी चलता है। कितना प्रभाव होता है! आयंबिल का प्रयोग अनेक बीमारियों को मिटाने वाला प्रयोग है। यह एक तपस्या का प्रयोग है किन्तु भयंकर बीमारियां आयंबिल से नष्ट होती हैं। पक्षाघात की बीमारी बहुत भयंकर होती है, किन्तु आयंबिल के द्वारा ठीक हो जाती है। अजीर्ण और अपच की बीमारी इससे ठीक होती है। एक साथ ज्यादा वस्तुएं खाने से बहुत बीमारियां होती हैं और एक अनाज खाने से पाचन-शक्ति को बहुत राहत मिलती है। किसी के सिर पर एक साथ बहुत काम लाद दिया जाये तो वह घबरा जायेगा कि इतने काम करने हैं। यदि एक-एक काम कराया जाये तो बहुत सुविधा से कर लेगा। इस बात को समझ लें कि जहां भीड़ होती है वहां संभालना कठिन होता है। एक को संभालने में कोई कठिनाई नहीं होती। एक वस्तु पेट में जाती है तो पचाने में बहुत सुविधा होती है और अनेक वस्तुएं एक साथ पेट में जाती हैं तो उन्हें पचाने में अधिक शक्ति लगानी पड़ती है।

आयंबिल का लाभ

लाडनू की घटना है। एक भाई आया, जो यह बताता था कि कहां कुआं खोदना चाहिए? कहां पानी निकलेगा? मैंने पूछा—‘क्या प्रयोग किया था तुमने?’ उसने कहा—‘मेरे गुरु ने मुझे एक प्रयोग बताया कि छह महीने तक एक अनाज खाया जाए और केवल पानी पीया जाये तो भूगर्भ में छिपी वस्तुओं का ज्ञान हो सकता है। मैंने वह प्रयोग किया और मुझमें यह ताकत पैदा हो गई।’

मैंने कहा—‘यह तो आयंबिल का प्रयोग है।’

आगमों में आयंबिल के बहुत प्रयोग मिलते हैं। बीमारियों में भी इसके बहुत प्रयोग होते हैं। आयंबिल में नमक का भोजन नहीं होता। यह अति नमक वाली बात उपयुक्त नहीं है। इसे छोड़ा जाये तो कोई हानि की बात नहीं, प्रत्युत लाभ ही होगा। प्राकृतिक चिकित्सा के लोग इस विषय पर बहुत बल देते हैं कि नमक खाया ही न जाये।

छेद अप्रियता और प्रियता के बांध में

क्या नमक का उपयोग न करने की साधना अन्य साधनाओं में सहयोगी बनती है—यह एक प्रश्न है। यह प्रियता और अप्रियता से बचने का पहला प्रयोग है। जब आहार का प्रयोग सध जाता है, तब कपड़ों के प्रति, शरीर के प्रति, आसपास के व्यक्तियों के प्रति भी यह प्रयोग सधने लगता है। व्यक्ति में प्रियता और अप्रियता का भाव घटने लगता है। समता का अभ्यास सधता है। नमक की बात पहले इसलिए ली गई कि आहार सबसे अधिक सताता है मनुष्य को। आदमी का अधिक समय आहार की चर्चा में बीतता है। जैन साहित्य में यह प्रतिपादित है कि चर्चा के चार मुख्य विषय होते हैं—स्त्री-कथा, भक्त-कथा (भोजन की कथा), देश-कथा और राज-कथा। आदमी स्त्री संबंधी चर्चा करता है, वासना संबंधी चर्चा करता है। वह भोजन की चर्चा, देश और राज्य की चर्चा में रस लेता है। इन सब में भी भोजन की चर्चा मुख्य होती है। यदि हम नमक के परित्याग से आहार की चर्चा का नियमन कर लेते हैं तो शेष चर्चाओं का रस भी क्षीण होने लगता है। बांध में यदि एक छेद कर दिया जाये तो एक दिन बांध टूट सकता है, सारा पानी बहकर बाहर जा सकता है। राग-द्वेष या प्रियता-अप्रियता का दृढ़ बांध है। उसमें एक स्थान पर छेद कर देने से वह बांध टूट सकता है।

एक विशेष बात है। एक डॉक्टर ने कहा था कि यदि बच्चे को नमक न दिया जाये तो वह मर सकता है। अधिक नमक खाने से भी हानियां होती हैं—ये दोनों रोग हैं। नमक शरीर के लिए आवश्यक है। यदि शरीर में लवण न हो तो शरीर में विष अधिक जमा हो जाता है। किन्तु यहां यह विवेक होना चाहिए कि खनिज नमक आवश्यक नहीं है। साग-सब्जी और फलों में स्वाभाविक रूप से प्राप्त नमक उपयोगी है। यह नमक घुल जाता है। कृत्रिम नमक घुलता नहीं। नमक को बाहर निकालने के लिए गुर्दे को बहुत काम करना पड़ता है। वह खराब हो जाता है। कृत्रिम नमक किसी भी अवस्था में उपयोगी नहीं माना जा सकता।

प्रयोग अस्वाद की दृष्टि से

जैसे शरीर के लिए नमक आवश्यक होता है वैसे ही चीनी भी आवश्यक होती है। किन्तु यह सफेद चीनी नहीं। वह चीनी जो सहज प्राप्त होती है। दूध में चीनी होती है। फिर भी उसमें चीनी मिलाई जाती है, तो यह कहावत चरितार्थ होती है—टोपी पर टोपला। दूध में तो वैसे ही चीनी होती है, फिर दूसरी चीनी की जरूरत क्या है? उन लोगों को दूध के स्वाद का कभी पता नहीं चलता, जो दूध में चीनी डालते हैं। कुछ लोग तो इतनी डालते हैं कि शायद

दूध का स्वाद तो बेचारा कहां रहे, चीनी का स्वाद भी पूरा न रहे। अधिक चीनी अम्लता बन जाती है। अति मात्रा में चीनी के प्रयोग से बहुत बीमारियां पैदा होती हैं। अतः चीनी का प्रयोग छोड़ा जाये।

नमक-वर्जन और चीनी-वर्जन—यह अस्वाद का प्रयोग होगा। अन्य बातों को गौण करें। अस्वाद की दृष्टि से प्रयोग करें कि दूध में चीनी नहीं लेना है, रोटी में नमक नहीं डालना है। प्रयोग करके देखें, फिर प्रियता और अप्रियता पर भी हमारा प्रहार हो जायेगा। अब यह स्थिति है कि नमकीन (नमक वाला) भोजन करते हैं तो प्रिय लगता है और कभी भूल से रसोई बनाने वाली नमक नहीं डालती, वह भोजन थाली में परोसा जाता है, एक कौर लिया जाता है, तत्काल अप्रियता की बात आती है। थोड़ा शांत व्यक्ति होता है तो सहन कर लेता है और ऊपर से ले लेता है। जो उत्तेजित प्रकृति का होता है, वह तो थाली को ठोकर मार देता है। थाली कहीं जाती है और भोजन कहीं जाता है। दस-बीस गालियां भी बक देता है। यह अप्रियता इसलिए जागती है कि हमने प्रियता को पाल रखा है।

मूल है राग

प्रियता को पालने का मतलब है अप्रियता को पालना और अप्रियता को पालने का मतलब है प्रियता को पालना। प्रियता और अप्रियता को अलग-अलग नहीं किया जा सकता, वास्तव में दोनों एक हैं। एक अवस्था में जो प्रियता होती है, दूसरी अवस्था में वही अप्रियता बन जाती है। हमारा प्रियता का संस्कार पुष्ट है तो अप्रियता का संस्कार भी पुष्ट होगा। राग का संस्कार पुष्ट है तो द्वेष का संस्कार भी पुष्ट होगा। द्वेष का संस्कार पुष्ट है तो राग का संस्कार भी पुष्ट होगा। राग और द्वेष दो नहीं हैं, वास्तव में एक ही बात है।

अनुयोगद्वार सूत्र में बहुत सुन्दर ढंग से समझाया गया है कि मूल है राग, केवल राग। राग होता है इसलिए द्वेष होता है। द्वेष का अपना कोई मूल्य नहीं है, अपना कोई अस्तित्व नहीं है। द्वेष राग के कन्धे पर चढ़कर चलता है। हम प्रियता पर प्रहार करें। जो हमें प्रिय है, उस प्रिय का वर्जन करें, त्याग करें। एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग होगा—अस्वाद का प्रयोग होगा। यह स्थिति बन जाये कि नमक का वर्जन किया तो भोजन में कोई अन्तर नहीं आया और यह अनुभव नहीं किया कि आज तो कुछ नीरस भोजन कर रहा हूं या कमजोर भोजन कर रहा हूं। यह अस्वाद का प्रयोग है, जिसमें चीनी न हो और जिसमें नमक न हो। कभी चीनी को छोड़ें, कभी नमक को छोड़ें।

अस्वाद : तीसरा प्रयोग

तीसरा प्रयोग यह भी हो सकता है—कभी रोटी और साग को अलग-अलग खाया जाए। जैसे रोटी खाने के लिए साग जरूरी होता है। साग न हो तो रोटी कैसे खायी जाये? फुलका है तो साग चाहिए, व्यंजन चाहिए। जब अस्वाद का प्रयोग करना है तो रोटी अलग खाएं और साग अलग। अलग खाने का मतलब है अस्वाद का प्रयोग और साथ ही स्वास्थ्य का भी बहुत बड़ा प्रयोग। रोटी के साथ साग खाते हैं तो पूरा चबाया नहीं जाता।

स्वास्थ्य का मूल सिद्धांत है कि भोजन को जितना चबाया जाये उतना ही अच्छा है। कहा जाता है—बत्तीस बार एक कौर को चबाया जाये। इतना निकम्मा कौन है जो बत्तीस बार चबाए। पांच मिनट में भोजन करना है, दस मिनट में भोजन करना है। बत्तीस बार एक कौर को चबाएं तो कब तक बैठे रहें? फिर क्या खाये? इतना कैसे खायें, खा ही नहीं सकता। एक बात तो जरूर है कि जो इतना चबाये, उसे ज्यादा खाने की जरूरत भी नहीं पड़ती। पांच रोटियां जो काम नहीं करतीं, एक-डेढ़ रोटी उतना काम कर सकती है अगर उतना चबाया जाए। किन्तु आदमी तो मात्रा ज्यादा चाहता है, क्वांटिटी पूरी होनी चाहिए, उसके बिना संतोष नहीं होता। चबाने की बात बहुत कम होती है। नहीं चबाने का परिणाम होता है कि दांत भी खराब होते हैं और आंत भी। दांत और आंत दोनों के साथ शत्रुता का पोषण करना हो तो चबाना छोड़ दो। अपने आप दोनों कष्ट में पड़ जायेंगे।

आज एक बहिन आयी थी सुजानगढ़ से, मालचंदजी डोसी की धर्मपत्नी। विचित्र महिला है, वृद्ध महिला है। आप विश्वास नहीं करेंगे, 74 वर्ष की अवस्था है। आज तक उसने दातुन नहीं किया, मंजन नहीं किया। दवा नहीं लेती कभी, दवा का बिलकुल प्रत्याख्यान (त्याग)। किसी भी अवस्था में कोई दवा का प्रयोग नहीं। दांत एकदम स्वस्थ और आंखों में पूर्ण ज्योति। मैंने कहा—तुम्हारे दांत खराब कैसे हों? जो बहुत मात्रा में खाते हैं और बार-बार खाते हैं, दिन भर चरते रहते हैं, उनके दांत खराब होते हैं, उनमें सड़ांध भी पैदा हो जाती है। जो लोग बहुत सीमित खाते हैं, उनके दांत कैसे खराब हों? पशु के दांत तो कभी खराब नहीं होते। खराब होने का कोई कारण ही नहीं। दांतों को खराब करना हो तो चीनी खूब खाएं। चीनी जितनी ज्यादा खाई जाती है, दांत उतने ही कमजोर होते हैं। चीनी अधिक खा लेते हैं और उस चीनी के कुछ अंश दांतों में जमे रह जाते हैं। वे सबसे ज्यादा दांतों को हानि पहुंचाते हैं।

कितना मीठा होता है गेहूं

मैं अस्वाद की चर्चा करते हुए स्वाद की चर्चा भी कर रहा हूं कि आप फुलका खाते हैं, गेहूं की रोटी खाते हैं। जिन लोगों ने बिना साग के कभी गेहूं की रोटी नहीं खायी उन्हें पता ही नहीं है कि गेहूं का स्वाद कैसा होता है। बिना साग के गेहूं की रोटी खाकर देखें; पता चलेगा कि कितनी मिठास है गेहूं में। इतना मीठा होता है कि फिर चीनी डालने की कहीं बात नहीं आती। बाजरी में बहुत मिठास है, बहुत चीनी है। गेहूं में बहुत चीनी है। पर नमक के साथ खाते हैं, साग के साथ खाते हैं तो गेहूं का स्वाद कहीं दब जाता है, छिप जाता है, पता नहीं चलता। बस, केवल नमक और मसालों का स्वाद ही जीभ पर होता है। स्वाद का भी बहुत बड़ा अन्तर होता है।

उपवास : सहिष्णुता का प्रयोग

उपवास सहिष्णुता का बड़ा प्रयोग है। प्रतिदिन प्रातःकाल भोजन की मांग हो जाती है। जो उपवास करते हैं, उनमें सहज ही सहिष्णुता और संकल्प-शक्ति का विकास होता है। भगवान् महावीर ने बहुत लम्बी तपस्याएं की

थीं पर वे कोरी शरीर को सताने वाली तपस्याएं नहीं थीं। यह तो भ्रांतिवश लोगों ने मान लिया कि शरीर को बड़ा कष्ट दिया, सताया। उनके तो वे सारे प्रयोग थे। जब प्रयोग की बात भूल गए, तब लगा कि उन्होंने शरीर को बहुत सताया। आज भी बहुत लोग कहते हैं कि जैन लोग शरीर को बहुत सताते हैं। सताने की कोई बात नहीं। ये सारी प्रयोग की बातें हैं। यदि शरीर को सताने के लिए तपस्या की जाए तो वैसी तपस्या गलत है और ऐसी तपस्या होनी ही नहीं चाहिए। केवल प्रयोग होना चाहिए। आयुर्वेद का विश्वास है कि सप्ताह में एक उपवास अवश्य होना चाहिए। आज हम उपवास के महत्त्व को भूल गए और पश्चिम के लोगों ने उपवास-चिकित्सा का प्रयोग कर रखा है। न जाने कितने वर्षों से चल रहा है। उपवास-चिकित्सा पर पश्चिम की जितनी अच्छी पुस्तकें निकली हैं, शायद भारत में नहीं निकलीं। उपवास प्रयोग है, अगर प्रयोग की दृष्टि से किया जाये। पर होता क्या है कि कल उपवास करना है, आज धारणा गरिष्ठ भोजन का होना चाहिए। ऐसा उपवास न करें तो अच्छा, उपवास का लाभ स्वास्थ्य की दृष्टि से तो बिलकुल चला गया। मात्र अनशन हो जाएगा, लंघन हो जायेगा। उपवास प्रयोग तब बनता है जब तीन दिन यह क्रम चले। पहले दिन हलका भोजन, दूसरे दिन उपवास और तीसरे दिन फिर हलका भोजन, तब उपवास वास्तव में प्रयोग बनता है। पर मान लिया गया कि धारणा भी भारी हो और पारणा भी भारी हो, बीच में पूरा हलका हो जाये। लाभ वह नहीं होता, जो होना चाहिए। यदि उपवास विधिवत् किया जाये तो बीमारियां सहज ही ठीक हो सकती हैं।

पुराने जमाने में उपवास में भी चावल का मांड पीने की परम्परा थी। आजकल यह परम्परा नहीं है। यह मांड स्त्रियों के लिए बहुत लाभदायी होता है। स्त्रियों के लिए कोष्ठबद्धता (कब्ज) का एक कारण होता है ऋतुसाव की अनियमितता। उससे बहुत भयंकर कब्ज होती है और उसके लिए मांड का प्रयोग जितना लाभदायी होता है, शायद सैकड़ों दवाइयां भी उतनी लाभदायी नहीं होतीं।

उपवास से बहुत सारी समस्याएं हल होती हैं, यदि वह प्रयोग की दृष्टि से किया जाये। इस वैज्ञानिक युग में इतने बौद्धिक विकास और अनुसंधान के उपरान्त भी यदि कोई परम्परा केवल परम्परा के रूप में चलती है तो लगता है कि हम जान-बूझकर यथार्थ के साथ आंख-मिचौनी कर रहे हैं। आज हर बात के पीछे गहरी अनुसंधान की दृष्टि होनी चाहिए। यह करें तो क्यों करें? क्या परिणाम होगा? कैसे किया जाये? इस पद्धति में कैसे विकास किया जा सकता है? यह सारा चिन्तन स्पष्ट होना चाहिए।

उपवास के विषय में आज जितनी वैज्ञानिक खोजें हुई हैं, पहले नहीं हुई थी। प्राचीन साहित्य में तपस्या करने पर बहुत बल दिया गया किन्तु उसके लाभ-अलाभ की विस्तृत चर्चा नहीं की गई। आज इसका वैज्ञानिक ढंग से निरूपण उपलब्ध है। उपवास पर बहुत बड़ा साहित्य उपलब्ध है। भोजन विषयक साहित्य भी प्रचुर है। कम खाने से क्या लाभ है और अधिक खाने से कौन-कौन सी बीमारियां होती हैं, इसका पूरा विवेचन साहित्य में प्राप्त है।

उपवास करना या कम खाना कठिन बात है। आज का आदमी इतना चाटू हो गया है कि यदि भोजन में मसाले कम हों, नमक-मिर्च कम हों या न हों तो उसे वह भोजन अटपटा-सा लगता है। वह मानता है कि यह तो पशुओं का भोजन है। पशु मसाले नहीं खाते, नमक और मिर्च नहीं खाते। जो सहज निष्पन्न है वही खा लेते हैं। बिना मसाले का भोजन, बिना नमक-मिर्च का भोजन आदमी का भोजन नहीं है, पशु का भोजन है। यह भ्रान्त विचार है।

आज चिकित्सा के क्षेत्र में भोजन सम्बन्धी अनेक वर्जनाएं प्रचलित हैं। आज का डॉक्टर भोजन के विषय में जागरूक है। वह भी अनेक वर्जनाएं प्रस्तुत करता है, यह मत खाओ, वह मत खाओ। धर्म के क्षेत्र में जो वर्जनाएं थीं, वे चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रचलित हैं। यदि हमारे पास उपकरण हों तो प्रत्येक बात को प्रमाणित किया जा सकता है।

आज पोषणशास्त्र और भोजनशास्त्र के अनुसार यह प्रमाणित होता है कि सोडियम का जितना प्रयोग होता है उतना ही पोटेशियम कम होने लग जाता है। पोटेशियम के कम होने का अर्थ है—जीवनी-शक्ति का कम होने लग जाना। हमारी जीवनीशक्ति के लिए, कोशिकाओं के लिए पोटेशियम की उपयुक्त मात्रा का होना बहुत जरूरी होता है। पोटेशियम का बहाव इस नमक के कारण कम होता है।

व्रतों की प्रायोगिकता

व्रत बहुत बड़ा आलम्बन है। हम उसका कम मूल्यांकन न करें। रूढ़ि को छोड़ दें। मैं रूढ़ि का समर्थन नहीं कर रहा हूं। हम प्रायोगिक दृष्टि से व्रतों का मूल्यांकन करें। हम यह समझें कि जितने व्रत हैं, वे सब प्रायोगिक हैं। एकादशी का व्रत चला था, बहुत प्रायोगिक था। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या का व्रत चला था, बहुत प्रायोगिक था। जैन श्रावक पूर्णिमा, चतुर्दशी, अमावस्या आदि पर्व दिनों में बेला करते—दो दिन का उपवास करते, दो दिन ध्यान में बिताते। क्यों बिताते? इसकी वैज्ञानिक व्याख्या उस समय ज्ञात नहीं थी। आज उसकी वैज्ञानिक व्याख्या बहुत स्पष्ट हो चुकी है। चतुर्दशी और पूर्णिमा तथा चतुर्दशी और अमावस्या—ये चारों दिन मानसिक दृष्टि से बहुत खतरनाक होते हैं। हमारे शरीर में अस्सी प्रतिशत जलीय-भाग है। जैसे चन्द्रमा समुद्र के जल को प्रभावित करता है, उसमें ज्वार-भाटा आता है, वैसे ही जलीयभाग की अधिकता के कारण चन्द्रमा हमारे मन को भी प्रभावित करता है। ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार चन्द्रमा का सम्बन्ध मन से और मन का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। चन्द्रमा समुद्र के जल को भी प्रभावित करता है और हमारे शरीर में होने वाले जलीय अंश और मन को भी प्रभावित करता है। वैज्ञानिक सर्वेक्षण कर इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि जितने अपराध इन दिनों में होते हैं, उतने अन्य दिनों में नहीं होते। इसीलिए चतुर्दशी और पूर्णिमा तथा चतुर्दशी और अमावस्या—इन दिनों को ध्यान में, तप और स्वाध्याय में बिताना चाहिए। यह परम्परा चालू हो गई। आज बहुत लोग पूछते हैं, चतुर्दशी

को उपवास किया जाता है, बेचारी तेरस ने क्या बिगाड़ा? अष्टमी को अमुक वस्तु न खाई जाए, आर्यंबिल किया जाए तो बेचारी सप्तमी ने क्या बिगाड़ा? अजीब प्रश्न है। चतुर्दशी आदि पर्व-तिथियों का जो निषेध है उसके पीछे छिपे हुए रहस्य को जान लेने पर ये प्रश्न स्वयं समाधान पा लेते हैं और व्यक्ति व्रतों की उपयोगिता को पूर्णरूप से समझ लेता है।

महत्त्वपूर्ण प्रयोग है आतापना

मैंने प्रयोग की दृष्टि से दो-चार बातें प्रस्तुत कीं—अस्वाद का प्रयोग, आर्यंबिल का प्रयोग, उपवास का प्रयोग। साथ-साथ मैं आतापना का प्रयोग भी है। आतापना का प्रयोग केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। आतापना का अर्थ केवल मध्याह्न की चिलचिलाती धूप में शिलापट्ट पर लेटना ही नहीं है। सूर्य के आतप को लेना सहिष्णुता का प्रयोग है, संकल्प-शक्ति का प्रयोग है और साधना का बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। सूर्य-रश्मि-चिकित्सा, रंग-चिकित्सा इसके साथ जुड़ी हुई है। शरीर के लिए विटामिन 'डी' बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। विटामिन 'डी' का सबसे बड़ा स्रोत है सूर्य का आतप। उससे जितना अच्छा विटामिन 'डी' मिलता है, उतना दूसरी जगह नहीं मिलता। स्वास्थ्य के लिए धूप का सेवन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। यह आतापना का प्रयोग है।

आतापना के साथ आसनों का प्रयोग भी जुड़ा हुआ है। एक प्रकार के आसन में आतापना लेने में सूर्य की रश्मियों का एक प्रकार का प्रभाव होता है और दूसरे प्रकार के आसन में आतप लेने में सूर्य की रश्मियों का दूसरे प्रकार का प्रभाव होता है। आज के वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसी पद्धतियाँ विकसित की हैं पानी को साफ करने की, जिसमें किसी पदार्थ की जरूरत नहीं होती। केवल बर्तनों को बदल दें। कांच के बर्तन, उनके आकारों को बदल दें और धूप में पानी रख दें इन बर्तनों में, पानी अपने आप साफ हो जाएगा। इन पद्धतियों के बारे में काफी खोजें हुई हैं। दो बातें हैं—एक सूर्य का आतप और दूसरा है संस्थान। संस्थान की विशेषता, यन्त्र की विशेषता, रेखाओं की विशेषता और मुद्रा की विशेषता। विभिन्न मुद्राओं में, विभिन्न आसनों में आतापना का प्रयोग विभिन्न प्रकार के परिणाम लाता है। ये तपस्या के कुछेक प्रयोग हैं। ये प्रयोग सहिष्णुता की शक्ति को बढ़ाते हैं, संकल्प-शक्ति को विकसित करते हैं। इनसे साधना के प्रति और अधिक आकर्षण बढ़ता है, साथ-साथ स्वास्थ्य की समस्याएं भी सुलझती हैं।

सहिष्णुता के विकास के लिए कोई साधक सूर्य के आतप का प्रयोग करे तो कब, कितना और किस आसन में करना चाहिए, यह एक प्रश्न है। प्रारम्भ करने वाले के लिए प्रातःकाल सूर्योदय से लेकर एक घण्टे तक यह प्रयोग किया जा सकता है। कायोत्सर्ग की मुद्रा (लेटे-लेटे) या पद्मासन की मुद्रा लाभप्रद होती है। प्रारम्भ में आतप का सेवन दस-पन्द्रह मिनट तक लिया जाए और फिर धीरे-धीरे उसे बढ़ाकर एक घंटा तक खींचा जा सकता है।

हम ध्यान, आसन, तपस्या—इन सबको केवल एक रूढ़ धार्मिक दृष्टिकोण से न देखें, किन्तु इन सबका हमारे जीवन में कितना मूल्य है, इसको भी समझें। एक व्यक्ति जो सफल जीवन जीना चाहे, कुछ करना चाहे, केवल स्वार्थ का जीवन ही न जीना चाहे, अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व को कुछ नये आयाम देना चाहे, उस व्यक्ति के लिए इन सब प्रयोगों का मूल्यांकन आवश्यक है।

14. आहार और स्वास्थ्य

जीवन और आहार पर्यायवाची शब्द हैं। आहार है तो जीवन है और जीवन है तो आहार है। आहार नहीं है तो जीवन भी नहीं है। स्वास्थ्य और आहार पर्यायवाची हैं। आहार का विवेक नहीं है तो स्वास्थ्य भी नहीं है। जहां स्वास्थ्य है वहां निश्चित ही आहार का विवेक है।

स्वस्थ जीवन के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—आहार, उत्सर्जन और अनशन। आहार और अनशन को अलग नहीं किया जा सकता। स्वस्थ रहने के लिए जितना ध्यान आहार पर देना होता है, उतना ही ध्यान अनशन पर देना होता है। यदि केवल आहार पर ध्यान दिया और अनशन पर ध्यान नहीं दिया तो स्वस्थ रहना दुर्लभ हो जाएगा। वर्तमान में संतुलित भोजन की तालिकाएं प्रकाशित होती हैं। उनके आधार पर संतुलित भोजन का प्रयत्न होता है। यह स्मृति में रखना चाहिए कि प्रत्येक खाद्य वस्तु में अमृत के साथ विष भी होता है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसे हम केवल विष अथवा अमृत कह सकें। जो जहर है, उसमें अमृत भी है और जो अमृत है, उसमें जहर भी है।

महत्त्व उत्सर्जन का

स्वास्थ्य का सम्बन्ध केवल संतुलित भोजन और पोषक तत्वों की पूर्ति से ही नहीं है किन्तु उसके साथ जमने वाले विष के निष्कासन से भी है। उत्सर्जन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भगवान् महावीर ने आहार पर्याप्ति के तीन कार्य बतलाए—ग्रहण, परिणमन और उत्सर्जन। आहार का ग्रहण, उसका परिणमन—सात्मीकरण और उत्सर्जन—ये तीन कार्य हैं। भोजन का रस बनता है, रक्त बनता है। यह परिणमन है, सात्मीकरण है। परिणमन के पश्चात् उत्सर्जन होता है। उत्सर्जन का कार्य केवल आंतों ही नहीं करतीं, शरीर की प्रत्येक कोशिका करती है। यदि शरीर में एकत्रित विषों का समुचित उत्सर्जन नहीं होता है तो स्वास्थ्य की समस्या को सुलझाया नहीं जा सकता।

आधुनिक पोषणशास्त्र के अनुसार जीवन में क्षारीय तत्व और अम्लीय तत्व का समावेश होना चाहिए। अस्सी प्रतिशत क्षारीय तत्व और बीस प्रतिशत अम्लीय तत्व—यह संतुलित भोजन की व्याख्या है। अम्लीय तत्व विष पैदा करता है, वह अम्लीय कणों को छोड़ता है, जिनका शरीर के प्रत्येक भाग में जमाव होता है और वह पोषक तत्वों को प्रभावित करता है। यह जमाव जहरीला बन जाता है। यदि उसका निष्कासन नहीं होता है तो स्वास्थ्य गड़बड़ा

जाता है। शरीर संचालन का मुख्य तत्त्व है—रक्त। उससे सारा तंत्र संचालित होता है। जब रक्त में अम्लीय तत्त्व अधिक हो जाता है तब वह जहरीला बन जाता है। उस एक के जहरीले बन जाने पर सारा शरीर उससे प्रभावित होता है। अम्लीय तत्त्व ऋणात्मक शक्ति है। क्षारीय तत्त्व धनात्मक शक्ति है। दोनों शक्तियां हैं और दोनों जरूरी हैं। शरीर के लिए अम्लीय तत्त्व की भी जरूरत है और उसका अधिक मात्रा में शरीर में जमाव न हो, उसका उत्सर्जन हो, इसलिए क्षारीय तत्त्व भी जरूरी है। दोनों का अनुपात ठीक हो, यह अपेक्षित है। यदि अनुपात ठीक नहीं है तो उन्हें निकालने के लिए अनशन—आहार—त्याग की आवश्यकता होती है।

महाशक्ति है अनाहार

भगवान् महावीर ने आहार के विषय में जितना कहा, उससे अधिक अनाहार के विषय में कहा। आहार हमारी शक्ति है तो अनाहार महाशक्ति है। हम देखते हैं, जो व्यक्ति अनशन करते हैं, संथारा करते हैं, यावज्जीवन अन्न-पान का परित्याग करते हैं और ऐसी अवस्था में करते हैं कि मानो वे इस संसार में 10-20 घंटे के मेहमान हों तथा असाध्य बीमारी की अवस्था में ऐसा करते हैं। अनशन करने के बाद वे 10-20 दिन जीते हैं और स्वस्थता का अनुभव करते हुए जीते हैं।

उनकी बीमारी का गायब हो जाना, आंख की ज्योति का पुनः आ जाना, न बोल पाने की स्थिति से छूटकर बोलने लग जाना, शरीर में चमक का प्रादुर्भाव आदि-आदि स्थितियां अनशन में घटित होती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि शरीर में जो विजातीय तत्त्व जमा था, उसका रेचन प्रारंभ हो जाता है। जितना विजातीय तत्त्व का रेचन होता है, शरीर के अवयवों की शक्ति बढ़ जाती है। शरीरशास्त्र के अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्य के फेफड़ों में, हार्ट और किडनी में तीन सौ वर्षों तक कार्य करने की शक्ति है, क्षमता है। आज भी ये अवयव उतने काल तक कार्य करने में शक्ति-संपन्न हैं किन्तु इनकी शक्ति के हास का एक प्रमुख कारण बनता है—आहार।

हिताहार : मिताहार

भगवान् महावीर ने आधुनिक शरीरशास्त्री और पोषणशास्त्री की भांति यह विश्लेषण नहीं किया कि शरीर के पोषण के लिए कितना विटामिन, कितना लवण, कितना क्षार चाहिए। किन्तु उन्होंने आहार के विषय में दो महत्वपूर्ण शब्द दिए—हिताहार और मिताहार। जो व्यक्ति हितकर आहार करता है, जो व्यक्ति मितभोजी होता है वह स्वस्थ रहता है। उसकी चिकित्सा के लिए वैद्य की आवश्यकता नहीं होती। वह अपनी चिकित्सा स्वयं कर लेता है। वह स्वयं अपना वैद्य है। यद्यपि आहार विषयक ये दोनों शब्द मुनि के लिए दिए गये हैं, किन्तु ये दोनों प्रत्येक मनुष्य के लिए लागू होते हैं। आज के शरीरशास्त्री भी इस विषय का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं—प्रतिदिन व्यक्ति को दूध, दही, घी, मक्खन, मिठाइयां नहीं खानी चाहिए। ये पदार्थ हितकर नहीं हैं। ये अम्लता पैदा करने वाले हैं, विष पैदा करने वाले हैं। प्रतिदिन इनका सेवन करने से विष संगृहीत होता है और यह विष रोग का मूल है, जड़ है। कभी-कभी

इन पदार्थों को छोड़ना भी चाहिए। आज के चिकित्सक औषधि के साथ-साथ यह निर्देश भी देते हैं कि घी, चीनी बन्द करो, दूध अधिक मात्रा में मत लो, प्राणिज चीजें कम लो आदि-आदि। इसका तात्पर्य यही है कि भोजन जितना गरिष्ठ होगा, आयु उतनी ही कम होगी और स्वास्थ्य भी बिगड़ता जाएगा।

कैसा हो आहार ?

मुनि की आहार चर्या के प्रसंग में एक प्रश्न उठा—क्या मुनि को सर्वथा रूखा आहार ही लेना चाहिए अथवा सर्वथा चिकना आहार ही लेना चाहिए? समाधान में कहा गया कि मुनि को कभी रूखा और कभी चिकना आहार लेना चाहिए। यदि उसे अपनी मेधा से काम लेना है, स्वास्थ्य को ठीक रखना है, मूत्र-संस्थान को स्वस्थ रखना है तो चिकना आहार लेना होगा। किन्तु यदि निरंतर स्निग्ध आहार लेता रहे तो अनेक बीमारियां उत्पन्न हो जाएंगी। मानसिक रोग तथा कामुकता की समस्याएं उभरेंगी। यदि केवल रूखा आहार ही निरन्तर सेवन किया जाएगा तो स्वास्थ्य बिगड़ेगा तथा बार-बार प्रस्रवण करना पड़ेगा, मूत्र की बाधा बनी रहेगी, स्वाध्याय आदि में अनेक विघ्न पैदा होंगे। स्निग्ध आहार के निरन्तर सेवन से विकृति बढ़ती है तो रूखे आहार के निरन्तर सेवन से क्रोध और चिड़चिड़ापन। दोनों का संतुलन बनाए रखो—कभी स्निग्ध आहार करो और कभी रूखा आहार लो। इस आशय का प्रतिनिधि शब्द है—**अभिव्यखणं निव्विगडं गया य**—बार-बार विगय—स्निग्ध आहार का वर्जन करना।

जैनाचार्यों ने बहुत सुन्दर समीक्षा की है इस विषय में। साधु के लिए प्रश्न हुआ कि साधु को साधना करनी है तो वह तपस्या करे; भूखा रहे। खाता क्यों है? यदि खाए बिना जीवन नहीं चलता तो जीवन चलाने के लिए रूखा-सूखा खाए। दूध-घी क्यों खाए? आचार्यों ने उत्तर देते हुए कहा—स्निग्ध और मधुर भोजन के बिना जीवन चल भी सकता है किन्तु मेधा, बुद्धि और स्मृति का विकास नहीं हो सकता। जिन्हें अज्ञानी का जीवन जीना है, वे मधुर या स्निग्ध भोजन न भी करें, परन्तु जो ज्ञानी का जीवन जीना चाहते हैं; उन्हें मधुर और स्निग्ध भोजन लेना ही होगा। भगवान् महावीर तपस्या करते थे। उन तपस्या के दिनों में उनका शरीर सूख गया था। जीवन रूखा-सूखा हो गया था। सूत्रकार बतलाते हैं कि जब भगवान् महावीर ने निरन्तर भोजन लेना प्रारम्भ किया तब उनके शरीर में दीप्ति आ गई।

शरीर की दीप्ति या बौद्धिक प्रखरता भोजन पर बहुत कुछ निर्भर करती है। इस प्रसंग में अनेक वैज्ञानिक तथ्य प्रकट किए गए हैं। आचार्यों ने लिखा है—जिस क्षेत्र में स्निग्धता होती है, वहां के लोग दीर्घायु होते हैं। जो काल स्निग्ध होता है, उसमें रहने वालों का आयुष्य लम्बा होता है। जो मनुष्य स्निग्ध और मधुर भोजन करते हैं, वे दीर्घायु होते हैं। जिन्हें ऐसा भोजन प्राप्त नहीं होता, वे अकाल-मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।

भोजन के प्रति हमारा विचार संतुलित होना चाहिए। जो व्यक्ति केवल रूखा-सूखा खाते हैं वे बहुत क्रोधी होते हैं। उनकी प्रकृति चिड़चिड़ी हो जाती है। यदि रूखे-सूखे भोजन के साथ-साथ मधुर और स्निग्ध भोजन का संतुलन रहता है तो जीवन सुचारु रूप से चल सकता है। प्रत्येक बात पर हमें अनेकांत की दृष्टि से सोचना होगा।

एकान्त दृष्टि से किसी भी बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता। शरीर छोड़ना है तो शरीर को धारण भी करना है। आहार को छोड़ना है तो आहार को लेना भी है। रूखा-सूखा खाना है, आचाम्ल करना है तो साथ-साथ स्निग्ध और मधुर भोजन का प्रयोग भी करना है। दोनों बातें साथ-साथ चलनी चाहिए। दोनों चक्के साथ-साथ चलते हैं तब रथ आगे बढ़ता है। एक चक्के से गाड़ी नहीं चलती। इसलिए अनेकांतवादी संतुलन की बात को कभी नहीं छोड़ सकता।

उपवास

जैन परम्परा सम्मत बारह प्रकार की तपस्याओं में प्रथम चार—अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप और रस-परित्याग—तपस्याएं भी हैं और स्वास्थ्य के सूत्र भी हैं।

अनशन का अर्थ केवल उपवास आदि करना ही नहीं है। अमेरिकी डॉक्टर सेल्टन ने आहार-चिकित्सा पर जो कार्य किया है, वह स्वास्थ्य का सिद्धान्त है। उन्होंने कहा—‘आहार से विष जमा होते हैं। यदि विषों को शरीर से बाहर नहीं निकाला जाएगा तो स्वास्थ्य अस्त-व्यस्त हो जाएगा।’ शरीर के विजातीय पदार्थों के निष्कासन का एकमात्र उपाय है—उपवास। उपवास से पाचनतंत्र को विश्राम मिलता है। जब उसे विश्राम नहीं मिलता तब वह अपना कार्य पूरा नहीं कर पाता। पूरा शरीर उससे प्रभावित होता है। जीवन का आधार है—पाचन-तंत्र। सामान्यतः श्वसन-तंत्र को महत्व दिया जाता है। किन्तु श्वसन-तंत्र की स्वस्थता का हेतु क्या है, इस ओर ध्यान नहीं जाता। पाचन-तंत्र ठीक नहीं है तो श्वास की बीमारी हो जाती है। श्वास को पाचन-तंत्र ही प्रभावित करता है। पाचन-तंत्र, आमाशय, पक्वाशय, लिवर, तिल्ली आदि ठीक कार्य करते हैं तो स्वास्थ्य बना रहता है और यदि शरीर के ये अवयव ठीक नहीं हैं तो स्वास्थ्य की कामना निरर्थक है। पेन्क्रियाज ठीक नहीं है तो स्वास्थ्य नहीं है। एक भाई ने कहा—‘मेरा छोटा भाई चल बसा। उसे केवल शुगर की बीमारी थी।’ उसने यह सहज भाव से कहा। वह नहीं समझा कि शुगर की बीमारी सभी बीमारियों की जड़ है। यह निमंत्रण है अन्यान्य बीमारियों को। इससे किडनी कमजोर हो जाती है, सारा शरीर खोखला हो जाता है।

ऊनोदरी

जो उपवास नहीं कर सकते, उनको ऊनोदरी करनी चाहिए। ऊनोदरी का अर्थ है—भूख से कम खाना। अतीत का इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि कम खाने वाले स्वस्थ रहे हैं, दीर्घायु बने हैं। टूंस-टूंस कर खाने वाले बीमार रहे हैं, अल्पायु में मरे हैं। ऊनोदरी भी उपवास से कम नहीं है। अल्पाहार स्वास्थ्य का बड़ा सूत्र है।

प्राचीन काल में नाश्ते की प्रथा नहीं थी। आज उसका अधिक प्रचलन है। परन्तु आज एक आंदोलन चल रहा है कि नाश्ता मत करो। स्वस्थ रहना है तो नाश्ता छोड़ दो। ‘एगभक्तं च भोयणं’—एक वक्त भोजन करो, बीमारियां नहीं होगी। महावीर के कष्ट सहने के पीछे आहार-विवेक प्रमुख था। अल्पाहार से शक्ति का संचय होता है, शक्ति का

व्यय कम होता है। नाभि के आसपास प्राण-ऊर्जा पैदा होती है। उसे हठयोग में 'समान प्राण' कहते हैं। नाभि-केन्द्र प्राण ऊर्जा को पैदा करने का केन्द्र है। यह ऊर्जा शरीर के संचलन का मुख्य तत्त्व है। अधिक भोजन करने वाले में ऊर्जा कम हो जाएगी। अधिक भोजन और कब्ज-दोनों का गठबंधन है। उससे अनेक बीमारियाँ-सुस्ती, मन की उदासी, घबराहट आदि उत्पन्न होती हैं।

भगवान् महावीर ने उस समय की भाषा में बतलाया कि एक स्वस्थ पुरुष का आहार बत्तीस कवल का होता है। इससे एक कवल, दो कवल कम खाना ऊनोदरी है। ऊनोदरी के भी अनेक प्रकार हैं।

वृत्ति-संक्षेप

तपस्या अथवा स्वास्थ्य का तीसरा साधन है-वृत्ति-संक्षेप। जैन परम्परा में यह प्रवृत्ति बहु-प्रचलित है। द्रव्यों का नाना प्रकार से परिसीमन किया जाता है। आज मैं पांच द्रव्यों से अधिक नहीं लूंगा। आज मैं अमुक-अमुक द्रव्य नहीं खाऊंगा, आज मैं केवल एक ही द्रव्य लूंगा, अमुक घरों के अतिरिक्त कहीं कुछ भी न खाऊंगा-पीऊंगा आदि-आदि। इस प्रकार के वृत्ति-संक्षेप से अनेक बीमारियों से बचाव हो जाता है।

रस-परित्याग

स्वास्थ्य का चौथा साधन है-रस-परित्याग, रसों का वर्जन। रसों का सेवन प्रतिदिन मत करो, कभी करो, कभी छोड़ो। इस संतुलन से शरीर की पुष्टि बनी रहेगी और विजातीय तत्त्व का निष्कासन भी सरलता से होता रहेगा। तेरापंथ धर्मसंघ में विगय-वर्जन की व्यवस्था है। अष्टमी, चतुर्दशी तथा अन्यान्य तिथियों को विगय का वर्जन करो, औषधि का सेवन किया हो तो विगय-वर्जन करो आदि-आदि। यह रस-परित्याग की एक विधि है।

प्राण ऊर्जा का व्यय रोकें

तपस्या के ये प्रारंभिक चार प्रकार स्वास्थ्य के साधन हैं। इनका उचित प्रयोग करने पर दूसरे चिकित्सक की जरूरत नहीं होती, व्यक्ति स्वयं अपना चिकित्सक बन जाता है। ऐसी बात तो नहीं है कि अल्पाहारी अथवा हिताहारी बीमार होता ही नहीं, सदा स्वस्थ ही रहता है। बीमारी के और भी अनेक कारण हैं। बाहरी वातावरण, ऋतु अथवा जीवाणु, वायरस आदि अनेक कारण हैं, जो रोग पैदा करते हैं। रोग निरोधक शक्ति की कमी से भी रोग उभरता है। रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने के लिए उपवास, ऊनोदरी आदि अचूक उपाय हैं। अधिक भोजन से ऊर्जा का व्यय अधिक होता है। ऊर्जा को बचाना अपनी शक्ति को बचाना है।

जैन परम्परा में नवकारसी, पौरुषी, पुरिमड्डु, एकासन, उपवास, दस प्रत्याख्यान आदि अनेक प्रकार के तप प्रचलित हैं। ये सारे ऊर्जा के अधिक व्यय को रोकने अथवा ऊर्जा को बचाने के प्रयोग हैं। आयुर्वेद के अनुसार माना जाता है कि प्रातः दस बजे तक कफ का प्रभाव रहता है और तदनन्तर पित्त का प्रभाव बढ़ता है। कफ के प्रभाव

काल में गृहीत भोजन, नाश्ता आदि का पाचन ठीक नहीं होता। पित्त का प्रारंभ दस बजे होता है और पूर्णता 12 बजे होती है। इसलिए जैन आगमों में जो 'एगभत्तं च भोयणं' कहा गया, वह वैज्ञानिक तथ्य है।

आज भोजनशास्त्री कहते हैं कि नाश्ता लो ही मत। यदि लेना हो तो अल्प-मात्रा में केवल तरल पदार्थ—दूध आदि ले लो। अन्य भारी पदार्थ मत लो, मिठाई मत लो। प्रातराश अथवा नाश्ते के लिए प्राकृत भाषा का शब्द है—पढमालिया। आपवादिक स्थिति में नाश्ते का विधान है। सामान्य स्थिति में मुनि के लिए केवल दिन में एक बार के भोजन का विधान है। कम बार भोजन करने से अम्लीय पदार्थों का संचय नहीं होता, विष संचित नहीं होता, आदमी स्वस्थ रहता है। इस सहज विधि को छोड़कर मनुष्य दवाओं का सहारा लेता है, परन्तु दवाएं बहुत कार्यकर नहीं होतीं।

रात्रि-भोजन का निषेध क्यों ?

आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र में लिखा—अस्तंगते दिवानाथे—सूर्य के अस्त होने पर पाचन-तंत्र निष्क्रिय हो जाता है। ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है—सूर्य। उसकी विद्यमानता में प्राणतंत्र, ऊर्जातंत्र, पाचनतंत्र सभी सक्रिय रहते हैं। सूर्य के अस्त होते ही ये सारे तंत्र निष्क्रिय होने लग जाते हैं। इसलिए यह समय भोजन के लिए उपयुक्त नहीं है। खाए हुए भोजन का रस नहीं बनता। वह अस्वास्थ्यप्रद होता है।

एक बार मेरे सामने प्रश्न आया कि जैन परम्परा ने रात्रि भोजन को अस्वीकार क्यों किया ? भला, भूख के लिए भी कोई समय निर्धारित होता है ? यथार्थता यह है कि जब भूख लगे तब खा लो। यह एक नियम ही पर्याप्त है। भूख के लिए क्या रात और क्या दिन ? क्या प्रकाश और क्या अंधकार ?

बैंगलोर में एक सम्मेलन हुआ। उसमें अनेक वैज्ञानिकों ने भाग लिया। वहां पर विषय प्रस्तुत हुआ कि जैन परम्परा में रात्रि-भोजन का निषेध किया गया है। उसके कारणों की जानकारी करनी चाहिए। एक व्यक्ति उन कारणों को जानने के लिए मेरे पास आया। मैं उस समय दिल्ली में था। उसने प्रश्न उपस्थित किया। मैंने कहा—रात्रि भोजन न करना धर्म से सम्बन्धित तो है ही, क्योंकि यह धर्म के द्वारा प्रतिपादित हुआ है। इसके साथ इस निषेध का एक वैज्ञानिक कारण भी है। हम जो भोजन करते हैं उसका पाचन होता है तैजस शरीर के द्वारा। हमारे पाचन की शक्ति है तैजस। उसको अपना काम करने के लिए सूर्य का आतप आवश्यक होता है। जब उसे सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता तब वह निष्क्रिय हो जाता है, पाचन कमजोर हो जाता है। इसलिए रात को खाने वाला अपच की बीमारी से बच नहीं सकता। यह कारण वैज्ञानिक है।

दूसरा कारण है कि जब सूर्य का आतप होता है, तब कीटाणु बहुत निष्क्रिय होते हैं। जैसे ही सूर्य चला जाता है, सबमें प्राण-शक्ति का संचार होता है और वे सब सक्रिय हो जाते हैं। वे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। बीमारी जितनी रात में सताती है, उतनी दिन में नहीं सताती। वायु का प्रकोप भी रात में अधिक होता है। ये सारी

बीमारियां रात में इसलिए सताती हैं क्योंकि रात में ताप नहीं होता। जब ताप होता है तब बीमारियां उग्र नहीं होतीं। जैसे ही सूर्य का ताप मिटता है, बीमारियों में शक्ति आ जाती है। कष्ट देने वाले सारे तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। रात में चोर ही नहीं सताते, ये कीटाणु भी सताते हैं। रात में नींद ही नहीं सताती, बीमारियां भी सताती हैं।

मोक-प्रतिमा : शोधन की पद्धति

प्राचीन जैन साहित्य में 'मोक-प्रतिमा' का विवरण प्राप्त है। इसका तात्पर्यार्थ है—मूत्र चिकित्सा की पद्धति। यह बीमारी के शोधन की प्रक्रिया है। जितना महत्त्व आहार का है उतना ही महत्त्व उत्सर्जन का है। उत्सर्जन का अर्थ केवल मल का उत्सर्जन ही नहीं किन्तु कोशिकाओं में संचित सूक्ष्म मलों का निष्कासन है। यह निष्कासन अनाहार के द्वारा ही संभव है। आहार का विवेक, उत्सर्जन और अनाहार—ये तीनों स्वास्थ्य के मूल साधन हैं। संतुलित भोजन मात्र से स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। इसके साथ अनशन की बात को जोड़कर ही हम स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं।

आज के पोषणशास्त्रियों तथा महावीर के स्वास्थ्य सूत्रों—दोनों को सामने रखकर जीवन चर्या चलेगी तो स्वास्थ्य घटित होगा। आहार और स्वास्थ्य को भिन्नार्थक नहीं माना जा सकता, दोनों एकार्थक बन जाते हैं।

15. आहार और धर्म

प्रश्न है धर्म के साथ खाने का क्या संबंध है? आदमी की जैसी इच्छा होती है, जैसी रुचि होती है, जैसी भूख लगती है और जैसा घर में बनता है वैसा खाता है। धर्म से खाने का क्या संबंध है? सामायिक, माला, सत्संगत आदि का धर्म से संबंध है। खाना छोड़ने का धर्म से संबंध हो सकता है पर खाने का संबंध धर्म से नहीं हो सकता। यह प्रश्न स्वाभाविक है। इस विषय पर चिन्तन भी होना चाहिए।

शाकाहार और स्वास्थ्य

आहार का सबसे पहला संबंध है स्वास्थ्य के साथ। आप बीमार होना चाहते हैं या स्वस्थ रहना चाहते हैं? अगर आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो भोजन पर ध्यान देना होगा, खाद्य संयम का अभ्यास करना होगा। खाद्य संयम और स्वास्थ्य, दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। खाते चले जाएं और स्वस्थ रहें, यह कभी संभव नहीं है। अभी अमेरिका से एक भाई आया। उसने कहा—‘अमेरिका या पश्चिमी यूरोप में मांस खाना बहुत कम हो रहा है। आज के युवक वहां मांस खाना पसन्द नहीं करते। वे धर्म के लिए इन्हें कम नहीं कर रहे हैं। वे लोग स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हैं।’

‘मांसाहार के बारे में जब यह जानकारी मिली कि मांसाहार भी स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। उन्होंने मांस खाना कम कर दिया। यूरोप और अमेरिका जैसे देशों में बहुत लोग शाकाहारी बन रहे हैं। वहां पर शाकाहारी रेस्टोरेन्ट और होटल भी बहुत संख्या में हैं। लोग शाकाहार का प्रचार कर रहे हैं। इसलिए नहीं कि वह धर्म का अंग है अपितु इसलिए कि शाकाहार से स्वास्थ्य अच्छा रहता है।’

प्रदूषण भी स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। अमेरिका आदि देशों में प्रदूषण कम करने के प्रयत्न चल रहे हैं। कारखानों को बंद कर रहे हैं। धुआं छोड़ने वाली इण्डस्ट्रीज को भी धीरे-धीरे बंद कर रहे हैं। कारखानों में उत्पादित होने वाली वस्तुओं को बाहर से आयात करते हैं। वहां कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि के माध्यम से ही व्यापार हो रहा है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के कारण ऐसा कर रहे हैं।

यदि पहले चेत जाते!

हिन्दुस्तान में विशेषतः धार्मिक लोगों में स्वास्थ्य की चेतना जागृत नहीं है। स्वस्थ कैसे रहना चाहिए, वे इस बात पर ध्यान ही नहीं देते। हमारा चिन्तन भी इस विषय में काफी विलम्ब से हुआ। जोधपुर चतुर्मास में पूज्य गुरुदेव प्रातःकाल शहर से बहुत दूर पहाड़ियों के पास पंचमी समिति के लिए पधारते थे। मैं गुरुदेव के साथ जाता था। हम

वहां से लौट रहे थे। गुरुदेव रास्ते में रुके, मेरा हाथ पकड़ा और कहा—‘महाप्रज्ञ! हम बहुत देरी से चेतने (जागे) हैं। यदि पहले चेत जाते तो अवश्य ही शतायु होते।’ गुरुदेव का यह कथन अक्षरशः सत्य था। वि.सं. 2005 से हमारे धर्मसंघ में भी बहुत परिवर्तन आया। उससे स्वास्थ्य क्रमशः ठीक होता चला गया। स्वास्थ्य के प्रति सही दृष्टिकोण का निर्माण होना भी जरूरी है। आज भी बहुत सारे धर्म करने वाले लोग स्वास्थ्य की दृष्टि से सोचते नहीं हैं, जानते भी नहीं हैं।

यौवन

आहार का दूसरा संबंध है यौवन के साथ। हर व्यक्ति युवा रहना चाहता है, बूढ़ा बनना नहीं चाहता। अवस्था से तो कोई बूढ़ा बन सकता है। गुरुदेव की भी अवस्था 83 वर्ष की थी। जिस दिन स्वर्गवास हुआ उस दिन तक युवक की तरह प्रतीत हो रहे थे। अन्तिम क्षण तक वे अपनी शक्ति का उपयोग कर रहे थे। 83 वर्ष का व्यक्ति इतना काम कर सकता है? क्या उसका इतना स्वस्थ चिन्तन हो सकता है? जिस दिन स्वर्गवास हुआ, उस दिन चार बजे से ग्यारह बजे तक लगभग चालीस प्रकार के कार्य किए। अनवरत कार्य की श्रृंखला चलती रही। यौवन का लक्षण है ऊर्जा का होना, शक्ति का होना। सात्त्विक आहार के द्वारा इन्द्रियों की, मन और मस्तिष्क की शक्ति का विकास होता है। इससे यौवन सुरक्षित रहता है।

दीर्घायु

आहार का तीसरा संबंध है दीर्घायु के साथ। अगर कोई आदमी जल्दी मरना चाहे तो खाने का असंयम करे। अल्पायु होने का सीधा उपाय है अपेक्षा से अधिक खाना। इससे शरीर में अवांछनीय रसायन बनते हैं। वे आदमी को बीमार बनाते हैं और शीघ्र ही मृत्यु की ओर धकेल देते हैं। हमारा अनुभव है कि जो व्यक्ति पचास वर्ष के बाद आहार के प्रति जागरूक हो जाता है वह स्वस्थ रहता है और लम्बी आयु प्राप्त करता है। हमने देखा है जो साधु-साधवियां और श्रावक-श्राविकाएं पचास वर्ष के बाद एकान्तर शुरू कर देते हैं, उनकी आयु दस वर्ष बढ़ जाती है। साध्वी छोगांजी, स्व. पूज्य कालूगणी की मां थीं, जिनका स्वर्गवास 96-97वें वर्ष की अवस्था में हुआ। उन्होंने एकान्तर तप शुरू कर दिया—एक दिन खाना और एक दिन न खाना। एकान्तर तप से आयु बढ़ गई। हमने साध्वी वदनाजी, पूज्य गुरुदेव तुलसी की माताजी को देखा। एकान्तर तप शुरू किया, आयुष्य वृद्धिगत हो गया।

जैन शास्त्र की भाषा में आहार पर्याप्ति जब तक ठीक रहती है तब तक आदमी जिन्दा रहता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यदि आप ज्यादा खाएं तो चयापचय की क्रिया तीव्र गति से होगी, आयु जल्दी समाप्त हो जाएगी। आप कम खाएं तो चयापचय की क्रिया मंद हो जाएगी, आयु बढ़ जाएगी। तपस्या करने वाले और पचास वर्ष की अवस्था के बाद आहार का संयम करने वाले दीर्घायु होते हैं। पचास-साठ वर्ष की अवस्था पार कर रहे हैं और मिठाइयां खाना चाहते हैं, खूब तली हुई चीजें खाना चाहते हैं, अधिक मात्रा में आहार करना चाहते हैं, दिन

में बार बार खाते हैं, चाय की तो गिनती ही नहीं है कि कितनी बार पीते हैं—इस प्रकार के लोग अपने स्वास्थ्य को खराब करते हैं, यौवन की शक्ति को नष्ट करते हैं, जीवनी शक्ति को समाप्त करते हैं, अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

प्रसंग बौद्ध जातक का

जैन, वैदिक और बौद्ध ग्रन्थों में आहार के बारे में बहुत चर्चा मिलती है। बौद्ध जातक का एक सुन्दर प्रसंग है। एक दिन एक कौआ नदी के तट पर गया। वहां एक चकवा बैठा था। वह बहुत सुन्दर था। कौआ बहुत काला था। कौए ने चकवे से पूछा—‘तुम इतने सुन्दर कैसे हो? तुम क्या खाते हो?’

चकवा बोला—‘मैं नदी की शैवाल खाता हूं और हरी पत्तियां खाता हूं।’

कौए ने कहा—‘मैं मांस खाता हूं। लोगों के घरों में जो पक्वान्न बनते हैं वो भी खाता हूं फिर भी मैं सुन्दर नहीं हूं। शैवाल और पत्तियां खाकर तुम इतने सुन्दर नहीं हो सकते।’

चकवे ने कहा—‘मेरे पर विश्वास करो और सौन्दर्य का कारण समझने का प्रयत्न करो। तुम दूसरों को कष्ट देते हो, किसी का अण्डा उठा लेते हो, किसी का बच्चा उठा लेते हो, मांस खाते हो इसलिए तुम काले हो गए।’

चकवे की बात कौआ समझा या नहीं, हम समझ रहे हैं। खाने का हमारे भावों के साथ क्या संबंध है? विचारों के साथ क्या संबंध है? साधना के साथ क्या संबंध है?

संयम का कारण

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—अधिक रसों का सेवन मत करो। दूध, दही, घी, मक्खन, मिठाई, चीनी आदि—ये सब रस हैं। भगवान् महावीर ने कहा—इन सबका संयम करो। आप किसी कार्डियोलोजिस्ट के पास जाएं और कहें कि हार्ट की प्रोब्लम है। वह सबसे पहले आपको सलाह देगा कि मलाई बंद करो, मक्खन मत खाओ, तली हुई चीजें मत खाओ। एक भाई ने बताया—‘मेरे आहार का बहुत संयम है। केवल खाखरा और उबला हुआ साग खाता हूं।’

मैंने पूछा—‘क्यों?’

उसने कहा—‘हार्ट अटैक हो गया। डॉक्टर ने कहा है कि जीना चाहते हो तो साधारण भोजन करो।’

मैंने कहा—‘तुमने हमारे कहने से आहार का संयम नहीं किया, डॉक्टर के कहने से किया है। धर्म की बात तुम्हें नहीं जची, डॉक्टर की बात माननी पड़ी है।’ धर्म की बात सुन ले तो डॉक्टर की बात सुननी ही न पड़े, सीधा काम हो जाए। धर्म की साधना खाद्य संयम के बिना संभव नहीं होती।

संवत् 2005 में मुझे प्रतिश्याय हुआ। होमियोपैथी चिकित्सा कराई। उससे वह और अधिक बिगड़ गई। दो-ढाई महीने तक बुखार ने पीछा नहीं छोड़ा। आखिर प्राकृतिक चिकित्सा करवाई। कुछ दिनों में ही नाड़ी साफ हो गई। तब

से हमारा आहार के प्रति दृष्टिकोण बदल गया। उस समय चिकित्सक से हमने पूछा—बादाम और दाल का हलुआ खाना है? उसने कहा—दाल और बादाम का हलुआ पारा है, पारे को पचाना बहुत मुश्किल है। मैंने कहा—आटे का हलुआ? उसने कहा—वह तो फिर भी ठीक है। वह खाएं तो दूसरी खाद्य वस्तुओं का सर्वथा संयम करें। भोजन में हलुआ खाया, दाल, चावल, मिठाइयां खाईं, वह पारे की तरह दुष्पाच्य होगा। बैलगाड़ी, ऊंट या ट्रक पर अत्यधिक भार लाद दिया जाए तो वे सहन नहीं करेंगे वैसे ही पेट पर यदि अत्यधिक भार डाल दिया जाए तो वह कैसे सहन करेगा?

मस्तिष्कीय शक्ति और आहार-संयम

आपकी आंतें काम कर रही हैं, लीवर भी ठीक फंक्शन कर रहा है। उन पर यदि ज्यादा भार डालेंगे तो वे काम करना बंद कर देंगे। थोड़े दिन बाद कहेंगे—तुम काम करो, हम विश्राम करेंगे। इससे पाचन बिगड़ जाएगा, सारी स्थिति बदल जाएगी। इस संदर्भ में हमें धर्म का सिद्धान्त समझना होगा। धर्म का एक सूत्र है—ऊनोदरी करना, आहार कम करना। अगर आप दिमाग को ठीक रखना चाहते हो तो भोजन का संयम करना होगा। एक ओर है पेट, दूसरी ओर है मस्तिष्क। आप किससे कार्य लेना चाहते हो? यदि दिमाग से काम लेना चाहते हो तो आहार का संयम करो, जिह्वा का संयम करो। अगर पेट बनना चाहते हो तो मस्तिष्क को कह दो—तुम विश्राम करो, हम अपना काम करेंगे।

जिस दिन मैंने यह सोचा—मुझे साहित्य का काम करना है, आगम सम्पादन का काम करना है, बौद्धिक कार्य करना है, चिन्तन करना है और नए तथ्यों को खोजना है उसी दिन से आहार का संयम शुरू कर दिया। अगर वह नहीं होता तो इतना काम नहीं होता। जो भी व्यक्ति अच्छा काम करना चाहे उसे आहार का संयम करना होगा। यह ध्रुव सत्य है; इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। कुछ लोग बहुत अधिक खा लेते हैं और पचा भी लेते हैं। उनका काम भी खाना और पचाना ही है। वे कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकते।

घर में नई बहू आई। सास ने कहा—‘जाओ, गेट पर खाट बिछा दो।’ बहू ने पूछा—‘क्यों?’ सास ने कहा—‘तुम्हारा ससुर आज यजमान के घर भोजन करने गया है। आने के बाद एक क्षण भी घर में नहीं बैठ सकता। आते ही उसे लेटना पड़ेगा।’ बहू ने कहा—‘हमारे यहां तो भोजन करने के लिए पैदल जाते हैं और लौटते समय उन्हें खाट में लाया जाता है।’ ऐसे भोजन-भट्ट खाने में कुशल होते हैं पर उनके जीवन की कोई सार्थकता नहीं होती।

मनुष्य में असीम शक्तियां निहित हैं। उसके शरीर का सबसे महत्वपूर्ण तंत्र है—नाड़ीतंत्र। जलचर, खेचर, स्थलचर आदि जितने भी प्राणी इस दुनिया में हैं उनमें नाड़ी तंत्र नहीं है। नाड़ीतंत्र (Nervous System) के दो महत्वपूर्ण भाग हैं—1. मस्तिष्क 2. रीढ़ की हड्डी। यह विकसित नाड़ीतंत्र देवताओं को भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए देवता भी कामना करते हैं कि हम मनुष्य बनें।

यदि हमें सत्य की खोज करना है, नया कार्य करना है, नया चिन्तन करना है, नया विकास करना है तो आहार का संयम जरूरी है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टाइन की जब मृत्यु हुई तो उनके मस्तिष्क की शल्य क्रिया की गई। मस्तिष्क में क्या है? इस विषय पर अनुसंधान किया गया। वैज्ञानिकों ने उनके मस्तिष्क के एक एक न्यूरॉन का गहराई से अध्ययन किया। पर किसी भी भोजनभट्ट के दिमाग की अब तक खोज नहीं हुई है। उनके पेट, आंत अथवा जीभ पर शोध किया जा सकता है किन्तु मस्तिष्क का नहीं।

हम निश्चित मानें कि धर्म के साथ खाद्य संयम का बहुत गहरा संबंध है। पूज्य गुरुदेव ने राणावास चतुर्मास (सन् 1982) में चीनी छोड़ दी। दूध भी फीका लेते थे। चीनी का बिल्कुल परिहार कर दिया। वह प्रयोग लगभग जीवनभर चला।

बहुत बार वृद्ध महिलाएं आती हैं और कहती हैं—हमें वर्षभर की आलोचना कराएं। मैं उनको कहता हूं, एक महीने मिठाई छोड़ दो। एक बहिन ने पूछा—‘क्या घर पर बनी हुई मिठाई खा सकती हूं?’ मैंने कहा—‘वह भी नहीं खा सकती।’ दूसरी बहिन ने पूछा—‘क्या हलुआ और लापसी भी मिठाई है?’ मैंने कहा—‘हां, वे भी मिठाई हैं, उनका भी वर्जन करना है।’ फिर उसने कहा—‘एक साथ एक महीना नहीं छोड़ूंगी, दो बार में 15-15 दिन छोड़ दूंगी।’ मैंने कहा—‘70-80 वर्ष की हो रही हो और मिठाई छोड़ने में इतना जोर पड़ रहा है।’ स्वाद का ऐसा आकर्षण बन गया कि मिठाई के बिना रहा नहीं जा सकता।

प्रायः साधु-साध्वियां मिठाई नहीं खाना चाहते। कुछ तो मिठाई का सर्वथा त्याग रखते हैं। मुझे त्याग तो नहीं है किन्तु कभी खाने का मन भी नहीं करता। यह विवेक की बात है, लक्ष्य की बात है। आपका लक्ष्य क्या है? यदि आप साधना अथवा किसी भी क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करना चाहते हैं तो आहार का संयम करना होगा।

ब्रह्मचर्य

आहार का ब्रह्मचर्य के साथ गहरा संबंध है। यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति ब्रह्मचारी रहे और आहार का संयम न करे। प्रेक्षाध्यान में इस विषय पर काफी विचार किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति के पास पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं—आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा। पांच कर्मेन्द्रियां हैं—पायु, उपस्थ, जननेन्द्रिय, हाथ और पैर। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का परस्पर संबंध है। जीभ और जननेन्द्रिय का गहरा संबंध है। अगर आप जीभ को संतुष्ट न करें तो जननेन्द्रिय शान्त रहेगी। जीभ को पोषण दें, आपकी वासनाएं उत्तेजित हो जाएंगी। उत्तराध्ययन सूत्र के बत्तीसवें अध्ययन में इसी विषय पर मीमांसा की गई है—अगर तुम भाव शुद्धि रखना चाहते हो, ब्रह्मचारी रहना चाहते हो तो आहार का विवेक करो।

स्वास्थ्य, यौवन, दीर्घायु, मस्तिष्क की शक्ति, साधना, भाव-शुद्धि और ब्रह्मचर्य—इन सबके साथ आहार का गहरा संबंध है। कभी-कभी सोचता हूं कि धार्मिक व्यक्ति के लिए ‘आहार विवेक’ की छोटी पुस्तिका होनी चाहिए। माला जपो, ध्यान करो, सामायिक करो, उससे पहले आहार का विवेक आवश्यक है।

वरदान बनता है खाद्य-संयम

तपस्या और आहार-संयम पर्यायवाची हैं। अगर विवेकपूर्वक तप का प्रयोग किया जाए तो उसका भी बहुत बड़ा महत्व है। उज्जैन में एक भाई था। वह लकवे (पक्षाघात) की दवा जानता था। कोई भी पक्षाघात का रोगी उसके पास जाता, वह उसे कहता—चौविहार अटाई करो, तुम्हारा लकवा दूर हो जाएगा। इस विधि से उसने कई रोगियों का उपचार भी किया।

जो लोग उपवास करते हैं, ऊनोदरी करते हैं, अटाई करते हैं, मासखमण करते हैं, उन्हें समझना चाहिए कि तपस्या के द्वारा मेरे पूर्व कृत कर्म का शोधन हो रहा है, शरीर के मलों का निष्कासन हो रहा है। पर तपस्या अच्छी कब होगी? जब आपका पारणा अच्छा होगा। पारणा अच्छा नहीं हुआ तो तपस्या भी अच्छी नहीं होगी। पारणे में ध्यान नहीं रखा तो तपस्या में जो लाभ हुआ वह उलटा पड़ जाता है। इसलिए विवेक होना चाहिए। आठ दिन की तपस्या करे तो आठ दिन तक खाने का पूरा संयम रखना चाहिए। न मिठाई, न तली हुई चीजें, न गरिष्ठ चीजें, बस केवल सामान्य भोजन। भाष्य ग्रंथों में एक विधि बतलाई है प्रतिमा की। इतनी लम्बी प्रक्रिया है कि पूरे भोजन में आने तक पचास दिन लग जाते हैं। पहले कोरा रस लो, फिर गर्म पानी लो। एक क्रम से चलते हुए पचास दिन में आदमी सामान्य भोजन में आता है, उससे शरीर कंचनमय हो जाता है। आठ दिन की तपस्या की। शरीर के काफी दोष बाहर निकल गए पर पारणे में ध्यान नहीं रखा तो समस्या उत्पन्न हो सकती है। विवेक होना चाहिए कि क्या खाएं, कैसे खाएं? धार्मिक आदमी को सोचना है कि मेरा आहार कैसा होना चाहिए, मुझे क्या खाना चाहिए? सब दृष्टियों से सोचें। स्वास्थ्य ठीक रहे और साथ में धर्म की आराधना भी ठीक चले तो खाद्य संयम जीवन के लिए वरदान बन जाता है।

16. आहार और व्यवहार

जहां समूह है, समुदाय है, एक से दो हैं वहां व्यवहार भी होता है। प्रश्न है—आहार का व्यवहार पर क्या प्रभाव होता है और व्यवहार का आहार पर क्या प्रभाव पड़ता है? दोनों पक्ष हैं हमारे सामने।

आहार को केवल खाने तक सीमित न करें। आहार की सारी प्रक्रिया का चिंतन करें। एक आदमी ने खाया, खाने के बाद उसका रस बनता है, लहू बनता है, मांस बनता है, मेद बनती है, हड्डियां बनती हैं, मज्जा बनती है और उससे शुक्र बनता है।

दूसरा क्रम है ग्रहण, परिणमन और विसर्जन का। व्यक्ति खाता है वह ग्रहण हो गया। फिर उसका परिणमन करता है, पाचन करता है। जो सार अंश है वह ले लेता है, शेष असार का रेचन करता है, विजर्सन करता है। ये तीन क्रियाएं हो गईं—खाना, पचाना और रेचन करना।

जैसा आहार वैसा उद्गार

हम व्यवहार पर विचार करें तो तीन क्रियाओं पर विमर्श करना चाहिए। जो खाते हैं उसका व्यवहार पर असर होता है। आदमी जैसा भोजन करता है वैसा व्यवहार होता है। कवि के मन में कल्पना हुई कि दीपक प्रकाशी है। इसमें धुआं क्यों होता है? इस विषय में एक वैज्ञानिक का मत अलग होगा और एक कवि का मत अलग होगा। कवि कल्पना पर चलता है, विज्ञान यथार्थ पर चलता है। जो सौन्दर्य, माधुर्य कल्पना में होता है वह यथार्थ में नहीं होता, वहां नीरसता आ जाती है। कवि की कल्पना है—दीपक अंधेरे को खाता है। जैसा आहार वैसी डकार, वैसा उद्गार होगा। दीया अंधेरे को खाता है इसलिए उसका रेचन भी काला होगा, कज्जल बनेगा, धुआं होगा। यह धुआं और कज्जल उसका उद्गार है। अंधेरे को खाया तो वमन में भी अंधेरा ही निकलेगा। जैसा खाते हैं वैसा रेचन होता है। क्योंकि आहार का मन पर असर होता है, शरीर की धातुओं पर असर होता है और उसका हमारे व्यवहार पर भी असर हो जाता है।

अगर अच्छा पाचन होता है तो लिवर ठीक काम करता है, आंतें ठीक काम करती हैं। पाचन अच्छा होता है तो व्यवहार भी अच्छा रहता है। जिस व्यक्ति का पाचन अच्छा नहीं होता, लिवर ठीक काम नहीं करता, उस व्यक्ति का व्यवहार भी चिड़चिड़ेपन से युक्त होगा। पाचन तंत्र ठीक काम कर रहा है, किडनी ठीक काम कर रही है, लिवर ठीक काम कर रहा है, छोटी-बड़ी आंतें ठीक काम कर रही हैं तो व्यक्ति का व्यवहार संतुलित होगा।

ये अवयव ठीक काम नहीं करते तो एक पढ़े-लिखे समझदार व्यक्ति का व्यवहार भी असंतुलित हो जाएगा। वहां पढ़ाई काम नहीं देती। भीतरी रासायनिक परिवर्तनों के आधार पर व्यवहार बनता है। भीतर विकृत रसायन पैदा होते हैं तो समस्या पैदा हो जाती है।

वात, पित्त और कफ का संतुलन

आयुर्वेद के अनुसार तीन मुख्य तत्त्व माने गए हैं—वात, पित्त और कफ। ये संतुलित होते हैं तो आदमी स्वस्थ होता है, उसका विचार स्वस्थ होता है और व्यवहार भी स्वस्थ होता है। ये तीनों असंतुलित होते हैं, विषम होते हैं तो समस्या पैदा करते हैं। विषमता अधिक बढ़ जाती है तो व्यक्ति सन्निपात की स्थिति में आ जाता है और मानसिक विकृति पैदा हो जाती है।

हर समझदार व्यक्ति को आहार के बारे में इतना निर्णय अवश्य करना चाहिए कि वात प्रधान—वायु को अधिक बढ़ाने वाला, कफ प्रधान—कफ को ज्यादा बढ़ाने वाला और पित्त प्रधान—पित्त को ज्यादा बढ़ाने वाला भोजन अच्छा नहीं है।

पहला रसायन है पित्त। अगर पित्त बिल्कुल नहीं है तो दिमाग कमजोर हो जाएगा। आदमी के बौद्धिक विकास में पित्त का बड़ा योग है। अगर पित्त ठीक नहीं बनता है तो बौद्धिक विकास नहीं होगा। व्यक्ति चिंतनशील नहीं बनेगा और कोई अच्छा काम भी नहीं कर सकेगा। पित्त संतुलित रहे। ज्यादा पित्त बढ़ा तो गुस्सा आने लग जाएगा। जिस व्यक्ति को, चाहे विद्यार्थी है, चाहे बड़ा है, चाहे साधक है, गुस्सा अधिक आता है तो समझना चाहिए कि वह पित्त को बढ़ाने वाला भोजन ज्यादा कर रहा है, उसके पित्त की उग्रता है इसलिए पित्त का शमन हो ऐसा उसका उपचार करना चाहिए।

दूसरा रसायन है वायु। वायु गतिशील है। वह जहां कफ और पित्त को ले जाना चाहती है, वहां ले जाती है और सब जगह उसका तर्पण कर देती है।

पित्तं पंगुः कफः पंगुः, पंगवः सर्वधातवः।

वायुना यत्र नीयन्ते, तत्र गच्छन्ति ते तथा॥

जैसे हवा मेघ को चलाती है, वैसे ही पित्त और कफ को चलाने वाला गतिशील तत्त्व है—वायु। वायु की मात्रा एक सीमा तक बहुत आवश्यक है। किंतु जब वायु की मात्रा बढ़ जाती है तब व्यवहार भी बदलता है। जिसमें वायु का प्रकोप ज्यादा है उसका मन ज्यादा चंचल हो जाएगा, डरने लग जाएगा। बहुत लोगों को बिना कारण भय लगता है। अंधेरे में भय लग सकता है, पर दिन में भी लगता है। अकेले में डर लगता है और सबके बीच में भी डर लगता है। भय की अति मात्रा हो जाती है। पग-पग पर भय लगता है। कहीं पुल पार करना है तो भी डर लगता है कि खंभा टूट न जाए। हर बात में भय लगता है। कारण है वायु की अधिकता। उसका संतुलन हो तो भय भी समाप्त हो जाएगा।

तीसरा रसायन है—कफ। यह संग्रह वृत्ति पैदा करता है, आदमी को लालची बनाता है। वह संग्रह काम आए या न आए, यह प्रश्न नहीं है। बस केवल संग्रह करते रहना उसकी वृत्ति बन जाती है। लालच की प्रवृत्ति, लोभ की प्रवृत्ति, ममत्व की प्रवृत्ति—इन सबके लिए कफ बहुत जिम्मेवार है।

वात, पित्त और कफ के संतुलन से हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। जब इनका संतुलन बिगड़ता है तो शारीरिक समस्याएं पैदा होती हैं, मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं। जब मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं तब आदमी का व्यवहार भी बदल जाता है। वात, पित्त और कफ असंतुलित न हो तो हमारा व्यवहार भी संतुलित रहेगा। उनके असंतुलित बनने में आहार का भी बहुत बड़ा हाथ है।

पर्यावरण का प्रदूषण

वर्तमान के वैज्ञानिकों ने बहुत सारी बातें खोजी। आज के मनुष्य का व्यवहार जटिल क्यों बन रहा है? इसका कारण क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—पर्यावरण का प्रदूषण। आजकल फैक्ट्रियों के द्वारा शीशे की मात्रा ज्यादा छोड़ी जाती है। शीशा ज्यादा जाएगा तो मनुष्य का मस्तिष्क विकृत बन जाएगा। उससे व्यवहार भी विकृत होगा और स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहेगा। भोजन में भी बहुत सारे विषैले रासायनिक तत्व जा रहे हैं। एक आहारशास्त्री ने लिखा था कि आप सेव, संतरा खा रहे हैं, समझते हैं कि स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है पर साथ-साथ यह भी सोचें कि कोरा संतरा नहीं खा रहे हैं, साथ-साथ जहर के परमाणु भी खा रहे हैं। अनेक रासायनिक द्रव्यों का कृषि में उपयोग होता है। वे अनाज में मिश्रित होते हैं और अपना प्रभाव डालते हैं। आज के आदमी का व्यवहार अगर अपव्यवहार हो तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। क्योंकि बहुत ज्यादा विषैले द्रव्यों का उपयोग आदमी के व्यवहार को बिगाड़ सकता है।

अनिवार्य है उदर शुद्धि

तीसरी बात है विसर्जन। जो खाया, परिणामन किया, उसका सार-सार ले लिया और जो असार बचा उसे मलोत्सर्ग, मूत्रोत्सर्ग या पसीने के द्वारा बाहर निकाल दिया। रेचन करना बहुत आवश्यक होता है। जिस व्यक्ति के कब्ज का रोग है, उसका व्यवहार अच्छा हो तो आश्चर्य मानना चाहिए। कब्ज सारे तत्वों को दूषित कर देती है। अपान-प्रदेश जिसका शुद्ध होता है उसका दिमाग निर्मल और शुद्ध रहता है। वह अच्छा लिख सकता है, अच्छा बोल सकता है, अच्छा पढ़ सकता है और अच्छे-अच्छे ग्रंथों का निर्माण कर सकता है। जिसका अपान-प्रदेश दूषित रहता है, कब्ज रहती है, खाया हुआ पूरा पचता नहीं है, सड़ान पैदा होती रहती है, उसके विचार भी बुरे बन जाते हैं और कल्पनाएं भी अच्छी नहीं होतीं।

बहुत सारे लोग कहते हैं—अचानक बुरी कल्पना आ जाती है, बुरे विचार आ जाते हैं। उन्हें स्वयं यह देख लेना चाहिए कि मेरा अपान-प्रदेश कैसा है? अगर वह साफ है तो फिर आपका सब कुछ ठीक रहेगा। अगर अपान दूषित

है तो व्यवहार भी अच्छा नहीं रह सकता। इसलिए जो समझदार व्यक्ति है उसके लिए यह जरूरी है कि वह खाने से ज्यादा मलोत्सर्ग पर ध्यान दे। केवल खाने पर ही ध्यान दिया और उदर शुद्धि पर ध्यान नहीं दिया, रेचन पर ध्यान नहीं दिया तो व्यक्ति न स्वस्थ रह सकता है और न उसके विचार अच्छे रह सकते हैं। खाना जरूरी है किन्तु उदर शुद्धि होना उससे ज्यादा जरूरी है। अगर हम केवल खाने को जरूरी मान लें कि खाए बिना काम नहीं चलता तो यह अच्छा नहीं है। स्वस्थता के लिए अनिवार्य है उदर शुद्धि। उदर शुद्धि नहीं हुई तो फिर खाना ही बदल जाना चाहिए।

स्वास्थ्य और साधना के लिए उपवास अथवा लंघन भी उपयोगी है। जब लगे कि आज उदर-शुद्धि नहीं हुई है तो बिल्कुल लंघन कर दें, अपने आप ठीक हो जाएगा। पूरा लंघन न कर सकें तो भारी चीज न खाएं, बिल्कुल हलका भोजन करें। उदर शुद्धि होती है तो आदमी को स्वयं हलकेपन का अनुभव होता है। जिन लोगों के कब्ज की समस्या है और कभी-कभी कब्ज नहीं रहती है, तब कहते हैं—आज दिमाग बहुत हलका है, शरीर बहुत हलका है। इसका कारण है अपान की शुद्धि।

परिस्थिति और वातावरण का प्रभाव

बाहरी परिस्थिति और वातावरण का भी प्रभाव होता है। जैसे एक आदमी त्रयोदशी को बिल्कुल अच्छा है, चतुर्दशी को सारा गड़बड़ हो जाएगा। तिथियों पर भी निर्भर है। बारस को, तेरस को वह अच्छा है। अष्टमी, चतुर्दशी आई, मानसिकता बिगड़ जाएगी, अपव्यवहार करने लग जाएगा। जैसे चंद्रमा की रश्मियों से समुद्र में ज्वार भाटा आता है, समुद्र का जल प्रभावित होता है वैसे ही मनुष्य का मन भी चंद्रमा की रश्मियों से प्रभावित होता है। अष्टमी, चतुर्दशी आदि-आदि तिथियों में ज्यादा प्रभावित होता है। यह बाहर का प्रभाव भी व्यवहार को प्रभावित करता है।

कर्म का प्रभाव

कर्म का प्रभाव भी व्यवहार को प्रभावित करता है। क्रोध का एक कारण है—आत्मप्रतिष्ठित। बाहर का कोई कारण नहीं है, कर्म का विशेष उदय आया और व्यक्ति प्रभावित हो जाता है, अपव्यवहार करता है। फिर कहा जाता है प्रेत की छाया लग गई। किसी तांत्रिक के पास जाओ। छाया वाली बात को गौण कर पहले अपनी छाया पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। अपने ग्रहों पर विचार करो, अपने पर्यावरण पर विचार करो, शरीर के तंत्रों पर विचार करो और शरीर में विद्यमान जैविक रसायनों पर विचार करो। इन सब पर विचार करो तो वह भूत-प्रेत की छाया दूर भाग जाएगी। कोई छाया पड़ गई, किसी से पूछो तो कहेगा—पैर टिक गया। ये सब गौण बातें हैं, काल्पनिक भी हो सकती हैं। यथार्थ में हमें अपने शरीर के रसायन तथा शरीर को प्रभावित करने वाले ग्रह और कर्म—इन पर ध्यान देना चाहिए। फिर हम सही निर्णय पर पहुंच पाएंगे।

एक रोगी वैद्य के पास गया, वैद्य ने कहा—तुम्हारे धातु दोष है इसलिए तुम अस्वस्थ हो।

किसी धार्मिक के पास गया, उसने कहा—तुम्हारे कर्म का दोष है।

किसी ज्योतिषी के पास गया, उसने कहा—तुम्हारे अमुक ग्रह का दोष है।

किसी वैज्ञानिक के पास गया, उसने कहा—तुम्हारे जैविक रसायनों का दोष है।

बेचारा क्या करे, उलझ जाता है।

सब बातों को हम एक बार गौण करें। हम शुरू यहां से करें कि आहार, पाचन और रेचन व्यवस्थित हो रहा है या नहीं? अगर यह व्यवस्थित हो रहा है तो बहुत सारी बातें ठीक हो जाएंगी। भूत-प्रेत लगने पर व्यक्ति जो व्यवहार करता है, वही व्यवहार वायु रोगी भी करने लग जाता है इसीलिए वायु को भूत ही कहा गया है। हिस्टीरिया की बीमारी होती तो पुराने लोग कहते कि कोई प्रेत आत्मा लग गई। जब पता लगा—यह एक बीमारी है तो उसका इलाज शुरू हो गया। बहुत सारे वायु जनित भ्रम होते हैं और उससे व्यवहार बदल जाते हैं।

हम इन तीनों पर पहले ध्यान दें जो हमारे हाथ की बात है। ज्योतिषी किसी को मिले या न मिले, ग्रहों का ज्ञान कराने वाला किसी को मिले या न मिले, और कुछ बताने वाला मिले या न मिले, जो मिला हुआ है उसको प्रयोग में लें, यह अपने हाथ की बात है। मेरा आहार कैसा है? पाचन कैसा है? और रेचन कैसे होता है? इन तीनों पर सम्यक् चिन्तन, पर्यालोचन करें तो बहुत सारी समस्याएं समाहित हो जाती हैं।

17. अहिंसा और आहार

जीवन के दो आधारभूत तत्त्व हैं—श्वास और आहार। श्वास का अर्थ है जीवन। आहार का अर्थ है जीवन। इन दोनों के बिना जीवन चलता नहीं। श्वास बन्द, जीवन की यात्रा संपन्न। आहार बंद तो कुछ ही दिनों में जीवन की यात्रा संपन्न। मनुष्य ही नहीं, प्रत्येक प्राणी आहार और श्वास के बल पर जीता है। एक छोटे से छोटा वनस्पति का प्राणी भी श्वास लेता है, आहार लेता है, इसीलिए जीता है। आहार जीवन का आधारभूत तत्त्व है।

आहार से जुड़े कुछ तत्त्व

आहार के विषय में विमर्श होता रहा है। इस विमर्श के अनेक कोण रहे हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार पर विचार किया गया कि स्वस्थ व्यक्ति का आहार कैसा होना चाहिए? इस पर बहुत सूक्ष्मता से चिन्तन किया। ऋतु के आधार पर भी मीमांसा प्राप्त है। सर्दी की ऋतु का आहार एक प्रकार का होता है और गर्मी की ऋतु का आहार भिन्न प्रकार का होता है। वर्षा ऋतु का आहार इन दोनों से भिन्न प्रकार का होता है। इससे भी सूक्ष्म विचार किया गया कि ये तो वर्ष में आने वाली तीन ऋतुएं हैं, पर एक दिन में भी ये तीनों ऋतुएं आती हैं—प्रातःकाल का आहार कैसा होना चाहिए? मध्याह्न का आहार कैसा होना चाहिए? सायंकालीन आहार कैसा होना चाहिए? इस प्रकार अनेक पहलुओं से आहार पर चिन्तन किया गया।

आहार का संबंध ब्रह्मचर्य के साथ भी जोड़ा गया। विचार किया गया कि ब्रह्मचारी का आहार कैसा होना चाहिए? सात्त्विक वृत्ति में जीने वाले का आहार कैसा होना चाहिए? व्यक्ति की भावनात्मक धारा को सात्त्विक रखने में कौन-सा आहार उपयोगी होता है? इन सब आधारों पर आहार के विषय में अनेक विधियां और वर्जनाएं दी गईं। बताया गया—अमुक प्रकार का भोजन करना चाहिए और अमुक प्रकार का भोजन नहीं करना चाहिए।

आहार का प्रस्तुत संदर्भ

आहार की प्रस्तुत चर्चा मैं न स्वास्थ्य की दृष्टि से कर रहा हूं और न ब्रह्मचर्य की दृष्टि से कर रहा हूं। मेरे सामने चर्चा का एकमात्र पहलू है अहिंसा। क्या आहार का और हिंसा का कोई संबंध है? क्या आहार का और अहिंसा का कोई संबंध है? इस संबंध की खोज करनी है। यह संबंध की खोज महत्वपूर्ण है।

आदमी जो भोजन करता है, उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में

न्यूरो-ट्रांसमीटर बनते हैं, जो पाचन-तंत्र के द्वारा संप्रेषित होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिकों ने चालीस प्रकार के न्यूरो-ट्रांसमीटरों का पता लगा लिया है। ये सारे भोजन से बनते हैं।

भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड बनते हैं। यूरिक एसिड जहर है। वह भी भोजन से बनता है। हमारी प्रवृत्ति और भोजन के द्वारा अनेक विषैले तत्व शरीर में बनते हैं। अतः इस बात को जानना होगा कि किस प्रकार का भोजन करने से क्या बनता है? जिस भोजन से विष अधिक बनता है, वैसा भोजन करने पर मानसिक समस्याएं पैदा होती हैं, भावनात्मक उलझनें बढ़ती हैं, हिंसा की वृत्ति बढ़ती है।

भोजन : दो पहलू

प्राचीन काल में भोजन के इस पहलू पर बहुत विचार किया गया कि क्या खाने से क्या होता है? आज के वैज्ञानिकों ने इस पहलू के साथ-साथ दूसरे पहलू पर भी बहुत ध्यान दिया है कि किस प्रकार के भोजन की पूर्ति न होने पर क्या होता है? दोनों पहलू हमारे सामने हैं—(1) किस वस्तु के खाने से क्या होता है? (2) किस वस्तु की पूर्ति न होने पर क्या होता है? एक प्राचीन पहलू है और एक नया पहलू।

एक आदमी बहुत चिड़चिड़ा है। चिड़चिड़ा क्यों है, इसकी खोज करने पर पता लगता है कि उसमें विटामिन 'ए' की कमी है। प्रति सौ क्यूबिक सेंटीमीटर में चीनी की मात्रा 90 से 110 मिलिग्राम होनी चाहिए। इतनी आवश्यक होती है। जिसमें इससे कम चीनी होती है, उसके शरीर पर असर आ जाता है। यदि अधिक कम होती है तो भावात्मक असर आता है। उसका स्वभाव बिगड़ जाता है। यहां तक कि वह आदमी हत्यारा बन जाता है।

एक महिला बैठी थी। एक व्यक्ति आया, उस पर गोली चलाई। वह मर गई। व्यक्ति पकड़ा गया। जज ने पूछा—'महिला को क्यों मारा?' वह बोला—'मुझे पता नहीं है कि मैंने महिला की हत्या क्यों की? उस महिला को देखते ही मन में इच्छा जागी कि इसे मार डालना चाहिए। मैंने अपनी इच्छा की पूर्ति कर दी।' उस व्यक्ति की डाक्टरी जांच हुई। डाक्टर ने जांच में पाया कि उस व्यक्ति की रक्तधारा में चीनी की बेहद कमी थी। इसका निष्कर्ष निकाला गया कि चीनी की अधिकतम कमी के कारण उस व्यक्ति के मन में हत्या की बात पैदा हुई। दूसरा कोई कारण नहीं था।

आज की खोज के संदर्भ में यह नई बात सामने आती है। शरीर में चीनी की या विटामिन की कमी होती है तो आदमी हत्यारा, चिड़चिड़ा बन जाता है। अनेक आदमी निराशा से ग्रस्त हो जाते हैं। यह रसायनों की कमी के कारण होता है। आदमी डरता है। वह निरन्तर भयग्रस्त रहता है। भय लगने के अनेक कारण हो सकते हैं। उनमें एक कारण है—विटामिन 'बी' की कमी। इस प्रकार अनेक रसायन भय, अवसाद, हत्या आदि वृत्तियों को पैदा करने वाले होते हैं।

क्यों बिगड़ता है मूड ?

आजकल एक विशेष रसायन पर बहुत खोज हो रही है, वह है 'ट्रिप्टोफेन।' यह सेरोटोनिन का निर्माण करता है। आदमी का मूड बिगड़ता है इसका मूल कारण है ट्रिप्टोफेन (Tryptophan) की कमी या सेरोटोनिन (Serotonin) की कमी। यदि यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा में होता है तो न मूड बिगड़ता है और न भय लगता है। इससे पीड़ा सहन करने की क्षमता भी बढ़ती है। आज हलकी सी पीड़ा को सहना भी कठिन होता है। आदमी तत्काल डाक्टर की शरण में जाता है, मानो वह सहना भूल ही गया हो। यह बड़ी समस्या है। यदि ट्रिप्टोफेन और सेरोटोनिन की मात्रा पर्याप्त रूप में होती है तो सहन करने की क्षमता बढ़ती है, पीड़ा को सहने की शक्ति बढ़ती है।

आजकल मांसाहार बहुत प्रचलित है। मांसाहार के विषय में एक तर्क सामने आता है कि मांस और अण्डे में प्रोटीन बहुत होता है। इस प्रोटीन की अधिक मात्रा ने मनुष्य को अधिक बीमार बनाया है, उसके मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ा है, उसे मानसिक रोगों से आक्रांत किया है। अधिक मात्रा में व्यवहृत प्रोटीन लाभप्रद नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक दिन में 10-15 ग्राम प्रोटीन आवश्यक होता है। पर मांसाहार करने वाले या अण्डा खाने वाले अधिक प्रोटीन खाते हैं। वे प्रोटीन के आधार पर ही मांसाहार का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं, शाकाहार में इतना प्रोटीन नहीं मिल सकता, इसलिए मांसाहार करना उचित है। पर वे भूल जाते हैं कि शरीर के लिए उतना प्रोटीन अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी है। प्रोटीन में भी प्राणिज प्रोटीन तो अत्यन्त हानिकारक होता है। वनस्पति का प्रोटीन उपयोगी होता है, पर वह भी मात्रा में लिया हुआ। बाजरे से जो प्रोटीन प्राप्त होता है, उसके समक्ष मांस का प्रोटीन नगण्य है। बाजरे का प्रोटीन स्वास्थ्यप्रद होता है और मांस का प्रोटीन रोग लाता है। मांसाहारी और अण्डा खाने वाला व्यक्ति जितनी भयंकर बीमारियों से ग्रस्त होता है, उतना शाकाहारी कभी नहीं होता। मांसाहारी के लिए मादक वस्तुओं का प्रयोग अनिवार्य बन जाता है, क्योंकि मांस को पचाने के लिए या तो अधिक नमक काम में लेना पड़ता है या फिर अल्कोहल का सेवन करना होता है। इनके सेवन से या तो गुर्दे की बीमारी को निमंत्रण दिया जाता है या लिवर और हार्ट की बीमारी को। मदिरा का सीधा असर लीवर और फेफड़े पर होता है। नमक का अधिक मात्रा में सेवन गुर्दे को खराब कर देता है, रक्तचाप बढ़ जाता है। आज की अनेक बीमारियों का सीधा संबंध है भोजन से। ब्लडप्रेसर, हार्टट्रबल, अल्सर, किडनी की विकृति—इन बीमारियों के अन्यान्य कारणों में भोजन भी एक मुख्य कारण है। प्रोटीन एक उपयुक्त मात्रा में आवश्यक है, किन्तु आज का भोजन प्रोटीनमय बन गया। इसीलिए अनेक बीमारियां पनपने लगीं। घुटने का दर्द भी अधिक प्रोटीन के सेवन से होता है।

भावनात्मक असन्तुलन का मुख्य घटक है आहार

आज आहार के विषय में नई-नई खोजें सामने आ रही हैं। उनसे भ्रांतियां टूटी हैं और टूटती जा रही हैं। आज माना जाने लगा है कि अधिक प्रोटीन खाना हानिकारक है। अंडे और मांस का सेवन करना बीमारी को निमंत्रण देना

है। यह भोजन बीमारियां ही नहीं बढ़ाता, भावात्मक स्थिति को भी बिगाड़ देता है। भावात्मक स्थितियों की गड़बड़ी में दो मुख्य तत्व हैं—मांसाहार और मादक वस्तुओं का सेवन।

आज की एक बीमारी है—मज्जा-क्षय। इससे हड्डियां इतनी जल्दी टूट जाती हैं, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। पैर फिसला, गिरा और हड्डी टूटी। इसका मूल कारण है मज्जा-क्षय। हड्डी का सार तत्व है—मज्जा। यह कमजोर होती जा रही है। मज्जा-क्षय के दो बड़े कारण हैं—भावात्मक असंतुलन और अतिश्रम। अति कामुकता और अति क्रोध भी मज्जा-क्षय के कारण हैं। क्रोध के आवेश में मांसपेशियों का संकुचन और फैलाव होता है। इससे मज्जा का क्षय होता है।

वर्तमान व्यक्ति में जो भावात्मक असंतुलन है, उसका आहार भी एक मुख्य घटक है। व्यक्ति के आहार में वे पदार्थ अधिक हैं जो भावात्मक असंतुलन पैदा करते हैं।

संबंध अन्न और मन का

अन्न और मन का गहरा संबंध है। दूसरे शब्दों में, अन्न और भावों का गहरा संबंध है। इसीलिए भोजन संबंधी अनेक वर्जनाएं की गईं। तामसिक भोजन नहीं करना चाहिए, मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए, प्याज-लहसुन आदि का वर्जन करना चाहिए, मांस और मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिए, आदि-आदि। योद्धाओं और हिंसकों के लिए मांस-मदिरा की छूट थी, क्योंकि क्रूर हुए बिना दूसरों का कत्लेआम नहीं किया जा सकता। योद्धा को क्रूर होना होता है तभी वह अपने शत्रुओं को घास की भांति काट सकता है। उनके लिए तामसिक आहार की उपयोगिता बताई। सात्विक आहार करने वाले के मन में करुणा जाग जाती है। वह दूसरे को मार नहीं सकता।

मांस-मदिरा का प्रयोग सीमित दायरे में था, पर आज यह समाजव्यापी बन गया। सभी क्षत्रिय और योद्धा बन गए। यह सभी में चल पड़ा, इसलिए बहुत हानि हुई।

अहिंसा का महत्त्वपूर्ण सूत्र

अहिंसा के प्रश्न पर यह विचार केवल धर्म की दृष्टि से नहीं; किन्तु शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से कर रहे हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण यह है कि किस प्रकार के भोजन से शरीर में क्या-क्या रसायन बनते हैं, एसिड बनते हैं? कौन-कौन से विष किस-किस प्रकार की वृत्ति पैदा करते हैं? आदमी थोड़ा सा श्रम करता है और थक जाता है। यह थकान श्रम करने से नहीं आती, परन्तु शरीर में संचित जहरीले द्रव्यों के कारण आती है। जब यूरिक एसिड का जमाव अधिक होता है, आदमी थोड़े से श्रम में भी थककर चूर हो जाता है। शरीर के रक्त-प्रणालियों में एसिड जम जाता है और वह रक्त के संचार में अवरोध पैदा करता है। इन विष-द्रव्यों को शरीर में जमा न होने देना—यह है अहिंसा और आहार का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र।

शरीर में विष-द्रव्य बनेंगे, उन्हें रोका नहीं जा सकता। शरीर है तो भोजन करना ही होगा। भोजन में दोनों प्रकार के द्रव्य होते हैं—अम्लांत और क्षारांत। आज अम्लांत भोजन अधिक होता है, क्षारांत कम। अम्लता से विष-द्रव्य बढ़ते हैं। उन्हें रोका नहीं जा सकता किन्तु वे संचित न हों, यह सावधानी बरती जाए तो अहिंसा के लिए रास्ता साफ हो जाता है और हिंसा की प्रवृत्तियों पर अंकुश लग जाता है।

प्रश्न है—विष-द्रव्यों का निष्कासन कैसे किया जाए? इस प्रश्न के उत्तर में सबसे पहले यह सावधानी बरतनी होगी कि विष-द्रव्य कैसे कम हों, अधिक मात्रा में न बढ़ें। दूसरी बात यह हो कि जो विष-द्रव्य जमा हो जाते हैं, उनको कैसे निकालें?

आहार का एक पहलू—अनाहार

इस सन्दर्भ में आहार के दूसरे पहलू पर विचार करना होगा। वह पहलू है—अनाहार, उपवास। उपवास आहार का ही एक पहलू है। खाना और न खाना—दोनों जुड़े हुए हैं। विष-द्रव्यों के निष्कासन का सबसे अच्छा उपाय है—उपवास। यह धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है और भावनात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। ये विष-द्रव्य भावनाओं को विकृत करते हैं। भगवान् महावीर ने कहा—

रसापगामं न निसेवियच्चा, पायं रसा दित्तिकरा नराणां।
दित्तं च कामा समभिद्वंति, दुमं जहां साउफलं व पक्खी॥

रसों का—दूध, दही, नवनीत, चीनी आदि का—अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। ये रस विकार पैदा करते हैं, आदमी को दृप्त बनाते हैं। जहां दृप्ति होती है वहां काम वासनाएं उभरने लगती हैं और वे व्यक्ति को पीड़ित करती हैं, जैसे स्वादु फल वाले पेड़ को पक्षी।

आहार और भावात्मक स्वास्थ्य

रस-त्याग की बात से मांसाहार के त्याग की बात स्वतः प्राप्त हो जाती है। मनुष्य को इस तथ्य के प्रति अधिक सावधान रहना चाहिए कि किस प्रकार के भोजन से भावात्मक स्वास्थ्य कैसा होता है। आज का आदमी केवल यह देखता है कि किस प्रकार के भोजन से शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। यह भ्रांति है। यह एक पहलू हो सकता है पर यही नहीं हो सकता। भोजन के तीन परिणाम होने चाहिए—शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और भावात्मक स्वास्थ्य। भोजन का चुनाव करते समय हमारा विमर्श होना चाहिए कि यह भोजन भावात्मक स्वास्थ्य को बढ़ाने वाला है या घटाने वाला? दूसरा विमर्श यह हो कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है या हानिकारक? तीसरा विमर्श यह हो कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपकारक है या हानिकारक? केवल शारीरिक स्वास्थ्य के पहलू को

ही ध्यान में रखकर भोजन का चुनाव उपयुक्त नहीं है। यदि भावनात्मक स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो केवल शारीरिक स्वास्थ्य से क्या होगा ?

भोजन के विमर्श का पहला बिन्दु है—भावनात्मक स्वास्थ्य। भावनात्मक स्वास्थ्य का सीधा संबंध है अहिंसा से। जिसका भावनात्मक स्वास्थ्य जितना अच्छा होगा, वह उतना ही अच्छा अहिंसक होगा। जो भावात्मक दृष्टि से बीमार होगा, वह हिंसक होगा, अपराधी होगा, हत्यारा होगा। ये अपराध और हत्याएं भावनात्मक अस्वास्थ्य के कारण होती हैं।

चिन्तन की दयनीय स्थिति

आज चिंतन के क्षेत्र में दयनीय स्थिति बनी हुई है। आज सब कुछ शरीर की दृष्टि से सोचा जाता है। उसके बाद नंबर आता है मन का। मन के विषय में बहुत कम सोचा जाता है। भावनात्मक दृष्टि से सोचना तो नहीं के बराबर है। इस चिन्तन-धारा को बदलना जरूरी है। विचार का मुख्य पहलू होना चाहिए भावना, फिर मन और फिर शरीर। जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला तत्व है भावना। जैसा भाव वैसा मन और जैसा मन वैसा शरीर। अनेक विकार भाव के कारण उत्पन्न होते हैं। अनेक बीमारियां भाव के कारण होती हैं। भाव मन को प्रभावित करता है, मन बीमार हो जाता है। जब मन बीमार हो जाता है, शरीर बीमार बन जाता है।

क्या है आहार का पैरामीटर ?

तीन शब्द हैं—आधि, व्याधि और उपाधि। व्याधि है—शरीर की व्यथा, आधि है—मानसिक व्यथा और उपाधि है—भावनात्मक व्यथा। प्रश्न है—पहले किस पर चोट करें? सामान्यतः शरीर पर चोट करने की ही बात सामने आती है किन्तु गहरे में उतर कर विचार करेंगे तो प्रतीत होगा कि सबसे पहले चोट करनी चाहिए उपाधि पर, भावनात्मक व्यथा पर। काम, क्रोध, अहं, ईर्ष्या, माया, लोभ—ये सब भावनात्मक दोष हैं। सबसे पहले इन पर चोट होनी चाहिए। इन पर चोट किए बिना भावनाओं को स्वस्थ नहीं रखा जा सकता। भावनाओं के स्वास्थ्य के साथ भोजन का प्रश्न जुड़ा हुआ है।

आज के आहार का पैरामीटर है—स्वादिष्ट, दिखने में सुन्दर, चटपटा आदि। इसके आगे कोई सोचता ही नहीं। न भोजन का संयोजन करने वाला सोचता है, न भोजन बनाने वाला सोचता है और न खाने वाला सोचता है।

ध्यान साधक के लिए भोजन का विवेक बहुत आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान का महत्वपूर्ण उद्देश्य है जीवन शैली को बदलना। जीवन शैली को बदलने का महत्वपूर्ण पहलू है आहार को बदलना। आहार में परिवर्तन आना चाहिए। यह परिवर्तन भावनात्मक परिवर्तन का हेतु बनता है। भावनात्मक स्वास्थ्य अच्छा होगा तो हिंसा की वृत्तियां अपने आप क्षीण होंगी, अहिंसा का विकास होगा।

18. भोजन और रोग

रोग की उत्पत्ति के नौ कारण बतलाए गए हैं—

1. अति भोजन
2. अहितकर भोजन
3. अध्यशन
4. भोजन की प्रतिकूलता
5. उच्चार-प्रस्रवण का निरोध
6. अति निद्रा
7. अति जागरण
8. यात्रा
9. काम-विकार।

इनमें प्रथम चार और अंतिम कारण भोजन से सम्बन्धित है।

अति भोजन करने से अजीर्ण होता है और उससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

अहितकर भोजन से सारा संतुलन बिगड़ जाता है।

किए हुए भोजन के जीर्ण न होने पर पुनः भोजन करना अध्यशन है। इससे आमाशय पर अधिक दबाव पड़ता है।

भोजन की प्रतिकूलता होने पर खाने में प्रसन्नता नहीं रहती। रुचि के अभाव में खाया हुआ भोजन भी व्यर्थ चला जाता है। दूसरी बात है कि जिस व्यक्ति के शरीर के लिए जो अनुकूल रूप में परिणत होता है वह अनुकूल भोजन होता है। उसमें फिर चाहे रूखी-सूखी रोटी और छाछ ही क्यों न हो। जिसके शरीर के लिए जो अनुकूल नहीं है, वह फिर चाहे मिष्ठान्न हो, हलुआ हो, कुछ भी हो, वह प्रतिकूल भोजन है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और व्यक्ति की अपेक्षा से ही अनुकूल, प्रतिकूल की चर्चा की जा सकती है। ये दोनों सापेक्ष शब्द हैं। एक व्यक्ति के लिए अनुकूल वस्तु दूसरे के लिए प्रतिकूल हो सकती है और इसी प्रकार प्रतिकूल वस्तु अनुकूल हो सकती है। हम इसकी निरपेक्ष व्याख्या नहीं कर सकते।

शरीर बीमार होता है क्योंकि उसमें विष जमा होते जाते हैं। वे विष नहीं निकलते हैं तो बीमारी पैदा हो जाती है। विष निकालने का सबसे बड़ा साधन है—मल-मूत्र का विसर्जन। मल में विष होता है। मूत्र में विष होता है। जब मल-मूत्र निकल जाते हैं तब आदमी स्वस्थता का अनुभव करने लग जाता है। मल नहीं निकलते हैं तो आदमी बेचैन हो जाता है। मल के जमाव का अर्थ है कोष्ठबद्धता। कोष्ठबद्धता का मूल कारण है विटामिन 'बी' की कमी।

आज व्यक्ति का भोजन इतना निस्सार बना हुआ है कि सार उसमें कुछ लगता ही नहीं। आदमी चोकर को फेंक देता है और कोरे आटे की रोटी खाता है। जो सार था उसे फेंक दिया गया और जो पीछे निस्सार बचा उसे खाता जा रहा है। चोकर में सबसे अच्छा लोहा मिलता है। औषधि के रूप में आदमी वैद्य या डॉक्टर से जो लोहा या मिनरल्स लेता है, वे रक्त के साथ घुल नहीं पाते। चोकर से प्राप्त लोहा रक्त के साथ सीधा घुल जाता है। जो व्यक्ति चोकरयुक्त आटे की रोटी खाता है वह कभी कोष्ठबद्धता (कब्ज) से पीड़ित नहीं होता। केवल चोकर का प्रयोग भी पेट के लिए लाभप्रद होता है।

आदमी करेला खाता है। उसका साग बनाता है, पर बीज निकाल देता है। दूसरे शब्दों में सारभूत भाग निकाल देता है और असार चीज खाता है। आदमी केला या सेव खाता है, पर छिलके को निकाल देता है। केले के छिलके और सेव के छिलके में कितने तत्व भरे पड़े हैं, वह नहीं जानता। उसे तो वह चाहिए जो जीभ को स्वाद लगे।

हृदय और गुर्दे सफाई का काम करते हैं और वे निरन्तर कार्यरत रहते हैं। उन्हें विश्राम ही नहीं मिल पाता। पर आदमी ऐसा भोजन करता है कि उन्हें अपनी शक्ति से अतिरिक्त काम करना पड़ता है। नमक के निष्कासन में गुर्दे को कितना अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है, यह डॉक्टर जानते हैं। यदि आदमी को इस श्रम की वास्तविकता ज्ञात होती तो वह कभी अधिक नमक नहीं खाता।

शरीर में रक्त को साफ करने और विषों को निकालने की पूरी व्यवस्था है, अनेक साधन हैं, द्वार हैं, अन्यथा मनुष्य की विष-संग्रह की प्रवृत्ति से न जाने वह कभी का रुग्ण होकर मर जाता। मनुष्य आहरण या आहार के द्वारा स्वयं पर अत्याचार करता है और स्वयं ही उनके कटु परिणामों को भोगता है, फिर भी अपनी अत्याचार करने की प्रवृत्ति को छोड़ नहीं पाता। यह कितना बड़ा आश्चर्य है!

भोजन आरोग्य देता है तो रोग भी बढ़ाता है।

कुछ लोग कभी कम खाते हैं और कभी अधिक। वे कभी विरुद्ध भोजन करते हैं तो कभी असंतुलित। शरीरशास्त्रियों का कहना है—भोजन न अतिमात्रा में होना चाहिए और न हीन मात्रा में। भोजन आमाशय में जाता है। आमाशय अपनी शक्ति के अनुसार ही उसका घोल बनाता है। अधिक मात्रा होने से कुछ घोल कच्चा रह जाता है, जिसे 'आंव' कहते हैं। आंव का संचय अनेक रोगों को उत्पन्न करता है। भोजन की हीन मात्रा भी मलोत्सर्ग में रुकावट पैदा करती है। उससे भी बाधाएं उत्पन्न होती हैं। बार-बार खाना भी हानिकारक है। अन्न तीन घंटे से पहले नहीं पचता। पचने से पूर्व खाने से घोल कच्चा ही रह जाता है।

इन सारे तथ्यों से यह स्पष्ट है कि भोजन का अज्ञान ही व्यक्ति को बीमार बनाता है।

रोग की उत्पत्ति का एक कारण है काम-विकार। जीभ और काम-विकार का संबंध है। कामवासना की उत्पत्ति में भोजन भी एक कारण बनता है। स्वाद के स्पन्दन काम के स्पन्दन को पैदा करते हैं। काम-विकार का एक अर्थ

है—इन्द्रियों के विषयों का कुपित हो जाना। 'इन्द्रियार्थ-विकोपन' अर्थात् काम-विकार। इन्द्रियों के अपने-अपने विषय हैं। वे उन इन्द्रियों के भोजन हैं, आहार हैं। जब उनके साथ आसक्ति जुड़ती है, ममत्व का भाव जुड़ता है, राग जुड़ता है तब वे कुपित हो जाते हैं। यह भी उनके आहार (आहरण या भोजन) से होने वाला कोपन है। काम-विकार से उन्माद आदि रोग ही उत्पन्न नहीं होते, वह व्यक्ति को मृत्यु के द्वार तक भी पहुंचा देता है। काम-विकार के दस दोष (रोग) क्रमशः उत्पन्न होते हैं—

1. काम के प्रति तीव्र अभिलाषा
2. प्राप्ति की चिन्ता
3. सतत स्मृति
4. उत्कीर्तन
5. उद्वेग
6. प्रलाप
7. उन्माद
8. व्याधि
9. जड़ता, अकर्मण्यता
10. मृत्यु।

19. हृदयरोग : कारण और निवारण (1)

बहुत प्राचीन काल से रोग और आरोग्य पर विचार होता रहा है। जैसे रोग के कारण शरीर के भीतर भी हैं, बाहर भी हैं, वैसे ही आरोग्य के हेतु शरीर के भीतर भी हैं, बाहर भी हैं। यदि हम भीतर के कारणों को ठीक प्रकार से समझ लें, उनके लिए एक विशेष प्रकार के दृष्टिकोण का निर्माण करें तो समस्या का काफी समाधान होता है। जहां मनुष्य के शरीर में जीवनी-शक्ति है, वहां उसके व्यवहार में रोग प्रतिरोधक शक्ति भी है।

जीवन का मूल आधार है प्राणशक्ति। उसके द्वारा जीवन का संचालन होता है। जब तक प्राण-शक्ति है, तब तक प्राणी जीता है। जब प्राण-शक्ति समाप्त होती है, तब कारण मिलने पर भी प्राणी मरता है और कारण न मिलने पर भी मरता है। मृत्यु सहेतुक और अहेतुक, दोनों प्रकार की हो सकती है। हमारे दो मुख्य प्राण हैं—प्राण-प्राण और अपान प्राण। इनकी विकृति रोग पैदा करती है और इनकी स्वस्थता आरोग्य। स्वास्थ्य के लिए प्राण इतना महत्वपूर्ण है, फिर भी उसे किसी यंत्र के द्वारा पकड़ा नहीं गया और पकड़ा भी नहीं जा सकता। प्राण सूक्ष्म है। पकड़ा जा रहा है अवयव का रोग। किसी अवयव में कोई विकृति आती है, उसको मनुष्य पकड़ सकता है। इसलिए वर्तमान में जो आवयविक रोग हैं, उन पर विचार होता है, उनकी चिकित्सा होती है। हृदय का रोग, किडनी का रोग, लीवर का रोग—इस प्रकार अवयव के साथ रोग जुड़ा हुआ है।

हृदय परिवर्तन का अर्थ

आज हृदय रोग का संदर्भ हमारे सामने है। हृदय जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। अनेकान्त दृष्टि से विचार करें तो केवल हृदय को ही जीवन का महत्वपूर्ण अंग नहीं माना जा सकता। अनेक अवयव ऐसे हैं, जो जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। हृदय अच्छा काम कर रहा है, किन्तु किडनी फेल हो गई तो क्या होगा? अनेक समस्याएं पैदा हो जाएंगी। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है—सब अवयव अच्छा काम कर रहे हैं, हार्ट फेल हो गया तो क्या होगा? जीवन खतरे में पड़ जाएगा। जिसका जीवन के साथ इतना गहरा सम्बन्ध है, उसके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना अपेक्षित है।

वस्तुतः श्वास और हृदय—ये जीवन के पर्यायवाची जैसे बने हुए हैं। हृदय धड़कता है, आदमी काम करता है। हृदय बन्द हुआ, आदमी निष्क्रिय हो जाएगा।

आयुर्वेद में हृदय दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। एक हृदय वह है, जो धड़कता है, रक्त का शोधन करता है। एक हृदय वह है, जो मस्तिष्क में है। बहुत प्रचलित शब्द है हृदय-परिवर्तन। हृदय-परिवर्तन का एक अर्थ है—जो

हृदय विकृत हो गया, उसके स्थान पर दूसरा कृत्रिम हृदय लगा देना। वस्तुतः यह हृदय-परिवर्तन नहीं, हृदय का प्रत्यारोपण है। हृदय-परिवर्तन का एक अर्थ है भाव को बदल देना, चिन्तन और मानसिकता को बदल देना। वह हृदय है हमारा मस्तिष्क। जो शारीरिक क्रिया कर रहा है, वह हृदय एक मांसपिण्ड है। हम उस हृदय पर विचार कर रहे हैं, जो हमारे जीवन की गत्यात्मकता के लिए उत्तरदायी है। यह माना जाता है कि यदि ठीक व्यवस्था चले तो हृदय आदि अवयव सैकड़ों वर्षों तक अपना काम कर सकते हैं। उनकी इतनी क्षमता है किन्तु वह क्षमता काम में नहीं आती, उसका उपयोग भी नहीं किया जाता।

अध्यवसान

भगवान् महावीर ने अकाल मृत्यु के अनेक कारण बतलाए। अकाल मृत्यु का अर्थ ही है कि हमारे शरीर के सारे अवयव अपना काम करना बंद कर देते हैं और असमय में ही व्यक्ति मर जाता है। अकाल मृत्यु का एक कारण है अध्यवसान, राग-द्वेष की तीव्रता। अंतःकरण में तीव्र आवेश उभरा, प्रबल आक्रोश आया, हृदय की गति इतनी प्रबल बनी कि वह व्यक्ति की अकाल-मृत्यु का हेतु बन गई। यदि अकाल मृत्यु नहीं होती है तो वह अध्यवसाय व्यक्ति को बहुत कमजोर बना देता है। हमारे शरीर के अनेक अवयवों पर अध्यवसाय का प्रभाव होता है। हृदय बहुत संवेदनशील है। भावना से बहुत प्रभावित होता है हृदय। क्रोध तीव्र आया और हृदय प्रभावित हो गया। कभी-कभी वह हृदय को इतना प्रभावित करता है कि तत्काल हार्ट-अटैक हो जाता है, व्यक्ति मर जाता है।

लोभ का तीव्र वेग भी हृदय को दुर्बल बनाता है। यदि लोभ अत्यधिक तीव्र हो जाए तो हृदयाघात से मौत भी हो सकती है। भय का तीव्र वेग भी यही स्थिति पैदा करता है। राजस्थानी का प्रसिद्ध सूक्त है—धसको पड़ग्यो। भय का इतना वेग आया कि हृदय बैठ गया, आदमी मर गया। कभी-कभी कोई डरावनी शक्ति दिख जाती है तो व्यक्ति भयाक्रान्त हो जाता है। कभी-कभी वह सपने में भयंकर स्थिति में चला जाता है। एक व्यक्ति जागृत बैठा है। अकस्मात् अंधेरा छा गया। कक्ष में पड़ी किसी चीज को देखा, यह कल्पना हो गई कि कोई भूत आ गया। यह सोचते ही हृदय वहीं बैठने लग जाता है। घृणा का वेग भी बहुत खतरनाक होता है। घृणा भी हृदय को कमजोर बनाती है। जितनी भावनात्मक प्रतिक्रियाएं हैं, वे हृदय को दुर्बल बनाती हैं। धमनियों का सिकुड़ना, धमनियों में रक्त के थक्के जमना आदि हृदयरोग के कारण हैं। किन्तु भावनात्मक प्रतिक्रिया सर्वाधिक खतरनाक है।

आहार का वैषम्य

हृदय रोग का एक कारण है आहार का वैषम्य। भोजन के लिए कैलोरी का भाग निर्धारित है। यह जो कैलोरी का सिद्धान्त है, उसका भी सदुपयोग कम होता है, दुरुपयोग अधिक होता है। अधिक कैलोरी का भोजन शायद आवश्यक नहीं होता। जितना शरीर को चलाने के लिए, जीवन-यात्रा को चलाने के लिए आवश्यक है, उससे अधिक

ही खाया जाता है, बहुत बार खाया जाता है। पाचनतंत्र को अधिक श्रम करना पड़ता है। शरीर की ऊर्जा भोजन के पाचन में ही ज्यादा खप जाती है। हृदय-रोग आहार-असंयम का एक परिणाम है।

संतुलन की चेतना

प्रश्न है—क्या हृदय-रोग के कारणों को मिटाया जा सकता है? भावनात्मक प्रतिक्रिया पर नियंत्रण किया जा सकता है? नियंत्रण का उपाय है ध्यान। आध्यात्मिक साधना के द्वारा चेतना की ऐसी स्थिति का निर्माण किया जा सकता है, जो समता अथवा संतुलन की चेतना है। संतुलन की चेतना जागती है तो भय कम हो जाता है, अभय की स्थिति बन जाती है। अन्यान्य भावात्मक प्रतिक्रियाएं भी नियंत्रित हो जाती हैं। अकस्मात् सूचना मिलती है—तुम्हारा जो अच्छा लड़का था, वह मर गया। यह सुनते ही एक व्यक्ति वेदना में चला जाता है, पागलपन और विक्षेप की स्थिति में चला जाता है। एक व्यक्ति ऐसा भी है, जो इस संवाद को सुन संतुलित रहता है। पूछा गया—आपका पुत्र चला गया। कैसा लगा आपको? उस व्यक्ति ने सहज स्वर में कहा—‘योग इतना ही था। अच्छा पुत्र था किन्तु संयोग नहीं था।’ यह अनुभूति और चिन्तन का अंतर क्यों आता है? यह अन्तर आता है चेतना की अवस्था के कारण। समता की चेतना के स्तर पर जीने वाला व्यक्ति इस प्रकार के वज्रपात को भी सह लेता है।

अनेकान्त का प्रयोग करें

मूल प्रश्न है—समता की चेतना का निर्माण कैसे किया जाए? ये जो संवेगात्मक भावात्मक प्रतिक्रियाएं होती हैं, उन्हें कैसे कम किया जाए? कैसे जीवन के प्रति जागरूक दृष्टिकोण का निर्माण हो? सबसे बड़ी बात है दृष्टिकोण का निर्माण। हमारा कोई भी आचरण और व्यवहार बाद में होता है, पहले दृष्टिकोण का निर्माण होता है। दृष्टिकोण का निर्माण कैसे करें? इसके लिए जो सबसे पहला उपाय है, वह यह है अनेकान्त का जीवन में प्रयोग करें। भगवान् महावीर ने अनेकान्त का दृष्टिकोण दिया, जिससे भावात्मक संतुलन, मस्तिष्कीय संतुलन और शारीरिक क्रियाओं का संतुलन बना रहे। जहां एकान्तवाद है, वहां आग्रह है। आग्रह में स्थिति उलझती है। आग्रह बहुत तनाव पैदा करता है। तनाव हृदय-रोग की उत्पत्ति में बहुत जिम्मेवार बनता है। आग्रह केवल बड़ी बातों का ही नहीं होता, छोटी-छोटी बातें भी आग्रह का कारण बन जाती हैं। दो भाई हैं। एक भाई ने कहा—मैं इस मकान को खरीदूंगा। दूसरे ने कहा—नहीं, मैं इसे नहीं लेने दूंगा। मकान खरीदा गया या नहीं खरीदा गया, किन्तु दोनों में एक तनाव पैदा हो गया। क्रिया और प्रतिक्रिया का चक्र शुरू हो गया। एक भाई सदा यह ध्यान रखने लगा—कहीं यह मकान खरीद न ले। दूसरा भाई इस बात के प्रति सदा जागरूक रहने लगा—मकान खरीदने में कोई बाधक न बन जाए।

यह आग्रह-जनित तनाव का एक निदर्शन है। एकान्तवाद से आग्रह और आग्रह से विग्रह की स्थिति बन जाती है। जहां आग्रह और विग्रह है, वहां तनाव अवश्यंभावी है। अनेकान्त है आग्रह का विसर्जन, दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करना। यदि दूसरे का विचार समझ में न आए, स्वीकार न हो तो अपनी बात दूसरों पर थोपने का

प्रयत्न मत करो। दूसरे के विचार को समझने का प्रयत्न करो, परस्पर मिल-बैठकर विमर्श करो। यदि विचार न मिले तो समन्वय का सूत्र खोजो। अनेकान्त का दूसरा तत्त्व है—समन्वय-सूत्र की खोज। यदि विचारों में समन्वय-सूत्र न मिले तो सह-अस्तित्व के सिद्धान्त का अनुशीलन करो।

अनेकान्त का एक सिद्धान्त है—दो विरोधी वस्तुएं एक साथ रह सकती हैं। कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं है, जिसका प्रतिपक्ष न हों। हर वस्तु में विरोधी युगल हैं। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें दो विरोधी धर्म न हों। नेगेटिव और पॉजीटिव, ठण्ड और गर्मी—दोनों एक साथ रहते हैं। जो गर्म है, वह ठंडा भी है और जो ठंडा है, वह गर्म भी है। हम किसे ठंडा मानेंगे और किसे गर्म? सर्दी और गर्मी, नेगेटिव और पॉजीटिव—सब सापेक्ष हैं। अनेकान्त का प्रयोग आग्रह को कम करता है, तनाव को कम करता है। यदि अनेकान्त का दृष्टिकोण बने तो हम अनेक बीमारियों से निजात पा सकते हैं।

हृदय-रोग और कायोत्सर्ग

एक प्रयोग है कायोत्सर्ग। यह अनेक समस्याओं से छुटकारा दिलाने वाला है। कायोत्सर्ग से शिथिलीकरण होता है, जागरूकता बढ़ती है। उससे रक्ताभिसरण की सारी क्रियाएं ठीक होती हैं। कायोत्सर्ग का अर्थ है—भेदविज्ञान, शरीर को आत्मा से भिन्न कर देना। उसका तात्पर्य है ममत्व का विसर्जन। ममत्व तनाव पैदा करता है। तनाव का पहला बिन्दु है मेरापन, ममत्व। व्यक्ति ने जिस पदार्थ को अपना मान लिया, चाहे वह अल्पमूल्य वस्त्र ही क्यों न हो, उसे कोई हानि पहुंचाएगा तो एकदम तनाव पैदा हो जाएगा। यदि वह मेरा नहीं है, तो कोई भी उसे ले जाए, तनाव नहीं होगा।

यदि हम तनाव की स्थितियों का विश्लेषण करें तो निष्कर्ष आएगा—अधिकांश तनाव ममत्व के बिन्दु से प्रारंभ होते हैं। कायोत्सर्ग साधन है ममत्व के विसर्जन का। उसका एक सूत्र है—अपने शरीर पर भी ममत्व मत रखो। यदि शरीर पर ममत्व नहीं रखोगे तो शरीर अच्छा काम देगा। यदि शरीर पर ममत्व रखोगे तो शरीर ही तनाव उत्पन्न करना शुरू कर देगा। वह तनाव हृदय को दुर्बल बनाएगा, अनेक बीमारियों को जन्म देगा। अनुभव की वाणी है—कायोत्सर्ग हृदय-रोग के लिए सर्वोत्तम दवा है। जब कभी हृदय-रोग की समस्या आती है, डॉक्टर का परामर्श होता है—बेडरेस्ट लें, पूर्ण विश्राम करें। बेडरेस्ट का सबसे अच्छा प्रयोग है कायोत्सर्ग, प्रवृत्ति का अल्पीकरण। इस अवस्था में ऑक्सीजन की खपत भी कम हो जाएगी, शारीरिक क्रिया भी अपने आप सम्यक् होने लग जाएगी। हमारी रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ेगी, इम्युनिटी सिस्टम भी सक्रिय बन जाएगा, प्राण की सक्रियता भी बढ़ जाएगी।

प्राण और अपान

प्राण की सक्रियता कायोत्सर्ग की एक महत्वपूर्ण परिणति है। योग के प्राचीन शब्द हैं प्राण और अपान। आज इन दोनों पर शोध होनी चाहिए। प्राण के साथ अपान का बहुत गहरा संबंध है। नाभि से लेकर गुदा तक का स्थान

अपान प्राण का स्थान है। जितनी अपान की शुद्धि रहती है उतना ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है। जितनी अपान की अशुद्धि रहती है, बेचैनी, उदासी, निषेधात्मक भावनाएं, हृदय को कमजोर करने वाली चेतना जागृत हो जाती है। अपान की शुद्धि प्राण को भी बल देती है। प्राण का एक स्थान माना गया है नासाग्र। प्रेक्षाध्यान की भाषा में उसे प्राणकेन्द्र कहा जाता है। प्राण नामक जो प्राणधारा है, उसका एक स्थान है हृदय। नाभि भी उसका स्थान है और पैर का अंगूठा भी उसका स्थान है। ये प्राण के स्थान हैं। जब प्राण और अपान का योग होता है, तब अनेक स्थितियां पैदा होती हैं। अपान विकृत होकर प्राण को भी विकृत कर देता है। हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि कब्ज की अवस्था में मानसिक स्थिति कैसी बनती है? बुरे विचार आते हैं। नींद भी पूरी नहीं आती। व्यक्ति अवसाद और तनाव से घिर जाता है। काम में भी बिल्कुल मन नहीं लगता। कोई दवा ली, रेचन हुआ, पेट बिल्कुल साफ हो गया। मन भी प्रसन्न हो गया, उल्लास का संचार हो गया।

मंत्र का प्रयोग

अपान शुद्धि का प्राणधारा के साथ बहुत गहरा संबंध है। इसीलिए योग में हृदय रोग के निवारण के लिए मंत्र का निर्माण भी किया गया। वह बीज मंत्र है 'लं'। इसके उच्चारण से हृदय-रोग मिटता है। लं....लं....लं यह लयबद्ध जप हृदय-रोग की समस्या के लिए महान् औषध है। शरीर में पांच तत्त्व माने गए हैं। इनमें पृथ्वी तत्त्व का बीज मंत्र है—लं। लं के उच्चारण से पृथ्वी तत्त्व सक्रिय बनता है। पृथ्वी तत्त्व का स्थान अपान का स्थान है, शक्तिकेन्द्र का स्थान है। अपान का प्राण के साथ जो संबंध है, उसे किसी नैदानिक सिद्धान्त अथवा डायग्नोसिस के द्वारा नहीं समझाया जा सकता। किन्तु प्राण और अपान की क्रिया का सम्बन्ध जानने पर प्रतीत होता है कि 'लं' का जप बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ लोगों ने हृदय-रोग की समस्या के संदर्भ में 'लं' का प्रयोग किया और उसका अनुकूल परिणाम भी आया। इसका मंत्र के साथ भी उच्चारण किया जाता है। लं के प्रयोग से हृदय-क्षेत्र में प्रतिक्रिया होती है और आरोग्य भी मिलता है।

जैन मंत्रशास्त्र में हां हीं हूं हों हं हः—इस मंत्र को बहुत शक्तिशाली माना गया है। ऐसे हृदयरोगियों को, जिनका फुफ्फुस कमजोर था, इस मंत्र का प्रयोग कराया गया, उन्हें बहुत लाभ हुआ। प्रश्न हो सकता है—लाभ कैसे मिला? इससे शक्ति का संचार होता है और अवरोध का निवारण होता है। ध्वनि विज्ञान और मंत्र विज्ञान के आधार पर इसके परिणामों की मीमांसा की जा सकती है। हृदयरोग के लिए यह उपयोगी मंत्र है। यह अनेक लोगों के अनुभवों से प्रमाणित है।

मंत्र और रंग

रोग का रंग के साथ भी संबंध होता है। कौन-सा रंग कौन से अवयव को पुष्ट करता है, यह बोध हो तो बहुत लाभ उठाया जा सकता है। वह कौन-सा रंग है, जो लीवर को शक्तिशाली बनाता है। वह कौन-सा रंग है, जो हृदय

को शक्तिशाली बनाता है। प्रत्येक अवयव का भी अपना रंग होता है। बाहर से दूसरे सहायक रंगों को ग्रहण करके भी हम उस अवयव को पुष्ट बना सकते हैं। अक्षरों के भी अपने रंग होते हैं। हां और ह्रीं का अपना रंग है। रंगों का भी परस्पर प्रभाव होता है। किस प्रकार के रंग परस्पर मिल कर किस प्रकार की स्थिति पैदा करते हैं, यह अन्वेषण का विषय है किन्तु रंग से हम प्रभावित होते हैं, यह स्पष्ट है।

इसी प्रकार अनेक मंत्र ऐसे हैं, जो हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहे हैं। हम हां ह्रीं इस मंत्र का ही संदर्भ लें। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है कि शरीर में जो विकार पैदा होता है, हमारी रोग निरोधक शक्ति को कमजोर करता है, उस विकार को निकालने के लिए हां ह्रीं का प्रयोग बहुत शक्तिशाली है। प्राचीन आचार्यों ने इस विषय पर बहुत चिन्तन किया। मूल बात है विकार का निष्कासन।

प्राकृतिक चिकित्सक भी इस बात पर बल देते हैं—विजातीय तत्त्व का संचय नहीं होना चाहिए। जितना विजातीय तत्त्व का संचय उतनी ही बीमारी। जितना विजातीय तत्त्व का निष्कासन उतना ही आरोग्य। हमारे शरीर में इतना विजातीय तत्त्व संचित रहता है, जिसकी कल्पना करना भी कठिन है। स्थूल मल भी इतना संचित हो जाता है कि कब्ज की समस्या सदा बनी रहती है। उससे हृदय भी प्रभावित होता रहता है। कितनी ही दवा देते चले जाओ, ठीक नहीं होता। क्योंकि मल का बहुत संचय है। जब तक उसका शोधन नहीं होगा, दवा क्या असर करेगी? दवा भी उसमें विष बनती चली जाती है। केवल स्थूल मल ही संचित नहीं है, प्रत्येक कोशिका में, कोशिका के अणु-अणु पर मैल संचित रहता है। वह मल ही हमारी प्रकृति को विकृत बनाए हुए है। हमारी प्रकृति है आरोग्य। विजातीय तत्त्व विकृति पैदा करता है और व्यक्ति बीमार हो जाता है। विकृति के निवारण का एक उपाय है अपान शुद्धि। अपान शुद्धि का एक शक्तिशाली प्रयोग है हां ह्रीं का जप। कोई व्यक्ति दस मिनट तक यह जप करे तो उसे अनुभव होगा कि इससे शारीरिक ही नहीं, मानसिक विकारों का भी विरेचन होता है।

दीर्घश्वास प्रेक्षा

एक प्रयोग है दीर्घश्वास प्रेक्षा। हृदय-रोग की समस्या के लिए यह भी बहुत उपयोगी है। मूल बात यह है कि इन प्रयोगों के द्वारा प्राणशक्ति बढ़ती है, इम्युनिटी सिस्टम शक्तिशाली बनता है, रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रबल होती है, बीमारी का विरेचन होने लग जाता है। यदि प्राणशक्ति को प्रबल कर प्राण-संचार का प्रयोग किया जाए और मानसिक चित्र का निर्माण किया जाए तो एक दिन ऐसा आ सकता है, जिस दिन हृदय की धमनी के अवरोध बिल्कुल समाप्त हो जाएं।

हृदय रोग और उसके लिए निवारण की इस चर्चा का समाहार करें। हृदय रोग के तीन प्रमुख कारण हैं—

अध्यवसाय

आहार

बाह्य निमित्त।

हृदय रोग निवारण के कुछ सूत्र स्पष्ट हैं—

अनेकान्त दृष्टिकोण का विकास

कायोत्सर्ग

प्राण और अपान का संतुलन

मंत्र चिकित्सा

दीर्घश्वास प्रेक्षा

रंग चिकित्सा।

ध्वनि, प्रकाश और रंग

आज के वैज्ञानिक यह मानते हैं—ध्वनि, प्रकाश और रंग—ये सारे एक ही जाति के प्रकंपन हैं। प्रकाश का उनचासवां प्रकंपन है—रंग। ध्वनि भी रंग पैदा करती है। इसीलिए कहा जाता है कि रंग को सुना जा सकता है, ध्वनि को देखा जा सकता है। विद्युत् उपकरणों के द्वारा ऐसा करना संभव है।

ध्वनि और रंग—दोनों का गहरा सम्बन्ध हमारे जीवन के साथ है। लाडनू की घटना है। एक साध्वी का रक्त बहुत पतला हो गया। नाक से रक्त निरन्तर गिरने लगा। अनेक डॉक्टरों को दिखाया, चिकित्सा करवाई पर कोई समाधान नहीं निकला। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब जीवन का बच पाना कठिन है। सब निराश हो गए। साध्वी ने कहा—‘आप मुझे कोई ध्यान और मंत्र का प्रयोग बताएं। वही मेरे लिए दवा बनेगा।’ मैंने एक मंत्र के साथ नीले रंग का ध्यान करने का निर्देश दिया। साध्वी ने निष्ठा के साथ वह प्रयोग किया। दो दिन में ही चमत्कार जैसा घटित हो गया। नाक से रक्तस्राव बन्द हो गया।

जहां चिकित्सा की प्रचलित विधियां विफल हो गईं, वहां मंत्र और रंग की चिकित्सा सफल हो गई। प्रश्न हो सकता है कि यह कैसे हुआ? कारण स्पष्ट है—जो रक्त पतला हो गया, वह नीले रंग के ध्यान से गाढ़ा हो गया। इसलिए रक्त का स्राव बंद हो गया। मंत्र और रंग के समन्वय से बहुत कुछ घटित हो सकता है। इस दिशा में अन्वेषण और अनुसंधान का बहुत अवकाश है। अपेक्षा है अनुसंधान और प्रयोग की। हृदयरोग के संदर्भ में जो प्रयोग प्रस्तुत किए गए हैं, यदि उन्हें अपनाएं, प्राण और अपान का संतुलन कर पाएं तो हृदय-रोग की संभावना को निर्मूल किया जा सकता है।

20. हृदयरोग : कारण और निवारण (2)

धम्मो मंगलमुक्कित्तुं—धर्म उत्कृष्ट मंगल है—यह भगवान् महावीर की वाणी है। प्रश्न है—धर्म को उत्कृष्ट मंगल क्यों कहा गया? क्या विशेषता है इसमें? यदि इस प्रश्न की गहराई से मीमांसा करें तो पता चलेगा कि धर्म आत्मा की शुद्धि करता है, साथ ही साथ व्यावहारिक वातावरण को भी पवित्र बनाता है, शरीर को भी स्वस्थ बनाता है। यह बात आज इस वैज्ञानिक युग में स्पष्ट होती जा रही है।

बदल गए हैं संदर्भ

प्राचीनकाल में कहा जाता था—‘धर्म करो, स्वर्ग और मोक्ष मिलेगा, अधर्म करोगे तो नरक में जाओगे।’ उस समय स्वर्ग और नरक के आधार पर धर्म की व्याख्या की गयी। किन्तु इस वैज्ञानिक युग में स्वर्ग और नरक के आधार पर व्याख्या कोई बहुत अर्थ नहीं रखती। अब व्याख्या का अर्थ और प्रकार—दोनों बदल गए हैं। आज किसी व्यक्ति से कहा जाए—तुम धर्म करो, स्वर्ग में जाओगे तो उसे विश्वास ही नहीं होगा। वह सोचेगा—आज के जीवन में इतनी सुख-सुविधाएं हैं कि इनसे ज्यादा स्वर्ग में और क्या मिलेगा? कहा जाए—‘नरक में जाना चाहोगे?’ वह कहेगा—‘नरक जाने में बुरा ही क्या है। नरक में जाऊंगा तो उसे भी स्वर्ग बना दूंगा। नरक में मित्र भी तो साथ में होंगे, फिर चिंता किस बात की है?’

स्वर्ग और नरक से संबंधित बातें आज बहुत कारगर नहीं होतीं। आज धर्म को समझने के लिए हमारा दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक होना चाहिए। धर्म उत्कृष्ट मंगल है, किन्तु कौन-सा धर्म? बताया गया—वह धर्म उत्कृष्ट मंगल है, जिसके अहिंसा, संयम और तप—ये तीन लक्षण हैं। इन तीन के आधार पर हम शरीर की व्याख्या करें, शरीर में होने वाले रोगों पर ध्यान दें तो कुछ नया प्रकाश मिलेगा। आज संदर्भ है हृदयरोग का। धर्म के संदर्भ में—अहिंसा, संयम और तपस्या के संदर्भ में इसकी मीमांसा करनी है। क्या हृदय-रोग पर धर्म का कोई प्रभाव होता है? प्रेक्षाध्यान का कोई प्रभाव होता है?

क्यों होता है हृदयरोग?

कैलिफोर्निया, अमेरिका के एक प्रोफेसर डॉ. आर्निश ने हृदयरोग पर लम्बे समय तक खोजें कीं। खोज के बाद उनके जो निष्कर्ष प्रकाशित हुए हैं, वे धर्म की व्याख्या करने वाले हैं। उन्होंने अपने निष्कर्ष में लिखा है—‘हृदय की बीमारी का मुख्य कारण है कोलेस्ट्रॉल या वसा का जमाव। रक्त में चर्बी की मात्रा बढ़ जाने पर रक्तवाहिनियों का रास्ता जाम हो जाता है। इससे हृदय-शूल, हृदयाघात या हार्ट अटैक होता है। यदि मनुष्य कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को

कम कर सके, वसा की मात्रा को कम कर सके, उसकी धुलाई-सफाई कर सके, रक्तवाहिनी के रास्तों को क्लियर रख सके तो हृदयरोग की कोई संभावना नहीं रहती। हृदयरोग की चिकित्सा बहुत वर्षों तक दवाइयों पर निर्भर रही। अब एक तरीका नया निकला है—बाइपास सर्जरी का। जब धमनियां सिकुड़ जाती हैं, ब्लाकड हो जाती हैं, तब बाइपास शल्यक्रिया से उन्हें सुचारु बनाया जाता है।

संतुलित पद्धति

डॉ. आर्निश ने बताया—बाइपास से रक्त-संचार की प्रणाली तो ठीक हो जाती है, किन्तु पहले से जो जमा हुआ कचरा है, उसका परिष्कार नहीं हो पाता, उसकी सफाई नहीं हो पाती। वह गंदगी बनी की बनी रहती है। इसलिए सफाई बहुत जरूरी है, जो मैल जमा हुआ है, उसे साफ करना नितान्त आवश्यक है। इस कचरे को साफ नहीं किया जाए तो कोरी बाइपास सर्जरी कारगर नहीं हो पाती। वह एक बार कुछ राहत भले ही दे दे, किन्तु यह समस्या का स्थायी उपाय नहीं है। इस जमा मैल की सफाई के लिए डॉ. आर्निश ने जिस पद्धति का विकास किया, वह एक संतुलित पद्धति है। उसमें उन्होंने चार बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिया—

1. व्यायाम
2. यौगिक क्रिया
3. ध्यान
4. सम्यक् आहार।

अगर इन चार बातों पर मनुष्य ध्यान दे और दवा का सीमित प्रयोग हो तो हृदय की बीमारी मिटेगी और जो रोग से आक्रान्त नहीं हैं, वे इससे बचे रहेंगे।

उपरोक्त चार बातों की हम विस्तार से समीक्षा करें। इन चारों में सबसे ज्यादा बल संयत आहार पर दिया गया। कहा गया—गरिष्ठ भोजन जहर है। यह किसी आध्यात्मिक ऋषि का स्वर नहीं है, किसी संत महात्मा की वाणी नहीं है, बल्कि एक कार्डियोलॉजिस्ट का स्वर है, जो अमेरिका का एक प्रसिद्ध डॉक्टर है। डॉ. आर्निश ने कहा—जो हृदयरोग से बचना चाहते हैं, उन्हें मांस, मछली, अण्डा और यहां तक कि दूध से बनी चीजें भी नहीं खानी चाहिए। वह चर्बी बढ़ाने वाले भोजन का सर्वथा परिहार करे। एक मुनि के लिए कहा गया—**पणीयं रसभोयणं विषं तालउडं जहा**—यह प्रणीत गरिष्ठ भोजन तालपुट जहर जैसा है। **रसेसु णो गिज्जेज्जा**—मुनि रसों में गृह्य न हो। बहुत दूध, दही, घी, मिठाइयां, चटपटी चीजें खाता ही चला जाए और हृदयरोग से बचने का स्वप्न भी देखे, ये दोनों बातें कभी संभव नहीं हैं।

चर्बीयुक्त भोजन से बचें

आज लोग बहुत जल्दी बूढ़े हो रहे हैं, जल्दी मर रहे हैं। एक समय था—जब पचास वर्ष की अवस्था में कोई चला जाता तो कहा जाता—कोई बात नहीं, पूरी अवस्था पाकर गया है। चालीस-पचास वर्ष के बाद बूढ़ा होना

स्वाभाविक माना जाता रहा है। यह स्वाभाविक नहीं है। उसे और जीना चाहिए था। धारणाएं गलत बन गईं। व्यक्ति असमय में इसलिए चला गया कि भोजन दीर्घकाल तक जीने के अनुकूल नहीं था। आहार का संयम होना ही चाहिए। ऐसा आहार न लें, जिससे कोलेस्ट्रॉल या वसा की मात्रा बढ़े। प्रणीत भोजन का अर्थ है—चर्बीयुक्त भोजन। कहा गया—मुनि को ऐसा भोजन नहीं करना चाहिए, जिसमें घी झरता हो। आहार का संयम करना बहुत कठिन है। वह इतना प्रियकर और स्वादिष्ट होता है कि व्यक्ति खाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। कोई भोज हो, विवाह-शादी का प्रसंग हो और उसमें इस तरह का भोजन न हो, यह आज संभव ही नहीं है। शादी-बारातों में तो आयोजकों की तरफ से समय के अनुसार पूरी एक तालिका बनती है। यह निश्चित होता है कि कितने बजे बारातियों को क्या-क्या दिया जाए। वह तालिका इतनी समय-बद्ध होती है कि खाने वाले को हाथ धोने की भी फुर्सत नहीं मिलती। खाने में भी होड़ और प्रतिस्पर्धा चलती है। परिणामस्वरूप पाचन-तंत्र पर जो गुजरती है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

भोजन इतना बड़ा बीमारी का कारण है, किन्तु इसी पर सबसे कम ध्यान दिया गया। आहार-संयम की बात केवल धर्म तक सीमित रही, किन्तु अब यह केवल साधना की बात नहीं है। जो व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है, हृदयरोग से बचना चाहता है, उसे आहार-संयम पर उतना ही ध्यान देना होगा, जितना एक साधक को। एक हृदयरोग विशेषज्ञ कहता है—आहार का संयम करो, तो ऐसा लगता है जैसे कोई धर्म का व्यक्ति उपदेश की भाषा में किसी गृहस्थ या श्रावक को उपदेश दे रहा है। स्वास्थ्य के लिए आज वे निर्देश दिये जा रहे हैं, जो धर्म करने वाले व्यक्ति को दिये जाते हैं। इसका एक निदर्शन है आहार-संयम।

उलझनभरी जिन्दगी

हृदयरोग का दूसरा हेतु है—उलझनभरी जिन्दगी। मानसिक तनाव या उद्वेग को भी हृदयरोग का मुख्य कारण माना गया है। आज हर व्यक्ति यही कहेगा—मैं बहुत व्यस्त हूँ। किसी से भी पूछ लें, उत्तर यही होगा। ऐसा लगता है जैसे खाली होना, फुर्सत में होना कोई अपमानजनक बात हो। व्यस्त होने का मतलब है हृदयरोग को निमंत्रण देना। आज आपने कोई काम शुरू किया। कुछ घण्टे बाद उठे तो आपका दिमाग इतना हलका होना चाहिए कि उस काम से संबंधित कोई तनाव फिर मन में न रहे। यदि ऐसा होता है तो आपका दिमाग स्वस्थ रहेगा, हृदय पर दबाव कम पड़ेगा। काम करने के बाद मन में यदि यह तनाव बना रहा कि यह काम बाकी रह गया, यह ठीक से नहीं हुआ, इस काम को इस तरह करते तो अच्छा होता, तो मान लीजिए—हृदय पर आपने एक असहनीय बोझ रख ही दिया। इससे हृदय पर दबाव पड़ेगा। यह मानसिक उद्वेग हृदयरोग का बहुत बड़ा कारण बनता है। जीवन की सबसे अच्छी शैली यह है कि ऐसा चिंतन उभरे—जो करना था, कर लिया। अब कोई काम बाकी नहीं है।

जयाचार्य ने भिक्षु जसरसायन में लिखा है—‘आचार्य भिक्षु से जब अंतिम समय में पूछा गया—‘आपका शरीर कुछ अस्वस्थ-सा हो रहा है, ऐसी स्थिति में कैसा लगता है?’ आचार्य भिक्षु ने उत्तर दिया—‘हरख हिये। मेरे हृदय में

तो बड़ा हर्ष है, कोई खेद नहीं है, क्योंकि उनायत कोई रही नहीं। मन में कोई न्यूनता रही नहीं। जो करना था, कर चुका, कोई काम मेरा बाकी नहीं है।' यह चिंतन रहे तो दिमाग बिल्कुल हलका रहेगा। बोझिल दिमाग हृदय पर भी उतना ही नहीं, बल्कि उससे ज्यादा भार लाद देता है। हाथी का भार गधा कैसे झेल सकेगा? ज्यादा भार लाद दिया जायेगा तो फिर हृदय को टूटना ही पड़ेगा।

क्रोध, भय और लोभ

क्रोध, भय आदि आवेश भी हृदय को दुर्बल बनाते हैं। लोभ और ईर्ष्या भी हृदय को दुर्बल बनाते हैं। क्रोध के बारे में हम जानते हैं कि क्रोध आयेगा तो हृदय पर तुरंत असर हो जाएगा। क्रोध की मात्रा बहुत ज्यादा होती है तो कभी-कभी हार्ट-अटैक भी हो जाता है। किन्तु लोभ भी कम जिम्मेवार नहीं है। आज छोटी अवस्था में ही बहुत सारे युवक हृदयरोग के शिकार हो रहे हैं। कारण क्या है? इसका पहला कारण है-भय का आवेग और दूसरा कारण है-लोभ का आवेग। तीसरा मानें तो वह है क्रोध का आवेग। भय भी चारों ओर से है। कानून का भय, सरकार का भय, समाज का भय, पद-प्रतिष्ठा का भय। यह भय एक संत्रास पैदा कर रहा है। लोभ भी तनाव का एक बहुत बड़ा हेतु बन रहा है। व्यक्ति सोचता है-मुझे बहुत बड़ा आदमी बनना है। पहले नम्बर का धनी बनना है, पहली पंक्ति का राजनेता बनना है। इस नम्बर वन की बात ने इतना तनाव पैदा कर दिया है, इतनी होड़ और दौड़ पैदा कर दी है कि हर आदमी इस अंधी दौड़ में शामिल हो गया है। इससे समस्याएं पैदा हो रही हैं। एक दार्शनिक ने ठीक ही कहा था-‘मैं इसलिए सुख से जीता हूं, क्योंकि मेरे मन में नम्बर वन बनने की मूर्खता कभी स्थान नहीं पा सकी।’ यह सबसे बड़ी मूर्खता है, जिसे आज आदमी पाल रहा है। लोभ अथवा आसक्ति की यह तीव्रता उसके हृदय को दुर्बल बना रही है, रोग से आक्रान्त कर रही है।

श्रम का अभाव

हृदयरोग का तीसरा कारण है-उचित श्रम का अभाव। यदि शरीर को उचित श्रम नहीं मिलता है तो प्रत्येक अवयव कमजोर होता है। जिस अवयव को जितना श्रम चाहिए, उतना न मिले तो वह निष्क्रिय होता चला जाता है। जम कर खाना खा चुकने के बाद लोग या तो खाट को तोड़ते हैं या गद्दी की शरण लेते हैं। फिर हृदयरोग नहीं होगा तो क्या होगा? श्रम शरीर के लिए ही नहीं, हृदय के लिए भी बहुत आवश्यक होता है। श्रम को नीचा मान लिया गया, किन्तु स्वास्थ्य के लिए वह कितना आवश्यक है, इस पर चिंतन नहीं किया गया। बिना श्रम के शरीर में ठीक से रक्त-संचार नहीं हो पाता और रक्त-संचार अवरुद्ध हो जाए तो फिर हृदयरोग क्यों नहीं होगा? रक्त-संचार की पूरी प्रणाली का केन्द्रबिन्दु हृदय ही है। जब रक्त-संचार ही बाधित हो गया तब हार्ट फेल क्यों नहीं होगा?

व्यायाम और यौगिक क्रिया

डॉ. आर्निश ने श्रम के लिए दो बातें बताईं—व्यायाम और यौगिक क्रिया। व्यायाम शरीर से संबंध रखता है और यौगिक क्रियाएं मन से संबंध रखती हैं। पहले कहा जाता था—जिसे हृदयरोग हो, उसे ज्यादा से ज्यादा विश्राम करना चाहिए, श्रम नहीं करना चाहिए, खाट पर लेटे रहना चाहिए। आज के डॉक्टरों ने इस मान्यता को नकार दिया है। आज कहा जा रहा है, श्रम के अभाव में हृदय की बीमारी और बढ़ जाएगी। इतनी शर्त जरूरी रखी गयी है कि श्रम उतना ही करें, जिससे थकान न आए। थकान हृदयरोग में बहुत बड़ी बाधा है। थकान न हो इतना श्रम करना बहुत आवश्यक है। यौगिक क्रियाओं में कुछ हलके आसन और प्राणायाम आते हैं। वे हृदयरोग में बहुत लाभकारी होते हैं।

शरीर प्रेक्षा

ध्यान के संदर्भ में डॉ. आर्निश का मत है कि और चाहे कुछ करें या नहीं, किन्तु शरीरप्रेक्षा का प्रयोग अवश्य करें। शरीरप्रेक्षा शब्द डॉ. आर्निश का नहीं है। वे इस बात को इस तरह कहते हैं—‘ध्यान में बैठ जाएं और चित्त को रक्त-संचार की क्रिया पर टिका दें। ध्यान करें कि हमारे शरीर में ठीक से और सुचारु रूप से रक्त का संचार हो रहा है।’ प्रेक्षाध्यान की भाषा में इसे ही शरीर की प्रेक्षा कहा जाता है। डॉ. आर्निश इस ध्यान की क्रिया के लिए एक घंटे का समय पर्याप्त बताते हैं।

अंतर है दृष्टि का

आहार का संयम, व्यायाम, यौगिक क्रिया और ध्यान—ये चार तत्व जिन्हें हृदयरोग नहीं हैं, उन्हें उससे बचाते हैं और जिन्हें है, उन्हें उससे मुक्ति दिलाते हैं। ये सारी बातें धर्मोपदेश जैसी हैं। यह विचित्र बात है—एक डॉक्टर ऐसी सलाह देता है तो व्यक्ति उसे गंभीरता से लेता है और एक धर्म का उपदेशक इन सचाइयों को प्रस्तुत करता है तो आदमी उतना ध्यान नहीं देता। उसे यह मुफ्त का सा लगता है।

अध्यापक ने छात्र से पूछा—‘सूर्य के प्रकाश और बिजली के प्रकाश में क्या अन्तर है?’ छात्र ने उत्तर दिया—‘मास्टरजी! अन्तर तो स्पष्ट है। सूर्य का प्रकाश मुफ्त मिलता है, जबकि बिजली के प्रकाश का बिल चुकाना पड़ता है।’ आज ऐसा लगता है कि बिल चुकाने वाली बात को लोग जल्दी पकड़ते हैं और मुफ्त वाली बात की उपेक्षा करते हैं।

कोलेस्ट्रॉल कैसे घटाएं?

डॉ. आर्निश की बात पर मुझे आश्चर्य हुआ कि अमेरिका में आज पचास लाख से ज्यादा लोग हृदयरोग से पीड़ित हैं। वहां बाइपास सर्जरी का तीस से चालीस हजार डालर का खर्च आता है। जो इसके उपचार हेतु कोलेस्ट्रॉल को कम करने की दवाइयां लेते हैं, उन्हें एक वर्ष में इस पर चार या पांच हजार डालर ही खर्च करना पड़ता है।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वाभाविक रूप से कोलेस्ट्रॉल कम करने में बहुत लाभ है। किन्तु दवा के द्वारा कोलेस्ट्रॉल कम करने का प्रयत्न किसी 'साइड इफेक्ट' को जन्म दे सकता है। उसके सेवन से आप किसी पारिपार्श्विक बीमारी के शिकार हो सकते हैं किन्तु विडंबना यही है कि मुफ्त वाली बात लोगों को पसंद नहीं आती। पसंद आती है वह बात, जिसमें अच्छी-खासी रकम खर्च हो रही हो।

तेज दवाओं के प्रयोग से बचें

लुधियाना (सन् 1979) की घटना है। वहां सी.एम.सी. नाम का एक बड़ा अस्पताल है। उस अस्पताल के एक वरिष्ठ फिजीशियन डॉ. मुखर्जी मिले। बातचीत के प्रसंग में डॉ. मुखर्जी ने बताया—'हमारे पास कई तरह के मरीज आते हैं। मेरा उन्हें अधिक दवा देने में विश्वास नहीं है। सामान्यतः उन्हें एक या दो दवा लिख देता हूं। लोग सोचते हैं—डॉक्टर साहब ने ठीक से प्रीस्क्रिप्शन नहीं लिखा। इतनी-सी दवा से कैसे ठीक होंगे? फलतः वह मरीज उस पचे को लेकर दूसरे डॉक्टर के पास जाता है। वह डॉक्टर एक पन्ने में जब आठ-दस तरह की दवाइयां लिख देता है, जिनकी कीमत चार-पांच सौ तक की होती है तो वह संतुष्ट हो जाता है, वह सोचता है—इन डॉक्टर साहब ने मेरा मर्ज ठीक पहचाना है।' यह एक मानसिकता बन गयी कि ज्यादा दवाइयां लेने से स्वास्थ्य जल्दी उपलब्ध हो सकेगा। इस मानसिकता को तोड़े बिना हृदयरोग का उपचार कैसे हो सकता है? शरीर की अन्य व्याधियों के लिए ली जा रही दवाइयों में प्रायः ऐसी होती हैं, जो हृदय को क्षति पहुंचाने वाली होती हैं। ज्यादा तेज दवाइयों का प्रयोग हृदय को दुर्बल बनाता है।

संदर्भ प्रेक्षाध्यान का

इस सारी समस्या पर प्रेक्षाध्यान की दृष्टि से विचार करें। जो व्यक्ति दीर्घ श्वास का नियमित प्रयोग करता है, उसके हृदयरोग की संभावना अत्यन्त क्षीण हो जाती है। श्वासप्रेक्षा के दो प्रयोग हैं—दीर्घश्वासप्रेक्षा और समवृत्ति श्वासप्रेक्षा। इसका एक तीसरा प्रयोग है—उज्जायी प्राणायाम। यह भी हृदयरोग की सबसे अच्छी दवा है। जो व्यक्ति उज्जायी प्राणायाम करता है, वह हृदय की रक्तसंचार प्रणाली को स्वस्थ बना लेता है। हृदयरोग के संदर्भ में इन प्रयोगों के बड़े सुन्दर परिणाम आए हैं।

सादा जीवन : उच्च विचार

जो व्यक्ति धर्म के अनुसार अपनी जीवनशैली का निर्माण नहीं करता, उसकी जीवनशैली बीमारियों को निमंत्रण देने वाली होती है। वर्तमान की जीवनशैली बीमारियों को बुलावा देने वाली जीवनशैली है। इतनी भागदौड़, व्यस्तता, निरंतर मानसिक तनाव, चिंता, भय और लोभ की भावना से घिरा आदमी हृदयरोग जैसी बीमारी से अछूता कैसे रह सकता है? सादा जीवन और उच्च विचार जहां है, वहां हृदयरोग क्यों आयेगा? आखिर बुरा बुरे से ही तो जाकर मिलता है। हृदयरोग एक बुराई है। वह सादा जीवन जैसी भलाई के पास क्यों जायेगी?

स्वास्थ्य का सूत्र है स्वस्थ जीवनशैली

इन वर्षों में प्रेक्षाध्यान साधना को प्रसार देने वाले अनेक केन्द्र विकसित हुए हैं, उनमें एक प्रमुख केन्द्र है—अध्यात्म साधना केन्द्र, दिल्ली। अध्यात्म साधना केन्द्र में प्रेक्षाध्यान शिविरों के साथ-साथ सूर्य किरण चिकित्सा के शिविर भी आयोजित होते हैं। इस केन्द्र के निदेशक श्री धर्मानन्द एवं डॉ. विमल छाजेड़ ने 'प्रेक्षाध्यान और हृदयरोग' तथा 'प्रेक्षाध्यान और अस्थमा'—इन दो विषयों पर परीक्षण किया। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली द्वारा स्वीकृत इन प्रोजेक्टों के बहुत उत्साहवर्द्धक परिणाम सामने आए हैं। विश्वास के साथ यह घोषणा की जा रही है—यदि व्यक्ति प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करे, श्वासप्रेक्षा और कायोत्सर्ग का निरन्तर अभ्यास करे, अपने खान-पान को सात्विक बनाए, जीवनशैली को व्यवस्थित बनाए तो हृदयरोग की संभावनाओं को मिटाया जा सकता है, हार्ट अटैक, बाइपास सर्जरी जैसी अवांछनीय घटनाओं से बचा जा सकता है। अध्यात्म साधना केन्द्र में निरन्तर साधना करने वाले श्री सूरी का कथन है—'मैं हार्ट का मरीज था। मैंने प्रेक्षा के प्रयोग किये, कायोत्सर्ग का अभ्यास किया और आज स्थिति यह है कि मुझे कभी अनुभव भी नहीं होता कि मैं कभी हार्ट की बीमारी से पीड़ित था। मुझे ऐसा लगता है कि स्वस्थ और शान्त जीवन का रहस्य मेरे हाथ में आ गया है।'

यह अनुभव एक व्यक्ति का नहीं है, इस साधना-क्रम में जीने वाले प्रत्येक व्यक्ति का है। स्वास्थ्य का सूत्र है स्वस्थ जीवनशैली। हम जीवनशैली को बदलें। अहिंसा, संयम और श्रम हमारी जीवनशैली के अंग बनें। ऐसी जीवनशैली शरीर की बीमारियों के लिए सबसे बड़ी दवा है। अहिंसा, संयम और श्रमप्रधान जीवनशैली जिसे उपलब्ध है, उसे संभवतः डॉक्टर और दवा की शरण में जाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

21. अण्डा शाकाहार नहीं है

आहार के विषय पर प्राचीन काल से ही चिन्तन चलता रहा है। आहार हमारे आचरण और व्यवहार को प्रभावित करता है। यह कहावत भी बन गई—‘जैसा खाए अन्न, वैसा होवे मन’। यह विषय आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में भी चर्चित हो रहा है। विज्ञान की भाषा है—व्यक्ति जैसा आहार करता है, वैसा न्यूरोट्रॉसमीटर बनता है। जैसा न्यूरोट्रॉसमीटर बनता है, वैसा आचरण और व्यवहार होता है।

गीता में आहार के तीन प्रकार बतलाए गए हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। जैन-आगमों में भी आहार पर विस्तृत चर्चा उपलब्ध है। जैन-दर्शन में आहार पर दो दृष्टियों से विचार किया गया। एक दृष्टिकोण रहा हिंसा और अहिंसा का। दूसरा दृष्टिकोण रहा भक्ष्य और अभक्ष्य का। आहार का शरीर और मन पर क्या प्रभाव होगा, यह विचार का एक महत्त्वपूर्ण आधार है।

हिंसा का अल्पीकरण

यदि आहार की मीमांसा करें तो उसका पहला बिन्दु होगा—हिंसा का अल्पीकरण। वह भोजन आदेय माना गया है, जिसमें हिंसा का अल्पीकरण हो। इस चिन्तन से पक्व आहार का विकल्प प्रस्तुत हुआ। पक्व-आहार वह है, जो सहज पका हुआ हो। वनस्पति के आहार को पक्व आहार कहा गया और उसी का नाम है—शाकाहार—शाक, फल, अन्न आदि। जो फल सहज पक जाते हैं, वे निर्जीव हो जाते हैं—यह सिद्धान्त सम्मत है। साधु और व्रती श्रावक के लिए यह विधान है कि वे ऐसी औषधि (अन्न) न खाएं, जिससे तृप्ति कम और हिंसा अधिक हो।

हम आहार को दो भागों में बांटें। एक है शाकाहार और दूसरा है प्राणिज आहार। वनस्पति-जन्य आहार शाकाहार है। प्राणिज आहार के भी दो प्रकार हो गए। प्राणिज आहार का एक प्रकार है—दूध, दही आदि। वह शाकाहार नहीं है, पर उसे अभक्ष्य भी नहीं माना गया है। प्राणिज आहार का दूसरा प्रकार है—अण्डा, मांस आदि। वह शाकाहार भी नहीं है और भक्ष्य भी नहीं है।

कैसे होगा शाकाहार?

यह प्रश्न अनेक बार उभरता है—अण्डा क्या है? शाकाहार है या मांसाहार? यह स्पष्ट है—अण्डा शाकाहार नहीं है। वह प्राणी के शरीर से निकला है। शाकाहार कैसे होगा? वह प्राणिज है।

प्राणिज की दो श्रेणियां बन गई—प्राणिज भक्ष्य आहार और प्राणिज अभक्ष्य आहार।

अण्डे दो प्रकार के होते हैं—निषेचित और अनिषेचित। जिस अण्डे की उत्पत्ति में मुर्गे का योग होता है, वह निषेचित है। जिसकी उत्पत्ति में मुर्गे का योग नहीं होता, वह अनिषेचित है। ऐसा कहा जाता है कि अनिषेचित अण्डा निर्जीव होता है, इसलिए वह शाकाहार है। यह एक श्लथ तर्क है। वह प्राणिज है, इसलिए शाकाहार नहीं हो सकता।

अण्डा सजीव नहीं है

दूसरा प्रश्न है—अण्डा सजीव है या निर्जीव? एक मान्यता यह है कि जो अण्डा मुर्गे और मुर्गी के योग से पैदा होता है, वह सजीव है। जो बिना मुर्गे के योग से पैदा होता है, वह निर्जीव है। अनेक वैज्ञानिकों का मत है—अण्डा कोई भी हो, निषेचित या अनिषेचित, वह सजीव ही है। अण्डा निर्जीव होता ही नहीं है। जिस अण्डे की रचना में वायु क्षेत्र होता है, वह निर्जीव कैसे होगा? भ्रूण श्वास लेता है, वह उसके सजीव होने का एक लक्षण है। एक डॉक्टर ने कहा—अण्डे में जीव नहीं होता। मैंने उसे अमेरिका के वैज्ञानिकों का अभिमत बताया, जिसमें अनिषेचित अण्डे को भी सजीव माना गया है।

मिश्रीगन यूनिवर्सिटी (अमेरिका) के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि संसार में कोई अण्डा निर्जीव नहीं है, फिर चाहे वह निषेचित (सेया गया) हो अथवा अनिषेचित।

श्री फिलिप ज. स्केम्बल ने 'पोल्ट्री फीड्स एण्ड म्यूटेशन' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी, जिसके 15वें पृष्ठ पर साफ-साफ कहा गया है कि अनिषेचित (अनफर्टिलाइज) अण्डे भी जीव-युक्त होते हैं। वैज्ञानिक स्केम्बल के शब्द हैं—'अण्डा बहुत नाजुक होता है। वह प्रतिकूल वातावरण के प्रति भी संवेदनशील होता है। वस्तुतः अण्डे की उत्पत्ति बच्चे के सृजन के लिए होती है, मनुष्य की खुराक के लिए नहीं। अण्डे में हवा के आने-जाने की नैसर्गिक व्यवस्था है। सफेद खोल के अन्दर बने सूक्ष्म छिद्रों में होकर ऑक्सीजन अंदर जाता है और जरदी की भाप कार्बनडाईआक्साइड को बाहर फेंकती है, जिससे अण्डों का भ्रूण जीवित रहकर विकास करता है। यही बात अनिषेचित (अनफर्टिलाइज्ड) अण्डों पर लागू होती है।' (अण्डा जहर ही जहर कवर पृ. 3)

डॉक्टर ने कहा—यह निश्चय ही चिन्तनीय बिन्दु है।

अभक्ष्य है अण्डा

एक व्यक्ति मांस खाता है। क्या मांस सजीव है? जिस जीव का मांस होता है, वह तो मर जाता है। मांस भी निर्जीव ही खाया जाता है। प्रश्न है भक्ष्य और अभक्ष्य का। मांस निर्जीव होने पर भी अभक्ष्य है। खाद्य पदार्थ का हमारी चेतना और मन पर क्या असर होगा, इस आधार पर भक्ष्य और अभक्ष्य का वर्गीकरण किया गया।

जैन आगम-साहित्य में गर्भ के चार प्रकार बतलाए गए हैं—

1. स्त्री के रूप में
2. पुरुष के रूप में
3. नपुंसक के रूप में
4. बिम्ब के रूप में

जहां शुक्र अल्प और ओज अधिक होता है, वहां स्त्री पैदा होती है।

जहां शुक्र अधिक और ओज अल्प होता है, वहां पुरुष पैदा होता है।

जहां शुक्र और ओज—दोनों तुल्य होते हैं, वहां नपुंसक पैदा होता है।

जहां केवल स्त्री का ओज होता है, पुरुष का शुक्र नहीं होता, वहां बिम्ब पैदा होता है।

यदि हम अण्डे को गर्भ के चार प्रकारों के संदर्भ में देखें तो बिम्ब के साथ ही उसकी तुलना की जा सकती है। यह निश्चित है—अण्डा हो या बिम्ब, वह स्त्री के गर्भाशय का स्राव है, गर्भरस है। मृत गर्भ भी निकलता है। अण्डा गर्भ का स्राव है, इस दृष्टि से वह मांस का पूर्व रूप है। यदि हम खाद्य-अखाद्य की दृष्टि से विचार करें तो अण्डा अभक्ष्य है। जो कवल है, मांस का पूर्व रूप है, मांस बीज है, गर्भाशय का स्राव है, वह सर्वथा अपवित्र और अखाद्य है।

प्रश्न प्रोटीन का

आजकल अण्डे को लोकप्रिय बनाने के लिए उसे अनेक प्रकार से विज्ञापित किया जा रहा है। ऐसा प्रचार किया जा रहा है—बहुत अच्छे प्रोटीन के लिए अण्डे खाएं। यह भी एक भ्रम है। वस्तुतः जितना प्रोटीन बाजरे में है, उतना अण्डे में नहीं है। अण्डा प्रोटीन युक्त है तो साथ-साथ हानिकारक भी है।

इण्डिया टुडे 15 अप्रैल 1991 के अंक में अण्डे और बादाम की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए एक विज्ञापन में कहा गया है—अण्डे में हाईकोलेस्टेरेल होता है, बादाम में कोलेस्टेरेल नहीं होता। बादाम वस्तुतः आपके रक्त प्रवाह में कोलेस्टेरेल के स्तर को कम करते हैं। उनमें उच्च असंतर्पक वसा होती है, जो कि हृदय की बीमारी के खतरे को उल्लेखनीय रूप से घटाती है।

जन चेतना जागृत करे

निष्कर्ष की भाषा यह है—अण्डा निषेचित हो या अनिषेचित, वह मांस का पूर्व रूप है इसलिए अभक्ष्य है। शाकाहारी के लिए सर्वथा वर्जनीय है। अहिंसा, स्वास्थ्य और अभक्ष्य होने की दृष्टि से अवांछनीय भी है। जो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से स्वस्थ रहना चाहता है, उसके लिए यह अनिवार्य है कि अभक्ष्य प्राणिज आहार का प्रयोग न करे। यदि बच्चों में प्रारंभ से ऐसी भावना विकसित की जाए, उन्हें खान-पान की शुद्धि के लिए निरन्तर प्रेरित किया जाए तो अभक्ष्य आहार के विरुद्ध एक जन-आन्दोलन का सूत्रपात, जनचेतना को जागृत करने वाले शक्तिशाली प्रयत्न का प्रादुर्भाव हो सकता है।

22. मांसाहार का निषेध क्यों?

हमारा जीवन आहार से शुरू होता है। आहार होता है तब दूसरी प्रवृत्तियां चलती हैं। जैसी प्रवृत्ति वैसा संस्कार। जितनी प्रवृत्ति उतना संस्कार। जैसा संस्कार वैसा विचार। जैसा विचार वैसा व्यवहार। व्यवहार हमारी कसौटी है। भीतरी जगत् में कौन कैसा है, हम नहीं जान पाते। मनुष्य की जो प्रतिमा व्यवहार में बनती है उसी के आधार पर उसका मूल्यांकन होता है।

अच्छा व्यवहार अच्छे विचार के बिना नहीं हो सकता। अच्छा विचार अच्छे संस्कार के बिना नहीं हो सकता। अच्छा संस्कार अच्छे आहार के बिना नहीं हो सकता। इसलिए हमारे धर्माचार्यों ने आहार-शुद्धि को प्राथमिकता दी है।

हम अच्छाई का प्रारम्भ आहार-शुद्धि के व्रत से करें। हम न खाएं, यह सबसे अच्छा है, पर संभव नहीं है। आहार हमारे जीवन की अनिवार्यता है। हम वह न खाएं जिसकी अनिवार्यता नहीं है। वनस्पति का आहार अनिवार्यता के रूप में स्वीकृत है। इसके पीछे हिंसा के अल्पीकरण, स्वास्थ्य, सात्विक संस्कार एवं विचार का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट है। ये तीनों दृष्टिकोण मांसाहार का समर्थन नहीं करते। इसलिए इन दृष्टिकोणों से मांसाहार अनिवार्यता की कोटि में नहीं आता।

खाद्यान्न के अभाव में मांसाहार की अनिवार्यता का तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रायः किया जाता है। इसके तर्क से खाद्यान्न प्राप्त होने की स्थिति में मांसाहार का समर्थन नहीं किया जा सकता। उक्त दृष्टिकोणों से तो किया ही नहीं जा सकता। आधुनिक शरीरशास्त्री, आहारशास्त्री और स्वास्थ्यशास्त्री भी अपने अन्वेषणों के आधार पर मांसाहार को शारीरिक और मानसिक—दोनों दृष्टियों से दोषपूर्ण बतलाते हैं। मांसाहार अप्राकृतिक उत्तेजना उत्पन्न करता है, सहनशीलता को कम करता है, धमनियों और शरीर के तंतुओं के लचीलेपन को नष्ट कर आयु को कम करता है, प्राणियों की व्याधि और विष को खाने वाले के शरीर में संक्रान्त करता है।

क्रूरता, क्षणिक आवेश, अधैर्य—ये मांसाहार के सहज परिणाम हैं। आदमी मांस खाकर भी जीता है और अनाज खाकर भी जीता है। इन दोनों में हम चयन करें और सोचें कि मांस की अनिवार्यता है या अनाज की अनिवार्यता? हिंसा की संभावना मांस खाने में ज्यादा है या अनाज खाने में? इस चयन का फलित होगा कि मांस खाना अनिवार्य नहीं है, अनाज खाना अनिवार्य है। क्योंकि शाकाहार का कोई विकल्प नहीं है जो मनुष्य को जीवित रख सके। मांसाहार का विकल्प है शाकाहार। मांस को छोड़ने वाला शाकाहार के बल पर जी सकता है। शाकाहारी मांस

नहीं खाता, पर मांसाहारी अनाज, फल और शाक-सब्जी खाते हैं, क्योंकि मांसाहार करने पर भी शाकाहार की अनिवार्यता का वे अतिक्रमण नहीं कर पाते। शाकाहार जीवन की न्यूनतम अपेक्षा है। उसके बिना काम नहीं चल सकता। यह अनिवार्यता का सिद्धांत है।

अनाज और मांस दोनों की तुलना में मांस का भोजन मनुष्य को अधिक क्रूर बनाता है। मांस को प्राप्त करने में मनुष्य को जितना क्रूर बनना पड़ता है, उतना अनाज को प्राप्त करने में नहीं होना पड़ता। जो लोग मांसाहारी हैं, वे भी बूचड़खाने में नहीं जाते। जहां जीवों का वध होता है, पशु-पक्षी मर जाते हैं, वहां नहीं जाते। यदि वे वहां चले जाएं तो संभव है, उनके लिए भी मांस खाना मुश्किल हो जाए। हर आदमी इतना क्रूर नहीं होता कि वह हजारों-हजारों प्राणियों की मृत्युकालीन चीखों और पीड़ाओं को झेल सके। प्राणिमात्र में प्रवाहित प्राण-ऊर्जा को अपनी प्राण-ऊर्जा के समान देखने वाले लोग मांस कैसे खा सकते हैं? नहीं खा सकते। अनाज खाने में भी हिंसा है, पर आंतरिक क्रूरता की दृष्टि से मांस भोजन की कोटि में नहीं आता। अनिवार्यता और हिंसा का अल्पीकरण इन दोनों दृष्टियों से मांस-भोजन स्वीकार्य नहीं हो सकता। जिन लोगों ने करुणा से आर्द्र होकर देखा, उन सबने एक स्वर से कहा—‘मनुष्य विवेकशील प्राणी है। वह विकल्पों का चयन करता है, इसलिए उसे मांस नहीं खाना चाहिए।’

प्राकृतिक-चिकित्सा की कुछ खोजों ने यह प्रमाणित किया है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है। मांस मनुष्य का वास्तविक भोजन नहीं है। मांसाहारी और शाकाहारी प्राणियों के भोजन-तंत्र के बनावट में मौलिक अन्तर होता है। शाकाहारी प्राणी जल पीते हैं। गाय जल को पीती है, किन्तु भेड़िया जल को पी नहीं सकता, वह उसे चाटता है। इस भोजन-तंत्र की रचना से पता चलता है कि प्रकृति में दो प्रकार के प्राणी हैं—शाकाहारी और मांसाहारी।

वर्तमान का प्रश्न है कि मनुष्य मांस न खाए तो काम कैसे चले? अनाज कम है और खाने वाले अधिक। इस विषय पर हुई नई खोजों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य मांस खाना छोड़ दे तो बढ़ी हुई आबादी को भोजन की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा। मनुष्य मांस खाता है, इसीलिए अनाज की कमी है। मुर्गियों, सूअरों तथा अन्य पशु-पक्षियों को पालने के लिए बहुत बड़ा भू-भाग चाहिए। उन्हें खिलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में अनाज चाहिए। यदि वह भूमि खेती के काम में ली जाए और वह अनाज मनुष्य को मिले तो सहज ही अनाज की समस्या हल हो जाती है।

मांस में जितना प्रोटीन मिलता है, उतना अन्य पदार्थों में नहीं मिलता। वैज्ञानिकों ने सोयाबीन खाने को मांस के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। सोयाबीन में जितना अच्छा प्रोटीन होता है, उतना अच्छा प्रोटीन मांस में भी नहीं होता। सोयाबीन का दूध भी बनाया जा सकता है और आटा भी बनाया जा सकता है। उसे रोटी में मिलाया जा सकता है। वह एक वनस्पति है। जहां वह उपलब्ध न हो तो बाजरी उसका विकल्प हो सकता है। बाजरी में भी अच्छा प्रोटीन होता है। बाजरी खाने वाला बहुत शक्ति प्राप्त करता है।

मैं सोचता था कि साधु-साधवियों चातुर्मास के बाद जब विहार कर गुरु-दर्शन के लिए आते हैं तब उन्हें छोटे-छोटे गांवों में जाना होता है। वहां उन्हें बाजरी की रोटी और राबड़ी मिलती है। इन दो से उनका काम कैसे चलता होगा? पर जब मैंने बाजरी का अध्ययन किया तब पता लगा कि बाजरी में वह शक्ति है जो मांस में भी नहीं है, अन्यान्य अनेक पदार्थों में भी नहीं है।

एक बार दो पहलवान मैदान में उतरे। एक मांसाहारी था और दूसरा शाकाहारी—बाजरे पर रहने वाला। शाकाहारी पहलवान ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ दिया। इससे प्रमाणित होता है कि बाजरे में जो शक्ति होती है, वह मांस में नहीं होती।

अन्तर्वृत्ति की दृष्टि से हमें मांसाहार के प्रश्न पर विचार करना चाहिए। जिन पशुओं, पक्षियों और जलचर जीवों का मांस खाया जाता है, वे सब प्राणी हैं। जो प्राणी हैं, उनमें अच्छे-बुरे सब प्रकार के संस्कार हैं। पशुओं में तामसिक वृत्तियां प्रबल होती हैं। मुनि के लिए बताया गया है कि उसे ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए, जहां पशु रहते हों। प्रश्न हुआ कि यह निषेध क्यों? इस प्रश्न का समाधान एक पशु-शास्त्र में मिला। उसमें लिखा है—पशुओं की वृत्तियां तामसिक होती हैं। उनके संस्कार तामसिक होते हैं। तामसिक वृत्ति के परमाणुओं का उनसे विकिरण होता है। वे उनके आसपास फैले रहते हैं और सारे वायुमण्डल को तामसिक बना देते हैं। जो पशुओं के आस-पास रहता है, उसका मन तामसिक वृत्तियों से भर जाता है। उसकी तामसिक वृत्तियां उभर आती हैं। इसलिए जहां पशु हों, वहां ध्यान करने वाले, समाधि में जाने वाले साधक को नहीं रहना चाहिए। जिस पशु के आसपास रहने से हमारी तामसिक वृत्तियां उभरती हैं, उस पशु का मांस जिसके पेट में जाता है, क्या वह अपना प्रभाव नहीं डालेगा? निश्चित डालेगा। कोई भी आदमी उसके प्रभाव से बच नहीं सकता। जो मांस पशु के शरीर का अभिन्न भाग होता है, जिसके कण-कण में उसके संस्कारों का प्रतिबिम्ब होता है, उस मांस को खाने वाला क्या पाशविकता के संस्कारों से बच पायेगा? कभी नहीं।

मुझे लगता है कि मनुष्य में पाशविकता, अज्ञान, प्रमाद और क्रूरता के बढ़ने का बहुत बड़ा कारण है—मांसाहार। मांसाहार ने निश्चय ही मनुष्य को कुछ अंशों में पशु बनाया है और उसमें पाशविक वृत्तियां पैदा की हैं, अन्यथा मनुष्य कुछ ऐसे आचरण नहीं करता जो पशु के लिए ही उचित हो सकते हैं, मनुष्य के लिए नहीं।

सभी चाहते हैं कि हमारे समाज में अपराध की बाढ़ न आए, किन्तु अन्तर्वृत्तियों को परिष्कृत किए बिना अपराध की बाढ़ को रोका नहीं जा सकता। अन्तर्वृत्तियों को विकृत बनाने वाली वस्तुओं के प्रयोग को छोड़े बिना उन्हें परिष्कृत नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से मांसाहार का प्रश्न मनुष्य के लिए बहुत चिन्तनीय है। यह एक ऐसी समस्या है, जिसे दूसरी समस्याएं उपस्थित कर, मनुष्य दृष्टि से ओझल करना चाहता है किन्तु वह दृष्टि से ओझल होकर भी अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहती और स्वयं समाहित नहीं होती।

एक प्राणी दूसरे प्राणी को खाता है, यह बात निश्चय ही बड़ी अजीब लगती है। भला, प्राणी प्राणी को कैसे खा सकता है? पशुओं को कैसे खाया जा सकता है? पशुओं को खाने वाले केवल मांस को ही नहीं खाते, मांस के साथ और भी बहुत सारी चीजें खाते हैं। क्या मांस खाने वाला पशु के संस्कार को भी साथ-साथ नहीं खाता? मांस को खा ले और पशुओं के संस्कार को छोड़ दे, यह बात संभव नहीं है। विज्ञान ने संस्कारों पर सूक्ष्मता से अन्वेषण किया है। आप देखें कि संस्कारों का संक्रमण किस प्रकार होता है? मैं एक छोटी-सी घटना आपके समक्ष रखता हूँ।

एक विदेशी सैनिक अधिकारी की अंगुलियां कट गईं। अंगुलियों का प्रत्यारोपण किया गया। प्रत्यारोपण के बाद यह स्थिति बनी जब कभी वह सैनिक अधिकारी किसी गोष्ठी या भोज आदि में सम्मिलित होता तब उसके समीप आनेवालों बड़े आदमी के पॉकेट के पास उसकी अंगुलियां चली जातीं। सैनिक अधिकारी हैरान था। वह सोचता कि ऐसा क्यों होता है? पर कुछ सूझता ही नहीं। एक दिन उसने डॉक्टर से पूछा—मेरे हाथ में जो अंगुलियां प्रत्यारोपित की गई हैं, वे किसकी हैं? डॉक्टर ने खोज करके बताया कि वे अंगुलियां एक जेबकतरे की हैं।

जेबकतरा मर गया, उसका शरीर नहीं रहा किन्तु उसके संस्कार अंगुलियों में मौजूद थे, इसलिए अंगुलियां दूसरे के पॉकेट के पास चली जातीं। इसलिए आप विचार करें कि जिन पशुओं को मारा जाता है, क्या उनके मन में दुःख की भावना नहीं होती? क्या मारे जाते समय उसके मन में संताप नहीं होता? क्रोध नहीं होता? उस समय उनके मन में जो भावनाएं उठती हैं, वे सारी की सारी भावनाएं मांसाहार करने वाले व्यक्ति के मन में संक्रान्त हो जाती हैं। निश्चित ही संस्कारों का इस प्रकार सूक्ष्म संक्रमण होता है।

जैन आगमों में एक प्रसंग आता है कि मुनि जहां बैठा है, वहां से उठकर चला गया तो एक अन्तर्मुहूर्त तक साध्वी को वहां नहीं बैठना चाहिए। जहां कोई स्त्री या साध्वी बैठी हुई है और वह उठ-कर चली गयी है तो साधु अन्तर्मुहूर्त तक वहां न बैठे। फिर प्रश्न हुआ कि यह निषेध क्यों? इसका समाधान किया गया कि जहां पुरुष बैठा था, जहां स्त्री बैठी थी, वे तो चले गये, किन्तु शरीर की उष्मा मौजूद है। उनके ओरा के परमाणु वहां पर विद्यमान हैं। इसलिए जो व्यक्ति वहां बैठेगा, संस्कार उसमें संक्रांत हो जाएंगे। संस्कारों का संक्रमण होने से वह व्यक्ति उससे प्रभावित हो जायेगा। मनुष्य मनुष्य से प्रभावित होता है, मनुष्य मनुष्य के विचारों से प्रभावित होता है। संक्रमण के कारण ऐसा होता है। हमारे सूक्ष्म-जगत् में इतना संक्रमण है कि हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। ये ईंटें, ये दीवारें उस संक्रमण को रोक नहीं सकतीं। इसलिए हमें इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि मांस खाने वाला केवल मांस ही नहीं खाता बल्कि जिसका मांस खाता है, उसके संस्कारों को भी खाता है। आज अपेक्षा है—मनुष्य में मनुष्यता का विकास हो, पशुता का नहीं। मांसाहार का परित्याग इस अपेक्षा की पूर्ति करता है।

23. करुणा और शाकाहार

श्रमण आर्द्रकुमार एकदण्डी परिव्राजक के प्रश्नों का उत्तर दे महावीर की दिशा में आगे बढ़ा। इतने में हस्ती-तापस ने उसे रोक कर कहा—‘आर्द्रकुमार! तुमने इन परिव्राजकों को निरुत्तर कर बहुत अच्छा काम किया। ये लोग कंद, मूल और फल का भोजन करते हैं। जीवन-निर्वाह के लिए असंख्य जीवों की हत्या करते हैं। हम ऐसा नहीं करते।’

‘फिर आप जीवन-निर्वाह कैसे करते हैं?’

‘हम बाण से एक हाथी को मार लेते हैं। उससे लम्बे समय तक जीवन-निर्वाह हो जाता है।’

‘कन्द-मूल के भोजन से इसे अच्छा मानने का आधार क्या है?’

‘इसकी अच्छाई का आधार अल्प-बहुत्व की मीमांसा है। एकदण्डी परिव्राजक असंख्य जीवों को मारकर एक दिन का भोजन करते हैं, जब कि हम एक जीव को मारकर बहुत दिनों तक भोजन कर लेते हैं। वे बहुत हिंसा करते हैं। हम कम हिंसा करते हैं।’

मांसाहार के समर्थन में दिए जाने वाले इस तर्क की आयु ढाई हजार वर्ष पुरानी तो अवश्य ही है पर इस तर्क की शरण गृहस्थ ही नहीं, मांसाहारी संन्यासी भी लेते थे। महावीर ने इस तर्क को अस्वीकार कर मांसाहार का प्रबल विरोध किया।

उस विरोध के पीछे कोई वाद नहीं, किन्तु करुणा का अजस्र प्रवाह था। उनके अंतःकरण में प्राणी-मात्र के प्रति करुणा प्रवाहित हो रही थी। पशु, पक्षी और वनस्पति आदि सूक्ष्म जीवों के साथ उनका उतना ही प्रेम था, जितना मनुष्य के साथ। उनके प्रेम में किसी भी प्राणी के वध का समर्थन करने का कोई अवकाश नहीं था। उन्हें प्रिय थी अहिंसा और केवल अहिंसा। किन्तु मानव का जगत् उनकी भावना को कैसे स्वीकार कर लेता? आखिर यह जीवन का प्रश्न था। जीना है तो खाना है। खाए बिना जीवन चल नहीं सकता। ‘अन्नं वै प्राणाः’—अन्न ही प्राण है, यह धारणा समाज-मान्य हो चुकी थी। भगवान् महावीर ने भोजन की समस्या पर दो दृष्टिकोणों से विचार किया। एक दृष्टिकोण अनिवार्यता का था और दूसरा संकल्प का। भगवान् ने असंभव तत्त्व का प्रतिपादन नहीं किया।

वनस्पति जीवन की न्यूनतम अनिवार्यता है। मांसाहारी लोग वनस्पति खाते हैं पर शाकाहारी मांस नहीं खाते। मांसाहार वनस्पति की भांति न्यूनतम अनिवार्यता नहीं है। उसके पीछे संकल्प की प्रेरणा है। भगवान् की अहिंसा

का पहला सूत्र है—अनिवार्य हिंसा को नहीं छोड़ सको तो संकल्पी हिंसा को अवश्य छोड़ो। इसी सूत्र के आधार पर मांसाहार के प्रतिषेध का स्वर अर्थवान हो गया।

आज विश्व भर में जो शाकाहार का आंदोलन चल रहा है, उसका मूल जैन परम्परा में ढूंढा जा सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी जातियों में मांसाहार प्रचलित था। वैदिक धर्म में मांसाहार निषिद्ध नहीं था। बौद्ध धर्म के अनुयायी श्रमण-परम्परा में होकर भी मांसाहार करते थे। मांस न खाने का आन्दोलन केवल जैन परम्परा ने चला रखा था। उसका नेतृत्व महावीर कर रहे थे।

महावीर ने निर्ग्रन्थों के लिए मांसाहार का निषेध किया। व्रती श्रावक भी मांस नहीं खाते थे। भगवान् ने नरक में जाने के चार कारण बताए। उनमें एक कारण है मांसाहार। यह मांसाहार के प्रति महावीर की भावना का मूर्त प्रतिबिम्ब है।

महावीर का मांसाहार-विरोधी आंदोलन धीरे-धीरे बल पकड़ता गया। उससे अनेक धर्म-संप्रदाय और अनेक जातियां प्रभावित हुईं और उन्होंने मांसाहार को छोड़ दिया।

मांसाहार के निषेध का सबसे प्राचीन प्रमाण जैन-साहित्य के अतिरिक्त किसी अन्य साहित्य में है ऐसा अभी मुझे ज्ञात नहीं है।

आहार जीवन का साध्य नहीं है, किन्तु उसकी उपेक्षा की जा सके वैसा साधन भी नहीं है। यह मान्यता की जरूरत नहीं, किन्तु जरूरत की मांग है।

शरीर-शास्त्र की दृष्टि से इस पर सोचा गया है पर इसके दूसरे पहलू कम छुए गए हैं। यह केवल शरीर पर ही प्रभाव नहीं डालता, उसका प्रभाव मन पर भी होता है। मन अपवित्र रहे तो शरीर की स्थूलता कुछ नहीं करती, केवल पाशविक शक्ति का प्रयोग कर सकती है। उससे सब घबराते हैं।

मन शान्त और पवित्र रहे, उत्तेजनाएं कम हों—यह अनिवार्य अपेक्षा है। इसके लिए आहार का विवेक होना बहुत जरूरी है। अपने स्वार्थ के लिए बिलखते मूक प्राणियों की निर्मम हत्या करना क्रूर कर्म है। मांसाहार इसका बहुत बड़ा निमित्त है।

महावीर ने आहार के समय, मात्रा और भोग्य वस्तुओं के विषय में बहुत गहरा विचार किया। रात्रि-भोजन का निषेध उनकी महान् देन है।

भगवान् ने मिताशन पर बहुत बल दिया। मद्य, मांस, मादक पदार्थ और विकृति का वर्जन उनकी साधना के अनिवार्य अंग रहे।

24. मनुष्य की प्रकृति है शाकाहार

नवभारत टाइम्स (5 मई 1990) में 'ईसाइयत और शाकाहार' शीर्षक एक संवाद पढ़ा। उसे पढ़कर लगा—पश्चिमी देशों में शाकाहार कुतूहल, आश्चर्य या विवाद का विषय बना हुआ है। आहार मनुष्य की जरूरत है इसलिए वह निर्विवाद होना चाहिए पर विवाद मनुष्य की प्रकृति है इसलिए वह किसी भी क्षेत्र को विवाद-मुक्त नहीं रहने देता। विवाद है अनाज और मांस के बीच। अनाज और सागभाजी खाना मनुष्य का प्राकृतिक भोजन माना जाता है और चिरकाल से माना जाता रहा है।

जॉन ब्रूमर का कथन

ब्रिटेन के कृषि, खाद्य एवं कृषिपालन मंत्री जान ब्रूमर ने कहा—'शाकाहार सर्वथा अप्राकृतिक है।' मंत्री महोदय के सामने अन्न की समस्या रही होगी अथवा मत्स्य पालन का उद्योग लड़खड़ाता होगा इसलिए वे प्राकृतिक आहार को अप्राकृतिक और अप्राकृतिक आहार को प्राकृतिक बतलाकर आहार के विषय में अवांछनीय वकालत करते हैं। बाइबिल के आधार पर उनका कहना है—'हम आकाश की चिड़ियों और जमीन के जानवरों के मालिक हैं इसलिए उन्हें खाते हैं।' यह उक्ति एक गर्वोक्ति है। मालिक वह हो सकता है, जो दूसरों की रक्षा करे। उनके प्राण लूटने वाला दुश्मन हो सकता है, मालिक कभी नहीं। सच तो यह है कि मनुष्य अपने शरीर का भी मालिक नहीं है। यदि वह मालिक होता तो उसे रोगग्रस्त—बीमार नहीं होने देता, बूढ़ा नहीं होने देता और मौत के जबड़े में नहीं जाने देता। अहिंसा का दर्शन मालिक होने का दर्शन है। हम आकाश की चिड़ियों और जमीन के जानवरों को अपने समान समझें, उनके प्राण न लूटें तो हम मालिक कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं।

प्रश्न धर्म और नैतिकता का

मंत्री महोदय को इसमें आपत्ति है कि खाने-पीने की सामग्री को धर्म और नैतिकता से जोड़ा जा रहा है। यह आपत्ति सही है। खाने-पीने की सामग्री को धर्म और नैतिकता से नहीं जोड़ना चाहिए और न ही जोड़ा जा रहा है। धर्म जुड़ा हुआ है खाने वाले के साथ। खाने वाला क्या खाता है और उसका परिणाम क्या होता है, यह प्रश्न धर्म और नैतिकता से जुड़ा हुआ है। बाजार में खाने-पीने की प्रचुर सामग्री पड़ी है। उससे धर्म और नैतिकता का कोई संबंध नहीं है। दुकानदार बेचते समय प्रामाणिकता बरतता है या अप्रामाणिकता? वहां धर्म और नैतिकता का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। आहार के विषय में भी यही बात है।

मांसाहार : धर्म और नैतिकता

मांस का धर्म और नैतिकता से कोई संबंध नहीं है किन्तु मांसाहार का उनसे संबंध स्थापित हो जाता है। मांसाहार के साथ जीव-हिंसा की क्रूरता जुड़ी हुई है। लोभ और हिंसा—ये दोनों क्रूरता के जनक हैं। मांसाहार न करने वाला जीव-हिंसा-जनित क्रूरता से सहज ही बच जाता है। इसका स्वयंभू प्रमाण है जैन समाज। वह अनेक अपराधों से इसीलिए दूर है कि वह मांसाहारी नहीं है। हिंसा स्वयं अपराध है। वह अनेक अपराधों को जन्म देती है। मांसाहार न करने वाला उन सबसे अपने आपको बचा लेता है। आहार या पोषण के वैज्ञानिक-आहार और व्यवहार में पर्याप्त संबंध बतलाते हैं। उनके अनुसार आहार मनुष्य के स्वभाव को बदल सकता है। आहार से बनने वाले न्यूरोट्रांसमीटर हमारे व्यवहार को नियंत्रित करते हैं इसलिए आहार के विषय में धर्म और नैतिकता के दृष्टिकोण से विचार करना अस्वाभाविक नहीं है।

आहार के चयन का आधार

शाकाहार स्वास्थ्य के लिए अधिक अनुकूल है, यह स्वास्थ्य का पहलू है। उसका आध्यात्मिक पहलू भी है। आध्यात्मिक विकास के लिए इसका और अधिक मूल्य है। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा—‘मेरा पेट कब्रिस्तान नहीं है इसलिए मैं मांस नहीं खाता।’ मांसाहारी लोगों को ध्यान में रखकर उन्होंने लिखा—‘हम मारे गए जानवरों की जीवित कब्र हैं।’ जानवर पेट में जाएगा, क्या उसके संस्कार साथ नहीं जाएंगे ?

मनुष्य में पाशविक वृत्तियां हैं। यह सर्वसम्मत सचाई है। क्रूरता पाशविक वृत्ति है। आध्यात्मिक व्यक्ति का पहला लक्षण है करुणा। मांसाहार उस पर एक आघात है इसलिए आध्यात्मिक व्यक्ति भूख मिटाने के लिए जो कुछ मिलता है, वही नहीं खाता किन्तु विवेकपूर्वक खाता है। उसके सामने आहार के दो वर्ग बन जाते हैं—खाद्य और अखाद्य। जो आध्यात्मिक विकास में बाधक न बने, वह खाद्य। जो उसमें बाधक बने, वह अखाद्य। मनुष्य केवल शरीर नहीं है, जो केवल भूख बुझाने की चिन्ता करे। वह चेतनामय आत्मा भी है। वह चैतन्य जागरण की भी चिन्ता करता है इसलिए हम आहार का चयन भूख के शमन और चेतना के जागरण—दोनों दृष्टिकोणों को सामने रखकर करते हैं।

शाकाहार की लहर

मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी है। मांसाहारी उसकी प्रकृति ही नहीं है। शरीर-संरचना और शरीर-क्रिया के आधार पर जानवरों को दो श्रेणियों में बांटा गया है। गाय, घोड़ा, हाथी—ये शाकाहारी जानवर हैं। बिल्ली, कुत्ता, शेर—ये मांसाहारी प्राणी हैं। दोनों की शरीर-संरचना और शरीर-क्रिया में जो अंतर है, उसके कुछ पहलू ये हैं—

शाकाहारी

पानी जीभ निकाल कर नहीं पीते बल्कि पानी में मुंह डुबोकर पीते हैं।

मांसाहारी

पानी जीभ से चाटकर पीते हैं।

दांत और नाखून सपाट होते हैं।
पाचन मुंह से शुरू होता है।
पेट की आंतें लम्बी होती हैं।

दांत और नाखून नुकीले होते हैं।
पाचन आमाशय से शुरू होता है।
पेट की आंतें छोटी होती हैं।

मनुष्य की तुलना शाकाहारी जानवरों से की जा सकती है इसलिए प्रकृति से वह मांसाहारी नहीं है। मांसाहार उसने अभ्यास से सीखा है। जैन धर्म ने शाकाहार का आंदोलन शुरू किया था। उसका प्रभाव व्यापक हुआ। आज समूचे संसार में वह एक लहर के रूप में चल रहा है। संभव है—कुछ समय बाद यह आहार की मुख्य धारा बन जाए।

25. वैज्ञानिक चेतना से नशामुक्ति

हमारे युवा वर्ग में नशा करने की आदत बड़ी तेजी से बढ़ रही है। नशा उर्दू भाषा का शब्द है। संस्कृत तथा हिन्दी में इसके लिए उन्माद या पागलपन शब्द है। चेतना का विकृत हो जाना, बिगड़ जाना, भान भूल जाना नशे की प्रकृति है।

नशा करना पहले भी चलता था, लेकिन इस प्रवृत्ति पर इतना ध्यान नहीं गया। जैन आचार्यों ने सात कुव्यसन बतलाए, उनमें एक नशा भी है। शराब का उसमें प्रतिपादन किया गया, शराब की आदत को छुड़ाया भी गया। एक ऐसी जाति का निर्माण कर दिया, जो मांस और शराब से बिल्कुल दूर हो गई। समझाने का पुराना तरीका यह रहा कि शराब पीना, नशा करना अच्छा नहीं। इससे चेतना विकृत होती है। परलोक में नरक मिलता है। इस तरह भय और विकृति के संदर्भ में इसका प्रतिपादन किया गया। किन्तु विज्ञान ने इस विषय का जो प्रतिपादन किया है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है।

नशा आज एक समस्या के रूप में है। समस्या तो पहले भी थी किन्तु अब और जटिल बन गई है। सुना और पढ़ा है कि इन एक-दो वर्षों में अमरीका में दो करोड़ लोगों ने सिगरेट छोड़ दिया। वहां पर सिगरेट पीना इसलिए नहीं छोड़ा कि मरने के बाद नरक मिलेगा, पाप कर्मों का बन्धन होगा, बल्कि इसलिए छोड़ी कि सिगरेट पीने से फेफड़े खराब होते हैं, स्वास्थ्य खराब हो जाता है। अल्सर, दिल के दौरों पड़ना एवं कैंसर जैसी भयंकर बीमारियों से व्यक्ति ग्रसित हो जाता है। जब से नशे से होने वाले नुकसानप्रद तथ्यों को डॉक्टरों, वैज्ञानिकों ने जनता के सामने रखा तो सब लोग चौंक गए। इतने भयभीत हुए कि समझाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। स्वतः ही नशा छोड़ते गए। किसी ने यह भी नहीं कहा, 'तुम्हें छोड़ देना चाहिए।' परिणाम सामने आया तो लोगों में आशंकाएं एवं आतंक पैदा हुआ। अर्थ की हानि और मौत को निमंत्रण मिल जाए, इससे बढ़कर और खतरनाक क्या बात हो सकती है?

तम्बाकू : भयंकर नशा

तम्बाकू इन दिनों नशे में खूब काम आ रही है। बीड़ी, सिगरेट एवं खैनी सभी में तम्बाकू के ही अलग-अलग रूप हैं। तम्बाकू का खाना, पीना एवं होठों में दबाकर चूसना, सूंघना—ये सभी तरीके इस्तेमाल किए जाते हैं। आज के युवा वर्ग का बढ़ता शौक जब आदत में परिवर्तित हो जाता है तब समाज के सामने विकट स्थिति पैदा हो जाती है। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने एक कानून पास कर नशे के पैकेट चाहे जर्दे का हो या सिगरेट का,

उन पर लिखना अनिवार्य कर दिया कि 'सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।' फिर भी वर्तमान में लोग नशे की आदत को छोड़ने को राजी नहीं हैं। सिगरेट पीते हैं, बीड़ी पीते हैं एवं जर्दा भी खाते हैं। मैंने लोगों से पूछा—'तुम सिगरेट पीते हो, जो हिदायत लिखी रहती है; उसको पढ़ा कि नहीं?' उत्तर मिला—'हिदायत को पढ़ते हैं और पीते भी हैं।' इसका अर्थ है कि आज मानव अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं है। भयंकर बीमारियों को आमंत्रण दिया जा रहा है। यहां तक कि कैंसर जैसी लाइलाज बीमारी के प्रति भी लापरवाह है।

कारण है तनाव

जब हम नशे का कारण खोजते हैं तो पता लगता है कि आदमी में तनाव बहुत है। अगर तनाव नहीं हो तो आदमी नशा भी क्यों करेगा? तनाव रहित व्यक्ति कभी जानबूझ कर पागल थोड़े ही बनता है, बल्कि सत्य तो यह है कि व्यक्ति अपना तनाव समाप्त करने के लिए नशे का आदी हो जाता है। आदमी में भय, चिन्ता या मानसिक तनाव होता है तो वह उससे छुटकारा पाने के लिए नशा करता है। अब वर्तमान सामाजिक ढांचे में, भौतिकता एवं पाश्चात्य संस्कृति की अन्धी दौड़ में स्त्रियों के शामिल होने के प्रयास से चिन्ताएं बढ़ी हैं। आज यत्र-तत्र महिला वर्ग ने भी अपने-आप को नशे की पंक्ति में स्थापित कर दिया है। आज व्यक्ति की सामाजिक चिन्ताएं जैसे—घर खर्च, शादी-विवाह, दहेज का दावानल आदि सभी ने मिलकर तनाव का वातावरण बना दिया है। इस वातावरण से प्रताड़ित होकर व्यक्ति तनावों से क्षण भर मुक्ति पाने के लिए नशे की शरण में जाता है।

संपर्क और संगति

व्यक्ति का भावनाशील होना भी उसके लिए बड़ा खतरा साबित होता है। जीवन-सफर में विविध मोड़ों पर सम्पर्क में आने वाले उनके हितैषी भी ऐसी आदत डाल देते हैं। आपसी सम्पर्क एवं संगति के कारण उनके आग्रहवश एक बार पीने वाला व्यक्ति हर बार पीने लगता है। यही हर बार पीना उसकी आदत में परिवर्तित होते ही वह उसका शिकार हो जाता है। फिर बिना नशा किए उसका जीवन दूभर हो जाता है, व्यक्ति को वह जहर बार-बार गले से उतारना ही पड़ता है। फिर तो वह अपने जीवन की शेष सांसों शराब के प्याले में, सिगरेट के धुएं में ही देखता है अर्थात् उसका जीवन नशे में बन्दी हो जाता है।

विज्ञापन

देश के हर कोने में किसी वस्तु को प्रसारित करने के लिए विज्ञापन अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। इसी का फायदा उठाया है नशीली वस्तुओं को बेचने वाली कम्पनियों ने। इन कम्पनियों ने नशीली वस्तुओं को इस प्रकार विज्ञापित किया कि व्यक्ति उनकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। नशीली वस्तुओं में कुछ महक, सुगंध करने से व्यक्ति उसकी खुशबू के पीछे खिंचा चला जाता है। खाने वाले को लगता है कि जैसे अमृत मिल गया है।

नशीली चीजों को खाने के बाद थूकना भी नहीं चाहता। एक बार के प्रयोग से लगता है कि जैसे वह दूसरी ही दुनिया में चला गया हो। फिर उससे छुटकारा पाना भी मुश्किल हो जाता है।

शराब भी बड़ी तेजी के साथ फैलती चली जा रही है। कई ऐसी जातियां, जो पहले शराब से मुक्त थीं, वे भी आज इस ओर बड़ी तीव्रता से बढ़ती जा रही हैं। शराब पीकर कोई पागल तो नहीं बनना चाहता, मगर अपने तनावों को सहन भी नहीं कर सकता। परिणामतः व्यक्ति शराबी बन जाता है।

उन्माद में क्या नहीं होता ?

एक शराबी शराब पीकर सड़क के बीच में लेट गया। सामने से एक तांगे वाला आया। उसने कहा—‘सड़क के बीच में कौन सोया है? हटो!’ एक-दो बार कहा तो भी वह न हटा। तांगे वाले ने गुस्से में आकर कहा—‘हटते हो या नहीं? मैं तांगा ऊपर से निकाल दूंगा।’ शराबी बोला—‘निकाल दे, मेरा क्या लेता है?’ तांगे वाले ने कहा—‘मेरा क्या लेता है? तेरा पैर कट जाएगा।’ नशे में चूर शराबी बोला—‘कट जाएगा तो मेरा क्या लेता है?’ तांगे वाले ने कहा—‘पैर तेरा नहीं है क्या?’ शराबी बोला—‘मेरा कहां है? मेरे पैर में जूता था, इस पैर में नहीं है, यह पैर मेरा नहीं है।’ यह है शराब का पागलपन।

ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण है—एक शराबी नशे में डूबा हुआ घर आ रहा था कि लड़खड़ा कर एक खड्डे में गिर गया। काफी खरोंचें आई हाथ-पैर एवं चेहरे पर। चेहरे से खून बह रहा था। घर पहुंचने पर पत्नी ने देखा तो वह बहुत शर्मिन्दा हुई। पति से बोली—‘आप स्नानघर में जाकर कांच में देख अपने मुंह पर मलहम लगाओ।’ शराबी अन्दर आया और सो गया। पत्नी ने देखा—खून तो अभी भी चेहरे से बह रहा है? वह बोली—‘आपने मलहम नहीं लगाई।’ पति बोला—‘अभी-अभी तो स्नानघर में लगाकर आया था।’ पत्नी स्नानघर में गई, देखा—कांच पर मलहम लगाई हुई थी।

इस तरह के न जाने कितने प्रसंग हैं, जिनमें आदमी अपनी सुध-बुध खोकर प्रमाद में चला जाता है, वह अपने अच्छे-भले स्वास्थ्य से भी हाथ धो बैठता है।

सेना के एक बड़े अफसर का पत्र मिला—‘मैं बहुत शराब पीता हूं। स्वास्थ्य बिगड़ गया। लिवर व फेफड़े खराब हो गये हैं। हार्ट भी कमजोर हो गया है। डॉक्टर कहता है—शराब पीओगे तो मर जाओगे। मैं छोड़ना चाहता हूं पर छूट नहीं रही है। आप कोई उपाय बताएं।’

उभरती समस्या और परिणाम

सचमुच नशे से आदमी बड़ी विकट स्थिति में चला जाता है। आज नशे का खतरा चरस, गांजा, हेरोइन, ब्राउन शुगर आदि नशीली दवाइयों के रूप में इस हद तक पहुंच गया है कि यह समस्या उग्र रूप से उभर कर आई है।

आज इस समस्या ने बाकी सब समस्याओं को पीछे छोड़ दिया है। विश्वविद्यालय एवं शिक्षण संस्थान तो इसके अड्डे बनते जा रहे हैं। इन नशीले पदार्थों की तस्करी भी इतनी बढ़ गई है कि करोड़ों-करोड़ों रुपयों की हेरोइन एवं अन्य नशीले पदार्थ सीमाओं पर पकड़े जाते हैं। अब तो अंतर्राष्ट्रीय माफिया गिरोह भी हो गए हैं जो बड़ी ही सतर्कता से तस्करी करते हैं।

मद्रास की महिलाओं ने एक प्रदर्शन किया। उन्होंने राज्यपाल के पास जाकर एक ज्ञापन दिया कि शराब के कारण हमारे घर बर्बाद होते हैं अतः शराब को जैसे-तैसे बन्द किया जाए। पुरुष लोग घर की चिन्ता भी नहीं करते। वे मस्ती में पीते चले जाते हैं। घर-परिवार के प्रति महिलाओं का ध्यान ज्यादा रहता है। अतः महिलाएं ज्यादा परेशान हैं।

नशा मुक्ति के प्रयोग

इस समस्या पर कई स्वयंसेवी एवं धार्मिक संस्थाओं का भी ध्यान गया है। अणुव्रत आन्दोलन में एक नियम है कि मैं मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करूंगा लेकिन नशा केवल कहने-सुनने से नहीं छूटता है। उसके लिए तो प्रयोग करने होंगे। प्रयोग के द्वारा नशे के प्रति ग्लानि या अरुचि पैदा की जाती है। इस दृष्टि से कान का उपयोग किया जाता है। जैसे कान हमारे सुनने के काम आते हैं लेकिन इसके और भी उपयोग हैं। कान हमारे जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। गर्भस्थ शिशु और बच्चे के कान का आकार समान होता है। कान में लाखों स्नायु हैं जो हमारे सम्पूर्ण शरीर के साथ जुड़े हुए हैं। मस्तिष्क से लेकर पैर तक एक जाल बिछा हुआ है। कान का संबंध पेट से जुड़ा हुआ है। पाचन शक्ति के कमजोर होने पर कान का उपयोग होता है। महिलाएं कान में बालियां इसीलिए पहनती हैं कि इससे आवेग पर नियंत्रण रहता है। कान का एक उपयोग नशे की वृत्ति को छोड़ने में भी है। इसका दूसरा नाम है अप्रमाद केन्द्र। कान आदमी की जागरूकता का केन्द्र है। सब जानते हैं कि आदमी से यदि भूल हो जाती है तो वह कान पकड़ता है। मतलब साफ है कि मेरी भूल हो गई है—आगे से ऐसी भूल नहीं करूंगा।

पुराने जमाने में गुरु शिष्यों के कान खींचते थे। आज शरीर-शास्त्रियों की नई खोज शुरू हुई है। एक बार कादम्बिनी में एक लेख देखा, जिसका शीर्षक था—‘कान खिंचाइए, बुद्धि बढ़ाइए’। यह अप्रमाद की बात है। इस पर ध्यान करने से नशे की आदत भी बदल जाती है। यह अनुभूत प्रयोग है।

ध्यान से रासायनिक परिवर्तन

गंगाशहर चतुर्मास (सन् 1978) में विश्नोई धर्मशाला में एक शिविर हुआ, उसमें एक युवक भी भाग ले रहा था। वह काफी बीमार हो चुका था। घर वाले परेशान थे। वह शिविर में आया तो हमें पता चला कि वह सिगरेट बहुत पीता है। हमने उस पर सिगरेट छोड़ने हेतु कोई दबाव नहीं डाला। केवल कुछ प्रयोग करवाए। शिविर पूर्ण हो गया। पांच-दस दिन बाद मैंने पूछा—‘बोलो, तुम्हारी क्या स्थिति है? सिगरेट पीते हो?’ वह युवक बोला—‘क्या

बताऊं? मुसीबत हो गई। पहले मैं प्रतिदिन पचास-साठ सिगरेट पीता था, अब अगर एक भी पीता हूँ तो इलायची खानी पड़ती है। लगता है अब मैं इस सिगरेट पर काबू पा लूंगा।’

ध्यान से ऐसा रासायनिक परिवर्तन हो जाता है कि आदमी नशे में जा ही नहीं सकता। दीर्घ श्वास भी नशे की आदत को बदलने का महत्वपूर्ण प्रयोग है। इस पर हमारे यहां काम हुआ है। पड़िहारा निवासी श्री शुभकरण सुराणा अहमदाबाद जा रहे थे। रेल के जिस डिब्बे में वे बैठे थे, उसमें एक मुसलमान परिवार भी था। उनमें आपस में झगड़ा हो रहा था। एक युवक सिगरेट पी रहा था। उसकी मां-बहन उसे मना कर रही थी और कह रही थी कि ‘तू सिगरेट पीता है और चेन स्मोकर है, यह अच्छा नहीं है। इससे तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है।’ युवक ने कहा-‘मैं भी जानता हूँ। मैं मूर्ख नहीं हूँ, पढ़ा-लिखा हूँ। पर सिगरेट नहीं छोड़ सकता।’

शुभकरण वह सब देख-सुन रहे थे। उन्होंने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा-‘ठीक है कि तुम सिगरेट नहीं छोड़ सकते, पर मैं तुम्हें एक बढ़िया सिगरेट बताता हूँ। वह नुकसान भी नहीं करती, तब इस सिगरेट को छोड़ सकते हो?’

उसने कहा-‘इससे बढ़िया सिगरेट हो तो फिर क्यों नहीं छोड़ूंगा?’

उसे बताया गया-‘तुम सिगरेट पीकर नाक से धुआं निकालते हो। ऐसा करो कि बाएं नथुने से श्वास लो, दाएं नथुने से श्वास निकाल दो। इससे लेना और इससे छोड़ना-बस यह क्रम चलता रहे। यह एक बढ़िया सिगरेट है; पीकर देखो।’ पता नहीं युवक को क्या जंचा, उसने वह सिगरेट पीना शुरू किया। पांच-दस मिनट तक ऐसा किया, फिर बोला-‘यह तो अच्छी बात है, आनन्द आ गया। अब मैं सिगरेट छोड़ सकता हूँ।’

शुभकरण ने कहा-‘मैं ऐसे नहीं मानता। तुम मुसलमान हो। कुरान की कसम खाओ और कहो-अब मैं सिगरेट नहीं पीऊंगा।’ वह युवक सीट से उठा और पैर छूकर बोला-‘मैं कुरान की कसम खाकर कहता हूँ कि अब नहीं पीऊंगा।’

यह अनुलोम-विलोम श्वास का प्रयोग इतना महत्वपूर्ण है कि इससे आदत छूट जाती है।

कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग नशा-मुक्ति का अचूक उपाय है। कई लोगों पर इसका प्रयोग किया जाता रहा है। अधिक से अधिक लोगों तक यह बात पहुंचाई जा रही है। एक बात तो साफ है कि आदमी चिंता में ज्यादा नहीं जी सकता। उसके लिए ही वह शराब पीता है। क्या ध्यान भी कोई कम शराब है? ध्यान मनुष्य को एक ऐसी मस्ती में ले जाता है कि वह एक अलग ही दुनिया है। वहां जाने पर सारी चिंताएं मिट जाती हैं, सारे तनाव समाप्त हो जाते हैं। इस सचाई को उजागर किया जाए। केवल उपदेश ही न दिए जाएं अपितु प्रयोग करवाए जाएं। इससे मनुष्य-मनुष्य का भला होगा, एक शक्तिशाली वातावरण का निर्माण होगा और लोगों को अपनी-अपनी आदतों से मुक्ति पाने का तरीका उपलब्ध हो सकेगा।

26. नशा और ध्यान

प्रश्न है—आदमी नशा क्यों करता है? जब राग या द्वेष प्रबल होता है तब मनुष्य का मन तनाव से भर जाता है। राग-द्वेष तनाव पैदा करते हैं। आदमी तनाव में जीना नहीं चाहता, वह सुख से जीना चाहता है। जैसे ही तनाव पैदा होता है, वह तनाव से मुक्त होना चाहता है। तनाव से, चिंता से मुक्ति का उपाय चाहिए। मनुष्य ने एक उपाय खोजा—अपने आपको भुला देना। एक बहुत बड़ी सचाई है। व्यक्ति जब नशा करता है, तब कुछ समय के लिए अपने आपको भुला देता है, एक दूसरी दुनिया में चला जाता है। हमारे जितने संवेदी तंतु हैं, ज्ञान तंतु हैं, नशा उनको निष्क्रिय बना देता है। जो संदेश ज्ञान तंतुओं के द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचते हैं, जिन्हें मस्तिष्क ग्रहण करता है, उनका संबंध बीच में ही टूट जाता है। मूर्च्छा की स्थिति बन जाती है, जागरूकता समाप्त हो जाती है।

दो शब्द हैं—प्रमाद और अप्रमाद। प्रमाद स्वयं नशा है। अप्रमाद का मतलब है जागरूकता। जहां प्रमाद की स्थिति है, वहां आदमी अपने आपको भूल जाता है। जहां जागरूकता की स्थिति है, वहां व्यक्ति अपने प्रति भी जागरूक होता है और दूसरों के प्रति भी जागरूक रहता है।

नशे के प्रकार

नशा बहुत पुराने काल से चल रहा है। आज नशे का वर्गीकरण करें तो चार मुख्य वर्गीकरण बन जाएंगे।

एक शराब का नशा है। लोग शराब पीते हैं, पागलपन आ जाता है।

दूसरा है—तम्बाकू का नशा। सिगरेट, बीड़ी, जर्दा और गुटका, पानपराग आदि जर्दा-युक्त जितने पदार्थ हैं, उनका सेवन एक प्रकार का तम्बाकू का नशा है।

तीसरा है—भांग, गांजा, चरस आदि का नशा।

चौथा है—अफीम, हेरोइन आदि का नशा। हेरोइन का नशा बहुत घातक है। जो व्यक्ति हेरोइन का आदी बन जाता है, वह ज्यादा जीता नहीं है। उसे कुछ वर्षों में ही मरना पड़ता है। उस नशे का छूटना भी मुश्किल हो जाता है।

ये चार प्रकार के नशे हैं, जो उन्माद पैदा करते हैं। शराब से आदमी पागल बन जाता है। तम्बाकू पीने वाला शराबी की भांति भान नहीं भूलता, उतना पागलपन नहीं आता किन्तु आज यह मान लिया गया कि तम्बाकू के द्वारा जितना स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचता है, उतना शराब से भी नहीं पहुंचता। शराब से ज्यादा भयंकर तम्बाकू को माना

जा रहा है। कैंसर, हार्ट की बीमारी, फेफड़े की विकृति आदि-आदि के लिए तम्बाकू बहुत जिम्मेवार है। तम्बाकू पीने वाला इन बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है।

विज्ञापन का आकर्षण

बहुत सारे लोग जर्दा खाते हैं, खाते ही मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है। जर्दे में ऐसी सुगंध डाल देते हैं कि वह मन को ललचा देती है।

मैंने कुछ लोगों से पूछा—‘जर्दा क्यों खाते हो?’

‘महाराज! ऐसे ही खाते हैं।’

‘क्या शरीर को कोई लाभ पहुंचाता है जर्दा?’

‘नहीं, लाभ तो नहीं पहुंचाता।’

‘फिर क्यों खाते हैं?’

‘आदत-सी पड़ गई है और बड़ा अच्छा भी लगता है।’

आपने इन नशीले पदार्थों के विज्ञापन देखे होंगे। विज्ञापन में ऐसा बढ़िया चित्र खींच देते हैं कि जो नहीं खाता है उसका मन भी ललचा जाता है। किसी प्रसिद्ध सिने अभिनेता के मुख से कहलवाते हैं—‘क्या लाजवाब सुगंध! आह! आह!’ ऐसा विज्ञापन देखते ही आदमी सोचता है—अरे! यह तो बहुत बढ़िया चीज है और व्यक्ति उसको खाने-पीने के लिए आतुर बन जाता है।

प्रचलन भांग का

तम्बाकू ने आज बहुत सारी बीमारियां पैदा की हैं। जैसे-जैसे अनुसंधान हो रहे हैं, तम्बाकू के परिणाम समाज के सामने आते चले जा रहे हैं। भांग, गांजा, चरस से भी थोड़ा पागलपन आ जाता है, पर उतना नहीं आता। मैं अपना अनुभव बतलाता हूं। मैं नौ-दस बरस का था। रामगढ़ गया। प्रतिष्ठित पोद्दार परिवार ने मुझे भोजन के लिए निमंत्रित किया। वहां मुझे टंडाई पिलाई गई। टंडाई में थी भांग। जब पीने के बाद सिर चकराने लगा तब ऐसा लगा—जैसे धरती ऊपर जा रही है और आकाश नीचे आ रहा है। दुनिया उलटी घूमती हुई दिखाई देने लगी। बड़ा विचित्र-सा दिखने लगा, फिर पता चला—इसमें तो भांग थी। भांग खाने वाले कुछ लोग भांग का पूरा गोला खा जाते हैं। जैसे-जैसे उसका नशा चढ़ता है फिर कुछ पता नहीं चलता।

चिन्तित है विश्व

समाचार पत्र में पढ़ा—कुछ लोग नशे के इतने आदी हो जाते हैं कि सांप का डंक न लगे तब तक उनको चैन

नहीं मिलता। जब मरफिया का इंजेक्शन लगता है या सांप डंक मारता है, तब शांति मिलती है। इतना जहर शरीर में घुल जाता है कि सांप काटने से न मरने वाले व्यक्ति मनुष्य के काटने से मर जाते हैं।

हिन्दुस्तान ही नहीं, अमेरिका, यूरोप आदि विश्व के प्रायः देश बहुत चिन्तित हैं कि नशा बहुत बढ़ रहा है। जिस समाज में नशा बढ़ता है, उसमें कर्तव्य-बोध और दायित्व-बोध समाप्त होता है। ऐसी निकम्मी पीढ़ी का जन्म होता है, जो काम की नहीं होती, केवल नशे में धुत्त रहती है। यह समाज के लिए बड़ी चिन्ता का विषय है, पर कठिनाई यह है—आज समस्याएं बहुत हैं, चिन्ता और भय के कारण बहुत हैं। इस स्थिति में आदमी कैसे जीए? तनाव न मिटे, चिन्ता न मिटे तो जीना मुश्किल है। नींद न आए, थकान न मिटे तो आदमी कैसे जीए? एक नशे की गोली ली और नींद आ गई। उस समय न चिन्ता है, न भय है। आज तो कुछ ऐसे द्रव्य विकसित हो गए हैं, जिन्हें लेने के बाद व्यक्ति को ऐसा लगता है कि जैसे स्वर्ग में पहुंच गया है।

घूमती है दुनिया

नशे में धुत्त आदमी ने एक टैक्सी को रोका और ड्राइवर से कहा—मुझे जाना है। वह टैक्सी में बैठ गया। ड्राइवर ने पूछा—कहां जाना है? वह पागल सा हो गया, बता नहीं सका कि मुझे कहां जाना है। दस-बीस मिनट उसी प्रकार बेसुध-सा बैठा रहा। ड्राइवर ने सोचा—कोई पागल आदमी है। उसने कहा—नीचे उतरो।

‘क्या मेरा घर आ गया?’

ड्राइवर ने कहा—‘हां, आ गया।’

‘ठीक है पर कार को इतना तेज मत चलाया करो, थोड़ा धीमे-धीमे चलाया करो।’

उसे यह पता ही नहीं था कि कार चली कहां है? नशे में इस प्रकार की विक्षेप जैसी स्थिति बन जाती है।

एक आदमी ने बहुत नशा कर लिया। सिर चकराने लगा। चौराहे पर खड़ा देख रहा है—सारी दुनिया घूम रही है। पुलिस ने कहा—‘अरे! चलो, जाओ अपने घर।’ उसने कहा—‘इसीलिए तो यहां खड़ा हूं। दुनिया घूम रही है, जैसे ही मेरा घरा आएगा, मैं उसके भीतर घुस जाऊंगा।’

जरूरी है जागरूकता

ऐसी विचित्र स्थितियां नशे की अवस्था में बनती हैं, जागरूकता पूरी समाप्त हो जाती है। वह समाज, जो अपनी जागरूकता को खो देता है, किसी काम का नहीं होता। भगवान् महावीर ने अपने प्रिय शिष्य गौतम को संबोधित कर कहा—एक क्षण के लिए भी प्रमाद मत करो, निरंतर जागरूक रहो। साधना की एक भूमिका का नाम है—यथालन्दक। उस साधना की विधि यह है—हाथ की हथेली पर पानी डाला, वह पानी नीचे चला गया, उस आर्द्र हाथ की रेखा सूखे, इतने काल का प्रमाद होता है तो बेले (दो उपवास) का प्रायश्चित्त आता है। इतनी जागरूकता, निरन्तर

अप्रमाद का विकास। व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में जाए, जागरूकता के बिना सफल नहीं हो सकता। चाहे व्यापार, उद्योग अथवा राज्य संचालन का प्रश्न है, जहां भी प्रमादी लोग आकर बैठ जाते हैं, नशेबाज उसका संचालन करते हैं, उसकी व्यवस्था का ठीक संचालन नहीं होता। वे लोग समाज या व्यवसाय का सम्यक् संचालन करते हैं, जो निरन्तर जागरूक होते हैं और स्वतः अपने दायित्व का बोध करते रहते हैं।

नशे का विकल्प

प्रश्न है—तनाव कैसे मिटाया जाए? नशा करने से आदमी को एक प्रकार का सुख मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जब तक आदमी को उससे बड़ा सुख उपलब्ध नहीं कराया जाए, तब तक वह नशे को छोड़ नहीं सकता।

नशे का विकल्प है ध्यान। नशे में भी सुख मिलता है और ध्यान में भी सुख मिलता है। नशा और ध्यान—दोनों में इस बिन्दु पर कुछ समानता है। ध्यान से भीतर में इस प्रकार के रसायनों का स्राव होता है, केमिकल का चेंज होता है कि आनन्द टपकने लगता है। जिन लोगों ने ध्यान नहीं किया, वे सोच नहीं सकते कि ध्यान से सुख कैसे मिलता है। कुछ लोग कहते हैं—ध्यान करते हैं, पर मन जमता नहीं है, टिकता नहीं है। व्यक्ति जामन देना नहीं जानता है तो दूध जमेगा कैसे? वह फट जाता है, पर जमता नहीं है। दूध तब जमेगा, जब व्यक्ति जामन देना जाने। सम्यक् विधि से जामन दिया जाए तो दूध दही बन जाएगा। पानी बर्फ बन जाती है, यदि कोई बर्फ बनाना जाने। तरल पानी में गंदगी मिलाओ, पानी गंदला बन जाएगा। बर्फ की शिला बनाओ, उस पर गंदगी डालो, वह गंदगी रुकेगी नहीं, लुढ़क कर नीचे चली जाएगी। पानी जमा, बर्फ बन गई, दूध जमा, गाढ़ा दही बन गया। एक रूपांतरण हो गया। जैसे ही मन जमा, ध्यान घटित हुआ, भीतर से ऐसे रसों का स्राव होता है कि जैसे कोई सुख का झरना बह रहा है।

आज एक नई वैज्ञानिक पद्धति विकसित हो रही है। यह कहा जा रहा है—अगर हम हमारे कष्ट के संवेदनों को मस्तिष्क तक न पहुंचने दें तो कष्ट का अनुभव नहीं होगा। जो लोग बहुत शक्तिशाली हैं, जिनमें प्रगाढ़ वैराग्य है, स्वाध्याय के प्रति अनुराग है, वे अपने आप ध्यान की दिशा को बदल देते हैं।

काशी के महाराज का गीता के प्रति बड़ा अनुराग था। उनका ऑपरेशन हो रहा था। उन्होंने डॉक्टरों से कहा—मुझे सुंघनी सुंघाने की जरूरत नहीं है। मुझे आप गीता दे दें और दस मिनट बाद आप मेरा ऑपरेशन कर दें। वैसा ही किया गया। ऑपरेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

राजलदेसर के एक श्रावक थे चांदमलजी बैद। पीठ में फोड़ा हो गया। ऑपरेशन होना था। पद्मासन लगाकर ध्यान में लीन हो गये। ऑपरेशन पूरा हो गया। नींद या बेहोशी की दवा सुंघाने की जरूरत ही नहीं पड़ी।

अपने भीतर कुछ ऐसे नियामक तत्व हैं, ऐसे पेनकीलर हैं, वे दर्द का नियमन कर लेते हैं। अगर यह रहस्य समझ में आ जाए, एकाग्रता हो जाए तो फिर दर्द का आभास नहीं होता। हमारे भीतर कुछ आनन्द के झरने हैं, वे बहने लग

जाते हैं तो दर्द की स्थिति में भी व्यक्ति प्रसन्न रहना सीख लेता है। हमने देखा है—एक भाई के कैंसर था। इस भयंकर बीमारी में जैसे ही चौबीसी का संगान होता, वह उसमें तल्लीन हो जाता और कहता—‘मेरा दर्द समाप्त हो रहा है।’

जब ध्यान के द्वारा भीतरी रसायनों का परिवर्तन होता है, नशे की आदत अपने आप छूट जाती है। नशे की आदत को बदलने का सबसे शक्तिशाली साधन है—कान पर ध्यान का प्रयोग। इससे नशे के प्रति अपने आप अरुचि पैदा हो जाती है। ऐलोपैथी में भी कुछ ऐसी दवाएं हैं, जो नशे की आदत बदलने के लिए काम में ली जाती हैं। राजस्थान का एक संभाग है सिवांची-मालाणी। वहां अफीम का बहुत प्रचलन है। वहां अफीम की आदत को बदलने के लिए शिविर लगाए जाते हैं, कुछ दवाइयां दी जाती हैं, जिन्हें लेने से नशे की आदत बदल जाती है। आयुर्वेदिक पद्धति में भी कुछ ऐसी दवाइयां हैं, जिनका प्रयोग करने से नशे की आदत बदलती है। ध्यान भी एक प्रयोग है नशे की आदत को बदलने का किन्तु उसमें एक कठिनाई है। जब विड्रोवल सिस्टम (निवर्तन के लक्षण) प्रकट होते हैं, तब उन्हें संभालना होता है और उस समय डॉक्टरों का बड़ा उपयोग होता है। अन्यथा समस्या पैदा हो जाती है।

मुख्य साधन है ध्यान

औषध का प्रयोग भी सहायक बन सकता है। केवल दवाइयों के बल पर नशे की आदत को बदलने में कुछ लाभ होते हैं, तो साथ-साथ में कठिनाइयां भी पैदा होती हैं, समस्याएं भी पैदा होती हैं। अपेक्षित यह है—नशे की आदत को बदलने का मुख्य साधन ध्यान को बनाया जाए और जहां आवश्यक हो, वहां यत्किंचित् मात्रा में औषधियों का सहारा लिया जाए। संस्कृत में एक न्याय आता है ‘न्यायाःस्थविरयष्टिप्रायाः। बूढ़ा आदमी हाथ में लाठी लेकर चलता है। जहां जरूरत पड़ती है, वहां लाठी को टिका देता है, लाठी के सहारे खड़ा हो जाता है या उसका सहारा ले लेता है। जहां जरूरत नहीं होती है, वहां लाठी को हाथ में रख लेता है। इसी प्रकार जहां आवश्यकता हो वहां औषध का प्रयोग किया जाए, अन्यथा ध्यान का प्रयोग हो। ध्यान के द्वारा भीतरी स्रोतों को खोल दिया जाए तो जो आनन्द के झरने हैं, वे बहने लग जाएंगे। यह अनुभव की बात है। अगर यह बौद्धिक बात होती तो मैं उसे बता देता, किन्तु अनुभव की बात को बताया नहीं जा सकता। कहा जाता है—गूंगे का गुड़। आदमी गूंगा है। उसने गुड़ खाया। पूछा गया—गुड़ कैसा लगा? क्या वह बता पाएगा? बोलने वाला भी क्या बताएगा? इतना ही कि मीठा लगा। पूछा जाए—स्वाद कैसा है? तो क्या बताए, यह बताने की नहीं, अनुभव की बात है। जिन लोगों ने ध्यान का अनुभव किया, उन लोगों को पता है—ध्यान करने में कितना सुख और कितना आनन्द प्रकट होता है।

भीतर है सुख का स्रोत

प्रेक्षाध्यान के एक शिविर में हैदराबाद के युवक ने भाग लिया। वह पहली बार ध्यान-शिविर में आया था। भृकुटि के मध्य दर्शनकेन्द्र पर बाल सूर्य का ध्यान। वह प्रयोग में बैठा। ध्यान का समय था एक घण्टा। एक घण्टा पूरा हो गया। सब लोग उठ गए पर वह नहीं उठा। मैंने कहा—कोई बात नहीं है, अभी चल रहा है, चलने दो। दो

घण्टा पूरे हो गए तो भी नहीं उठा। तीन घण्टे होने लगे। घर वाले घबरा गए, कहने लगे—अब तक नहीं उठा। अब क्या होगा? मैं उसके पास गया, उसके कान में कुछ सुनाया तब उसने आंखें खोलीं। मैंने कहा—‘तीन घण्टा बिल्कुल मूर्ति-प्रतिमा की तरह बैठे रहे। तुमने ध्यान क्यों नहीं खोला?’ उसने कहा—‘महाराज! इतने सुखद स्पन्दन, कम्पन, वाइब्रेशन आ रहे थे कि उन्हें तोड़ना मेरे वश की बात नहीं रही।’ प्रश्न है—इतना सुख कहां से आया? ऐसा सुख, जिसे छोड़ने और तोड़ने का मन ही न हो, कहां से फूटा? जब भीतर में सुख के प्रकम्पन पैदा होते हैं, तब आदमी को पता चलता है कि हमारे भीतर कितना सुख है।

प्रेक्षाध्यान का एक शिविर था लाडनूं में। बम्बई से काफी लोग आए हुए थे। शिविर पूरा हो गया। बम्बई के एक दम्पती जब जाने लगे तब भाई एक बच्चे की तरह सिसक-सिसक कर रोने लगा। मैंने सोचा—क्या हो गया? क्या किसी ने अपमान कर दिया? तिरस्कार कर दिया? कुछ कह दिया या कुछ खो गया? हुआ क्या? मैंने कहा—‘बात क्या है? आप बात तो बताएं।’

भाई बोला—‘बात कुछ नहीं है। अब मैं जा रहा हूं इसलिए रोना आ रहा है।’

मैंने पूछा—‘अरे! क्यों?’

भाई ने गद्गद स्वर में कहा—‘क्या बताऊं? हम लोग बम्बई जा रहे हैं। मोहमयी नगरी। सम्पन्न घर। कुछ कमी नहीं है। सुख के साधन-सुविधा, सब कुछ प्राप्त है। साठ बरस की मेरी उम्र हो गई। मैंने दुनिया भर के सारे सुख भोगे हैं, पर इन दस दिनों में जितना आनंद आया है, उतना जीवन में कभी नहीं मिला। ये आंसू इसलिए आ रहे हैं कि न जाने ऐसा सुख फिर कब मिलेगा।’

ध्यान की शरण में जाएं

प्रश्न होता है कि ध्यान-शिविर में कौनसा सुख मिला? कौनसा बढ़िया भोजन मिला? कौनसा पदार्थ मिला और कौनसा धन मिल गया, जो इतना सुख मिल गया? हम सोच नहीं सकते कि हमारे भीतर में कितना सुख है। अगर वह स्थिति बन जाती है तो नशा अपने आप छूट जाता है। नशे की मन में ही नहीं आती। आदमी नशे के सामने ही नहीं देखता। वह नहीं होता है तो आदमी को विकल्प खोजना होता है।

ध्यान नशे का विकल्प है। नशा या ध्यान—दोनों में से आदमी को चुनाव करना है। यदि नशा चुनता है तो वह एक बार तो चिंता को मिटाता है किन्तु वह बुरा इसलिए है कि उसके परिणाम बड़े बुरे हैं। अनेक भयंकर बीमारियां, प्रमाद-जनित समस्याएं और दायित्व-बोध का अभाव—ये सब नशे की निष्पत्तियां हैं। इन कारणों से नशा खराब है और ध्यान सुख देने वाला है। जो ध्यान की शरण में जाएगा, उसे नशे की शरण में जाने की कभी आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

27. समस्या महानिद्रा और अनिद्रा की

जीवन-चर्या का एक महत्वपूर्ण अंग है—नींद। मनुष्य लगभग अचेतन अवस्था में सोता है। जब जागता है, तब चेतन बन जाता है। यह चेतन और अचेतन की प्रक्रिया चलती रहती है।

नींद पर आयुर्वेद, आयुर्विज्ञान, प्राकृतिक चिकित्सा—इन सबने विचार किया। दर्शन-शास्त्र में भी इस पर विचार किया गया। जैन दर्शन की दृष्टि से नींद दर्शनावरणीय कर्म का एक विपाक है। दर्शनावरणीय कर्म, विशेष प्रकार के पुद्गल परमाणुस्कन्ध—ये जब प्रस्फुटित होते हैं, अभिव्यक्त होते हैं, तब आदमी नींद में चला जाता है।

नींद हमारे औदारिक शरीर के साथ जुड़ी हुई घटना है। वैक्रिय शरीर वाले को नींद नहीं आती। देवता कभी नींद नहीं लेता। नैरयिक भी कभी नींद नहीं लेते। वैक्रिय शरीर में नींद लेने की व्यवस्था नहीं है। दर्शनावरणीय कर्म तो है, पर वह उनके विपाकी प्रकृति में नहीं आता। दर्शनावरणीय कर्म विपाकोदय में नहीं आता, उसे प्रदेशोदय में ही भोग लिया जाता है। इसे क्षेत्र से संबद्ध माना गया, पर मूलतः यह वैक्रिय शरीर से संबद्ध घटना है।

हमारे औदारिक शरीर की एक संरचना है, उसमें एक व्यवस्था है। व्यक्ति प्रवृत्ति करता है और प्रवृत्ति के साथ नींद का संबंध जुड़ा है। प्रवृत्ति कम होती है तो नींद की आवश्यकता कम हो जाती है। प्रवृत्ति के साथ लेक्टिक एसिड जमा होता है। इस एसिड की मात्रा जितनी ज्यादा होती है, नींद उतनी ज्यादा और जल्दी आने लगती है। लेक्टिक एसिड की मात्रा कम होती है तो योग निद्रा आती है, हलकी नींद आती है।

आयुर्वेद में कहा गया—जब मन और इन्द्रियां क्लान्त हो जाती हैं, तब मनुष्य नींद में चला जाता है।

आयुर्विज्ञान का मत भी यही है—जब मनुष्य ज्यादा श्रांत होता है, थकान का अनुभव करता है, उसका मस्तिष्क थक जाता है, तब उस अवस्था में नींद सताती है।

प्रवृत्ति के साथ हमारे शरीर में विष जमा होता रहता है। वह विष जागृत अवस्था में नहीं निकलता। उसे निकालने की प्रक्रिया है—नींद। निद्रावस्था में यह विष अपने आप निकलता है, इसलिए जब मनुष्य सोकर उठता है, तब वह अपने आपको स्वस्थ और तरोताजा अनुभव करता है।

निद्रा के अनेक रूप हैं—निद्रा, महानिद्रा और अनिद्रा।

कर्मशास्त्रीय भाषा में निद्रा के पांच रूप हैं—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि।

आयुर्वेद का अभिमत

आयुर्वेद की दृष्टि से विचार करें। आयुर्वेद का अभिमत है—श्लेष्म में अभिवृद्धि होती है, तब निद्रा की अवस्था रहती है। पित्त की अभिवृद्धि होती है, तब अल्पनिद्रा होती है। इसका तात्पर्य है—जब ऊष्मा बढ़ती है, नींद कम हो जाती है। श्लेष्म क्षय होता है, उस अवस्था में अनिद्रा की स्थिति बनती है। अनिद्रा का कारण है श्लेष्म क्षय। वात, पित्त और कफ—ये तीनों शरीर के लिए बहुत आवश्यक हैं। इनके बिना शरीर का संचालन नहीं हो सकता। यदि श्लेष्म का क्षय हो जाए तो इधर-से-उधर हाथ हिलाना भी मुश्किल हो जाता है। सारा स्नेह कफ के द्वारा होता है। जब कफ क्षीण हो जाता है, नींद की स्थिति नहीं बनती।

निद्रा और अनिद्रा—दोनों समस्या है। नींद न आए, वह भी समस्या है और ज्यादा नींद आए, वह भी समस्या है।

संदर्भ मात्रा का

नींद कितनी लेनी चाहिए? इस प्रश्न पर भी विचार किया गया। यह विचार अवस्था के आधार पर किया गया। जैन-दर्शन का दृष्टिकोण अलग प्रकार का रहा। सामान्यतः मुनि को दिन में सोना ही नहीं है। रात्रि के प्रथम प्रहर और अंतिम प्रहर में नहीं सोना है। एक मुनि के लिए दो प्रहर की नींद का विधान है। बहुश्रुत मुनि और आचार्य के लिए एक प्रहर की नींद का निर्देश है। इस निर्देश का आधार है—श्रुत की सुरक्षा। यदि श्रुत की सुरक्षा करनी है तो जागना जरूरी है। इस दृष्टि से आचार्य और बहुश्रुत के लिए केवल एक प्रहर नींद का निर्देश है।

आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से विचार करें तो ये नियम नहीं बनाए जा सकते। स्वास्थ्य के संदर्भ में इस प्रकार के निर्देश दिए जाते हैं—एक शिशु को दस-बारह घंटे, एक किशोर को सात-आठ घंटे नींद लेनी चाहिए। ये सामान्य नियम हैं, किंतु व्यक्तिगत प्रकृति इतनी भिन्न होती है कि सबके लिए कोई एक नियम नहीं बनता। कुछ लोग दो-चार घंटा नींद लेते हैं और बिल्कुल स्वस्थ रहते हैं। कुछ लोग सात-आठ घंटा नींद लेकर भी पूरी नींद नहीं उड़ा पाते। उन्हें इतना सोने पर भी स्वस्थता और ताजगी की अनुभूति नहीं होती। सोने का नियम सबके लिए एक समान नहीं हो सकता, इसलिए नींद की समयबद्धता निर्धारित नहीं की जा सकती।

प्रश्न है—हम किसे नींद मानें? किसे अतिनींद मानें और किसे अनींद मानें? इसका कोई नियम नहीं बनता, किंतु जिसे सोते ही नींद नहीं आती, अनिद्रा का प्रारंभ हो जाता है, पांच-सात मिनट तक नींद नहीं आती तो वह एक समस्या बन जाती है। सोने के बाद तो नींद प्रारंभ हो जानी चाहिए। व्यक्ति नींद लेना चाहे और वह न आए, यह अनिद्रा की समस्या है।

कारण अनिद्रा का

अनिद्रा का एक प्रमुख कारण है चिन्ता। मन में कोई चिन्ता लेकर सोएं, नींद नहीं आएगी। यदि मन में कोई

तनाव आ गया तो वही बात दिमाग में चक्कर लगाएगी, नींद नहीं आएगी। यदि डिप्रेशन है, अवसाद है तो नींद नहीं आएगी। चिंता, तनाव और अवसाद—ये अनिद्रा के मानसिक कारण बनते हैं।

अनेक लोग यह अनुभव करते हैं—जो विचार मन में लेकर सोते हैं, उस विचार में मन रम जाता है, नींद नहीं आती। इसका तात्पर्य है—मस्तिष्क की सक्रियता में नींद नहीं आएगी। नींद लेने की पहली कला है—मन को निष्क्रिय करना, शिथिल करना। अनिद्रा की बीमारी का एक लक्षण है कि मस्तिष्क बहुत ज्यादा काम कर रहा है, उसे विश्राम नहीं मिल रहा है।

आहार का असंतुलन भी अनिद्रा का कारण बन जाता है। बहुत गरिष्ठ भोजन करें, चटपटी और मसालेदार चीजें खाएं, नींद नहीं आएगी। चाय, कॉफी आदि जितने भी उत्तेजक द्रव्य हैं, उनका प्रयोग करने पर नींद नहीं आती। जिनको नींद नहीं लेनी होती है, कार्य करना होता है, वे शायद इसीलिए चाय, कॉफी आदि लेते हैं। जितना भी उत्तेजक आहार है, वह निद्रा को समाप्त करता है, अनिद्रा की समस्या को भी पैदा करता है।

क्या अनिद्रा समस्या है?

प्रश्न है—क्या अनिद्रा समस्या है? एक दृष्टि से विचार करें तो अनिद्रा कोई समस्या नहीं है। यह बहुत अच्छी बात है कि नींद नहीं आती है तो काम करने का कितना समय मिल जाता है। नींद न आए, प्रातःकाल तरोताजा रहे तो अनिद्रा कोई समस्या नहीं है। वह समस्या तब होती है, जब नींद न आए, व्यक्ति अलसाता हुआ उठे, सिर पर भार रहे, कोई अच्छा विचार, चिंतन और कल्पना न आए, मन परेशान हो जाए। इस स्थिति में अनिद्रा समस्या बनती है।

वस्तुतः हर बात सापेक्ष होती है। हमारा कोई भी वक्तव्य और प्रतिपाद्य निरपेक्ष नहीं है। जहां भी किसी एक विचार को निरपेक्ष मान लेते हैं, वहां हम अनेकांत को भूल जाते हैं, एकांत के जाल में फंस जाते हैं। यदि अनिद्रा समस्या है तो उसे सबसे ज्यादा भगवान् महावीर ने भोगा। हम इस तथ्य को भी स्वीकार करें—अनिद्रा कोई बीमारी नहीं है। महावीर को नींद तो आती थी पर वे उसे उड़ाते थे। उन्हें नींद कम आती थी। इसका कारण था—उनका जीवन प्रवृत्ति प्रधान नहीं था। वे प्रायः कायोत्सर्ग में ही लीन रहते इसलिए नींद की पूर्ति अपने आप हो जाती। यदि कभी थोड़ी बहुत नींद आती तो वे उसे उड़ाने के लिए चंक्रमण करते, घूमने लग जाते। **बहिया चंक्रमणे**—आचारांग का यह सूत्र साक्ष्य है—जब महावीर को नींद सताती, वे चंक्रमण करते।

वस्तुतः अनिद्रा समस्या भी है और समस्या नहीं भी है। जो व्यक्ति शरीर में विषों को कम पैदा करता है, जिसके शरीर में विष कम जमा होते हैं, उसके लिए अनिद्रा बहुत बड़ी समस्या नहीं है। थोड़ी सी नींद से उसका कार्य हो जाता है। जिस व्यक्ति के शरीर में विष ज्यादा जमा होता है, वह निकल नहीं पाता है, उसे नींद नहीं आती है तो

भार बढ़ता चला जाता है और अनिद्रा बड़ी समस्या बन जाती है। हम इन दोनों कोणों से विचार करें तो अनिद्रा की समस्या को समझना और सुलझाना संभव हो जाएगा।

समस्या अतिनिद्रा की

अति निद्रा भी एक समस्या है। कहा गया—निद्रं च न बहुमन्नेज्जा—निद्रा को बहुमान मत दो। यह इसलिए कहा गया कि निद्रा एक प्रकार की बीमारी है। उसे बहुमान मत दो, उसे उड़ाने का, जगाने का प्रयत्न करो। बहुत सोना बीमारी पैदा करता है। हमारे आयुष्य को कम करने वाले जितने हेतु हैं, उनमें एक महत्वपूर्ण हेतु है नींद। इसका कारण निद्रा-काल में व्यक्ति स्वयं अनुभव कर सकता है। निद्रा-काल में श्वास की गति बदल जाती है, श्वास की संख्या बढ़ जाती है। नींद के संदर्भ में स्वास्थ्य, साधना और दीर्घायु की दृष्टि से विचार किया गया। यह निर्देश दिया गया—ज्यादा नींद मत लो, नींद सीमित लो, दिन भर पड़े मत रहो। आयुर्वेद में यह स्पष्ट निर्देश है—दिन में सोओ मत। यह किसी धर्म का निर्देश नहीं है, स्वास्थ्यशास्त्र का निर्देश है। जैन शास्त्र में उस मुनि को पापश्रमण कहा गया, जो खा-पीकर सुख से सो जाता है—**भोच्चा पिच्चा सुहं सुवई, पावसमणेत्ति वुच्चई।**

स्वास्थ्य के संदर्भ में आयुर्वेद का यह सिद्धांत रहा—केवल ग्रीष्म ऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ़ को छोड़कर अन्य महीनों में दिन में सोना वर्जित है। इन वर्जित महीनों में सोना बीमारी का कारण है।

नींद का प्रश्न स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है इसलिए इस पर विचार करना आवश्यक है। अतिनींद भी अच्छी नहीं है। विश्रांति और थकान मिट जाए, उतनी नींद का न आना भी अच्छा नहीं है। अनिद्रा की समस्या उनके लिए है, जिनके लिए नींद का न लेना तनाव, भार और अवसाद का कारण बन जाता है। जब तक वे पूरी नींद नहीं लेते, यह भार और तनाव हलका नहीं होता।

कायोत्सर्ग

अनिद्रा की समस्या का समाधान क्या है? इस समस्या के समाधान में योग के कुछ प्रयोग बहुत लाभदायी हो सकते हैं।

पहला प्रयोग है कायोत्सर्ग। हम कायोत्सर्ग करें, नींद की समस्या नहीं रहेगी। नींद न आए तो भी उसकी आवश्यकता पूरी हो जाती है, अनिद्रा की समस्या नहीं रहती। कायोत्सर्ग का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—सीधे लेट जाएं, शरीर को शिथिल करें, पैर के अंगूठे पर ध्यान केन्द्रित करें, शिथिलता का सुझाव दें। पैर की एक-एक अंगुली को देखें, शिथिलता का सुझाव दें। दूसरे पैर की भी इसी प्रकार प्रेक्षा करें। इस प्रकार पैर से सिर तक शरीर के प्रत्येक अवयव को देखें, शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। पुनः सिर से पैर तक इसी प्रकार प्रेक्षा करें। शरीर-प्रेक्षा की इस प्रकार तीन आवृत्तियां करें। एक आवृत्ति में कायोत्सर्ग की मुद्रा में कम-से-कम आधा घंटे का समय लगे। ऐसी तीन आवृत्तियों से नींद की काफी पूर्ति हो जाएगी। शरीर को जो विश्राम चाहिए, मस्तिष्क और

नाड़ी-तंत्र को जो विश्राम चाहिए, वह इस कायोत्सर्ग से मिल जाता है। मस्तिष्क में जो ऊष्मा बढ़ जाती है, पित्त की गर्मी बढ़ जाती है, वह संतुलित हो जाती है।

कायोत्सर्ग संतुलन का बड़ा प्रयोग है, धातु के वैषम्य को मिटाने वाला प्रयोग है। दशवैकालिक सूत्र का निर्देश है—एक मुनि गोचरी के लिए गया, वह भिक्षा लेकर लौटा, लौटते ही भोजन न करे। क्योंकि उस समय धातु वैषम्य होता है। इस अवस्था में वह भोजन करता है तो बीमारी बढ़ती है। कहा गया—**वीसमेज्ज खणं मुणी**—मुनि उस समय क्षण भर के लिए विश्राम करे, कायोत्सर्ग करे। व्यक्ति कायोत्सर्ग करता है तो वात, पित्त और कफ—सब संतुलित रूप में काम करते हैं। उस समय जो खाया जाता है, वह कोई विकृति पैदा नहीं करता, बीमारी उत्पन्न नहीं करता। कायोत्सर्ग केवल अनिद्रा की समस्या का ही समाधान नहीं है, अनेक शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक समस्याओं का समाधान है। इसीलिए कहा गया—**काउस्सगं तओ कुज्जा, सव्व दुक्खविमोक्खणं**—कायोत्सर्ग सब दुःखों से मुक्ति दिलाने वाला है।

आसन-प्राणायाम

अनिद्रा की समस्या के समाधान में आसन भी बहुत उपयोगी हैं। भुजंगासन, मत्स्यासन, सर्वांगासन आदि आसनों का प्रयोग बहुत लाभदायी हो सकता है।

अनिद्रा की समस्या के समाधान का एक प्रयोग है प्राणायाम। लगभग आधा घंटा उज्जायी प्राणायाम का प्रयोग करें, अनिद्रा की समस्या विलीन हो जाएगी। उज्जायी प्राणायाम के साथ ललाट पर ध्यान करना भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह कायोत्सर्ग जैसा ही शक्तिशाली प्रयोग है।

लेश्याध्यान

अनिद्रा की समस्या के समाधान का एक प्रयोग है—लेश्याध्यान। रंग विज्ञान के अनुसार जिसमें पीले रंग की कमी होती है, उसकी नींद उड़ जाती है। अनिद्रा का हेतु है पीले रंग की कमी। पाचन तंत्र और ज्ञान तंतुओं पर पीले रंग का ध्यान करने से पीले रंग की पूर्ति होती है। जिन्हें नींद ज्यादा आती है, उन्हें अरुण रंग का ध्यान करना चाहिए। जिन्हें नींद कम आती है, उन्हें पीले अथवा नीले रंग का ध्यान करना चाहिए। नीला रंग भी शामक होता है। यह लेश्याध्यान का प्रयोग निद्रा की समस्या में बहुत उपयोगी बनता है।

इस प्रकार अनेक प्रयोग हैं, जो निद्रा की समस्या के समाधान में सहायक होते हैं। सब लोग सारे प्रयोग नहीं कर सकते, किंतु कायोत्सर्ग, आसन, उज्जायी प्राणायाम, लेश्याध्यान आदि प्रयोग अवश्य करें। इन सारे पहलुओं पर विचार करें तो यह निष्कर्ष आएगा—प्रेक्षाध्यान का इस समस्या के समाधान में बहुत बड़ा योग है। सैकड़ों व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रयोगों और अनुभवों से यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रेक्षा के अभ्यास के द्वारा अनिद्रा की समस्या को सुलझाया जा सकता है, मानसिक शांति के साथ जीया जा सकता है।

28. निद्रा, अनिद्रा और अतिनिद्रा

स्वास्थ्य और साधना—इन दोनों दृष्टियों से नींद पर विचार करना बहुत जरूरी है। जैसे भोजन हमारे लिए जरूरी है, वैसे ही नींद भी हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है। भोजन कितनी मात्रा में किया जाए, यह एक प्रश्न है। नींद कितनी मात्रा में ली जाए, यह भी एक प्रश्न है। एक भाई ने कहा—मुझे नींद नहीं आती। अनिद्रा एक समस्या है। एक बहन ने बताया—मुझे नींद बहुत आती है। पढ़ने बैठूं तो नींद, सामायिक करने बैठूं तो नींद, ध्यान करूं तो नींद। ज्यादा नींद आना भी एक समस्या है।

अनिद्रा भी एक समस्या और अतिनिद्रा भी एक समस्या। इन दोनों स्थितियों से कैसे बचा जा सकता है?

कारण नींद का

एक प्रश्न है—नींद क्या है? आयुर्वेद का मत है—निद्रा श्लेष्मतमोभवा। नींद के दो कारण हैं—एक शारीरिक और दूसरा मानसिक। शारीरिक कारण है—श्लेष्म, कफ और मानसिक कारण है—तमोगुण। तमोगुण बढ़ता है तो नींद अधिक आती है, श्लेष्म बढ़ता है तो नींद अधिक आती है।

अनिद्रा के कारण

अनिद्रा का कारण क्या है? आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत के अनुसार अनिद्रा के पांच कारण हैं—

1. वायु का प्रकोप
2. पित्त का प्रकोप
3. मनस्ताप
4. धातुक्षय
5. अविघात।

वायु और पित्त का प्रकोप तथा धातुक्षय—ये शारीरिक कारण हैं। मनस्ताप और अविघात—ये मानसिक कारण हैं। जब वायु और पित्त उपयुक्त मात्रा में रहते हैं, तब कोई विकृति नहीं होती। जब इनकी मात्रा बढ़ती है तब विकृति पैदा हो जाती है। अनिद्रा का एक कारण है धातुक्षय। शरीर की बहुत-सी धातुएं क्षीण हो जाती हैं तो अनिद्रा की स्थिति बन जाती है। मानसिक चिन्ता है तो अनिद्रा होगी। मन में बार-बार चिन्ता उभरती है तो नींद उड़ जाती है। बहुत से लोग कहते भी हैं—तनाव के कारण नींद उड़ गई। कुछ लोगों में मानसिक तनाव निरन्तर बना रहता है, उन्हें नींद नहीं आती।

पांचवां कारण है—अविघात। कोई ऐसा आघात लग जाता है जिससे नींद नहीं आती।

सत्त्वगुण : तमोगुण

महर्षि चरक ने और भी कारण बतलाए हैं। उनमें एक कारण है—सत्त्वगुण की वृद्धि। अच्छी भावना, अच्छी साधना और अच्छे विचार हो जाते हैं तो नींद भी नहीं आती। एक प्रेक्षाध्यानी ने बतलाया कि जब मेरे ध्यान की अवधि बढ़ी तो नींद कम हो गई। उसने समझा, यह कोई बीमारी हो गई। पर यह बीमारी नहीं है। ज्यों-ज्यों ध्यान की मात्रा बढ़ेगी, नींद घट जाएगी। इसका कारण है सत्त्वगुण की वृद्धि।

नींद का कारण है तमोगुण और जागरण का कारण है सत्त्वगुण। सत्त्वगुण का कार्य है जगाना और तमोगुण का कार्य है नींद में ले जाना। जब सत्त्वगुण बढ़ता है तब अनिद्रा की स्थिति आ जाती है और जब तमोगुण बढ़ता है तब नींद ज्यादा आने लगती है। वायु, कफ, पित्त की वृद्धि से जो नींद आती है, वह बीमारी मानी जा सकती है किन्तु सत्त्वगुण की वृद्धि से नींद कम आने को बीमारी नहीं कहा जा सकता। यह एक विकास है। इसका अर्थ है—नींद की जरूरत कम हो गई। जिस व्यक्ति में सत्त्वगुण की वृद्धि हो जाती है वह नींद कम लेता है तो कोई कठिनाई नहीं होती।

अनिद्रा : अन्य कारण

अनिद्रा का एक कारण है—भय। भय के कारण भी अनिद्रा हो जाती है। क्रोध से भी अनिद्रा हो जाती है।

अनिद्रा का एक कारण है—उपवास। उपवास से भी अनिद्रा हो जाती है। जिन्हें उपवास थोड़ा कठिन होता है, उन्हें कल्पनाएं आती रहती हैं—कब दिन निकले, किस चीज से पारणा करें—ये कल्पनाएं आती रहती हैं, नींद नहीं आती।

शरीर और साधना के लिए नींद आवश्यक है। अगर व्यक्ति को समय पर नींद न आए और वह ध्यान करने बैठ जाए तो ध्यान कम होगा, नींद ज्यादा आएगी। साधना के लिए जरूरी है नींद, जिससे साधना में बाधा न पड़े। नींद शरीर के लिए भी जरूरी है ताकि शरीर हलका हो जाए। एक नींद वह होती है, जिससे शरीर बिल्कुल हलका हो जाता है। एक नींद वह होती है कि उठने के बाद शरीर भारी हो जाता है। इसे वैकारिकी निद्रा कहा जाता है।

कब सोएं : कितना सोएं

आयुर्वेद में सामान्यतः दिन में सोने का विधान नहीं है। दिवास्वाप—दिन में सोना स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं है। जो दिन में सोता है, उसको वायु का प्रकोप अधिक होता है, कफ का प्रकोप भी बढ़ जाता है। हमारे संघ की मर्यादा रही—सोलह वर्ष से ऊपर, पचास वर्ष से कम अवस्था वाला मुनि सामान्यतः दिन में सो नहीं सकता। नींद लेनी हो तो बैठे-बैठे या दीवार का सहारा लेकर नींद ले, पर लेटकर सो नहीं सकता। आयुर्वेद में भी ऐसा ही विधान है कि व्यक्ति बैठे-बैठे नींद ले ले, पर लेटे नहीं। बहुत लोग ऐसे हैं, जो दोपहर में भोजन कर सोते हैं और तीन घंटे

से पहले उठते नहीं। यह अधिक आराम भी अनेक बीमारियों का कारण बनता है। अधिक श्रम बीमारियों का कारण बनता है या नहीं, यह एक प्रश्न है किन्तु अधिक आराम बीमारियों का निश्चित कारण बनता है।

रात को नींद लेने का प्रश्न भी प्रस्तुत होता है। रात में जल्दी सोना और जल्दी उठना, यानी नौ-दस बजे सोना और चार बजे ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाना, यह स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम माना जाता है। जो हार्ट पेसेण्ट हैं, आजकल उन्हें यह सुझाव दिया जाता है कि वे जल्दी सोएं व जल्दी उठ जाएं। प्रातः चार-पांच बजे का जो समय होता है वह स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता की दृष्टि से बहुत काम का होता है। उस समय आकाश के सौरमण्डल से जो विकिरण होता है, वह मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी होता है। जल्दी सोना और जल्दी उठ जाना बहुत लाभप्रद होता है। रात को कब सोना चाहिए, कब उठना चाहिए—इसका भी एक विवेक होना चाहिए। कुछ लोग दिन में नींद में डूबे रहते हैं और रात में भी नींद लेते हैं। इसे उचित नहीं माना जा सकता। सोने की भी एक सीमा है। इस सीमा को जानना साधना और स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। यदि नींद ज्यादा आती है या नींद कम आती है तो क्या उपाय किया जा सकता है?

अनिद्रा : साधना के प्रयोग

प्रश्न होता है कि क्या साधना के क्षेत्र में अनिद्रा और अतिनिद्रा के निवारण का कोई उपाय नहीं है? चिकित्सा के क्षेत्र में इनके उपाय बतलाए गए हैं। अनिद्रा है तो किस औषधि से उसका शमन किया जाए? अगर अतिनिद्रा है तो किस औषधि द्वारा उसका शमन किया जाए? चिकित्सा के क्षेत्र में औषधि का एक निरूपण है। अनिद्रा के जो बीमार हैं, वे नींद की गोलियां लेकर सोते हैं, लेकिन अतिनिद्रा वाला कोई दवा लेता हो, ऐसा सुनने में बहुत कम ही आता है। किन्तु आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका बहुत निरूपण है कि अतिनिद्रा के लिए किस औषधि का प्रयोग किया जाता है।

साधना के संदर्भ में प्रश्न होता है—क्या कोई साधना का उपाय है, जिससे अनिद्रा और अतिनिद्रा—दोनों से ही बचा जा सके?

कायोत्सर्ग का उपयोग अनिद्रा के लिए नहीं है किन्तु अनिद्रा की बीमारी के लिए कायोत्सर्ग बहुत महत्वपूर्ण है। समस्या यह है—कायोत्सर्ग करना चाहिए जागरूकता के साथ पर कायोत्सर्ग करने वाला व्यक्ति नींद में चला जाता है। अनिद्रा को मिटाने का एक उपाय है कायोत्सर्ग।

अनिद्रा को मिटाने का एक उपाय है पढ़ना, स्वाध्याय करना। पढ़ना शुरू करें, स्वाध्याय शुरू करें, पढ़ते-पढ़ते नींद आनी शुरू हो जाएगी। बहुत से लोग ऐसा ही करते हैं। बिस्तर पर जाते हैं, पुस्तक पढ़ते हैं, पढ़ते-पढ़ते नींद आ जाती है।

अनिद्रा को मिटाने का उपाय है—लेटकर गिनती शुरू करना। सौ से लेकर एक तक उलटी गिनती करें। सौ से एक तक पहुंचने से पहले ही नींद आ जाएगी।

योग निद्रा भी अनिद्रा को मिटाने का एक प्रयोग है। योगनिद्रा कैसे ली जाती है? पहले कोई आसन-व्यायाम कर लिया जाता है। प्रारम्भ में भुजंगासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन आदि कर लेने से अनिद्रा की स्थिति टल जाती है।

नींद के दो प्रकार

नींद के दो प्रकार और बतलाए गए हैं। एक है—मनःश्रम-संभव। दूसरा है—शरीर-श्रम-संभव। मानसिक श्रम करने से जो नींद आती है, उसका नाम है मनःश्रम-संभव। शरीर का श्रम करने से जो नींद आती है वह है शरीर-श्रम-संभव। आसन शरीर का श्रम है, स्वाध्याय करना या उलटी गिनती गिनना मानसिक श्रम है। इनसे भी नींद आने लग जाती है।

ये सारे अनिद्रा की बीमारी को मिटाने वाले साधनात्मक प्रयोग हैं।

गोलियां खाकर नींद लेना बहुत खराब है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग द्वारा बहुत से लोगों ने नींद की गोलियां लेनी छोड़ दीं। अहमदाबाद में शिविर चल रहा था। उसमें एक बहिन अनिद्रा की बीमारी से ग्रस्त थी। वह नींद के लिए प्रतिदिन गोलियां खाती थी। स्वाध्याय, आसन और कायोत्सर्ग का प्रयोग करने से तीन दिन में सारी गोलियां छूट गईं। चौथे दिन वह बिना गोली खाए नौ बजे सोयी और चार बजे उठी। प्रयोग के द्वारा बहुत कुछ छूट सकता है। बहुत सारी व्यर्थ की औषधियों से बचा जा सकता है किन्तु आदमी साधना-प्रयोग में आना नहीं चाहता, डॉक्टर की शरण में जाना अधिक पसंद करता है। दवा की शरण उसे ज्यादा अच्छी लगती है। एक बार जो साधना-शिविर में आ जाता है उसकी दृष्टि बदल जाती है, चिन्तन बदल जाता है।

अतिनिद्रा की समस्या : साधना के प्रयोग

अतिनिद्रा का प्रश्न भी कम जटिल नहीं है। नींद ज्यादा आए तो क्या करना चाहिए? यदि वे प्रयोग किए जाएं जिनके द्वारा श्लेष्मा और तमोगुण की कमी हो तो अतिनिद्रा पर नियंत्रण किया जा सकता है। जैसे एक प्राणायाम है भस्त्रिका। इससे नींद पर नियंत्रण किया जा सकता है। लम्बे समय तक भस्त्रिका कर लें तो गर्मी भी इतनी बढ़ जाती है कि शायद कुछ समय तक नींद आती ही नहीं। किन्तु इस प्रयोग से धीरे-धीरे निद्रा पर पूर्ण नियंत्रण किया जा सकता है और व्यक्ति स्वस्थ निद्रा की स्थिति में आ सकता है।

कपालभाती प्राणायाम भी एक प्रयोग है। यह कफ को कम करता है, अतिनिद्रा की स्थिति को बदल देता है।

एक प्रयोग है नाड़ी-शोधन। नाड़ी-शोधन का प्रयोग रोज किया जाए तो अतिनिद्रा पर नियंत्रण किया जा सकता है।

ये कुछ प्रयोग हैं, जिनके द्वारा नींद में कमी लायी जा सकती है। जो व्यक्ति भैंस के दूध का, दही का प्रयोग करेगा उसे नींद ज्यादा आएगी। जिसको अतिनिद्रा है, उसे भैंस के दूध और दही से बचना चाहिए। चरक ने बताया—जिसको नींद नहीं आती, उसे भैंस का दूध पिलाना चाहिए। इसीलिए लोग स्वाद की दृष्टि से भैंस का दूध ज्यादा पसंद करते हैं किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से लोग भैंस के दूध के बजाय गाय का दूध अधिक पसंद करते हैं। उत्तराध्ययन की कथा में एक प्रसंग आता है। एक व्यक्ति को सपना दिलाना था। प्रश्न हुआ—सपना कैसे आए? उपाय बताया गया—भैंस का दही खिला दो, रात को सपना आ जाएगा।

प्रयोग हो गुरु-गम से

कफ को बढ़ाने वाले द्रव्य नींद को बढ़ाते हैं। उन द्रव्यों से जो बचता है वह अतिनिद्रा के रोग से मुक्त होता है। कुछेक आसन भी ऐसे हैं जो अतिनिद्रा से बचाते हैं। मयूरासन यद्यपि कठिन है, कड़ा है, पर वह निद्रा को कम करता है। तैजसकेन्द्र पर ध्यान करने से नींद में कमी होती है। नाभि पर तैजस का ध्यान, दर्शनकेन्द्र पर लाल रंग का ध्यान, बाल सूर्य का ध्यान—ये सब अतिनिद्रा पर नियंत्रण करते हैं। किन्तु इस संदर्भ में एक बात ध्यान में रहे—जब तक इनको पूरी तरह न समझ लें, पुस्तक पढ़कर ये उपाय न करें। क्योंकि गर्मी में दर्शनकेन्द्र पर हरे या लाल-पीले रंग का ध्यान कर लेते हैं तो गर्मी इतनी बढ़ जाएगी कि सिर फटने लग जायेगा। अगर तैजसकेन्द्र पर बाल सूर्य का, अग्नि का ध्यान कर लेते हैं और ऊपर के केन्द्र पर नहीं करते हैं तो मन की चंचलता बड़ी भयंकर बन जाती है। इसलिए पूरी बात को गुरु-गम से समझ कर ही प्रयोग करना लाभप्रद बनता है।

नींद पर ध्यान देना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी जरूरी है और साधना की दृष्टि से भी जरूरी है। अतिनिद्रा और अनिद्रा—इन दोनों से बचकर सहज स्वाभाविक, स्वस्थ निद्रा की स्थिति में अगर व्यक्ति चला जाए तो मन प्रसन्न रह सकता है और मस्तिष्क हलका रह सकता है, वह साधना की दृष्टि से भी बहुत विकास कर सकता है।